किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया ?

मानव जीवन जागरण की
प्रेरक कृति

उपाध्याय गुप्तिसागर मुनि

1995

•

उपाध्याय गुप्तिसागर साहित्य संस्थान इन्दौर-5

सम्पादक/प्रकाशक

सिद्धान्त रत्न ब्र. सुमन शास्त्री

उपाध्याय गुप्तिसागर साहित्य संस्थान

215, कालानी नगर, इन्दौर-5

अर्थ सौजन्य

चेतन लाल सतेन्द्र कुमार जैन

नीलम थ्रेडस् प्रा लि., ई-164, प्रीत विहार, दिल्ली

प्रथम संस्करण	1995
प्रतियाँ	5,000
मूल्य	ज्ञान पिपासा

मुद्रक ·

अनमोल ऑफसैट दूरभाष 2438233

कम्पोजिंग

क्लासिक कम्प्यूटर्स, ई-108/4 बी जी एन मार्किट,

मुनिरका दिल्ली-110067 - 6853119

भारत के उन नागरिको को,
जो मानवीय मूल्यो मे
गहन आस्था रखने
के अभिलाषी हैं।

-गुप्तिसागर मुनि

उपाध्याय मुनि श्री गुप्तिसागर जी
प्रिय प्रार्थना

प्रभु नाम जपने से, नवजीवन मिलता है।
तन मन का मुरझाया उपवन खिलता है।
अन्तर के कोने मे, इक दीपक जलता है।
प्रभु नाम जपने से

श्री पाल प्रभु गुण गाकर, हा हा गाकर,
तूफा मे भी, पार हुए थे सागर।
चन्दन बाला दर्शन से दर्शन से,
देखो पल मे मुक्त हुई बन्धन से।।
तन मन का मुरझाया उपवन

हो सर्प अगर विषवाला हा विष वाला
कर लो मन मे ध्यान बने जयमाला।
भवताप सभी गल जाए हा हा जाए,
सुमरन से सताप सभी टल जाए ।।
तन मन का मुरझाया उपवन

ससार समुन्दर गहरा, हा हा गहरा
कर्मों का हर ओर लगा है पहरा।
सब छोड जगत की माया हा हा माया
ले लो तुम मन वीर शरण की छाया।।
तन मन का मुरझाया उपवन

प्राथमिकी

ससार समस्याओ से भरा एक कटकाकीर्ण जगल है जहा एक साधारण व्यक्ति प्रवेश करते ही भयभीत हो जाता है। पर यदि उसकी धार्मिक चेतना का निर्माण हो जाता है, बुद्धि के साथ ही विवेक जागृत हो गया हो तो निर्भय बना रहता है, प्रलोभन से दूर रहकर अपने आप को जानने का प्रयत्न करता है। ऐसा निर्भय और विवेकशील व्यक्ति ही ससार की समस्याओ से दूर रह सकता है और दूसरे को भी सन्मार्ग पर ला सकता है।

परम पूज्य उपाध्याय श्री गुप्तिसागर जी महाराज एक ओजस्वी, ज्ञानी, मेधावी और आचार निष्ठ साधक है। उन्होने प्रस्तुत ललित निबधो मे ससारी व्यक्ति की इन्ही दु खती हुई रगो को छुआ है, उसकी वेदना को नजदीक से देखा है और दिए है कुछ ऐसे जीवन की सफलता के सूत्र जो उसे शाश्वत, यथार्थ और परम पावन मार्ग पर चलाकर निर्भय बन सके।

धर्म की कितनी भी परिभाषाये कर दी जाये पर यदि वे हमे जीवन-जीने की कला नही दे सकी तो उन परिभाषाओ मे अधूरापन ही बना रहेगा। इस दृष्टि से उपाध्यायश्री का यह कथन नितान्त सत्य है कि अभय, समता और क्षमाशीलता ही धर्म है। इन्ही से जीवन मूल्यो की साधना होती है। उसमे सार्वजनीनता, सर्वकालिकता और सर्वदेशिकता आती है, और आत्मसाक्षात्कार का द्वार उद्घाटित होता है।

मन कोरा कागज है। हमारी भावनाये, सस्कार और वृत्तिया उन पर चित्र बन जाती हैं। जिससे उसकी स्वाभाविक चचलता द्विगुणित हो जाती है। सकल्प, विकल्प और विचारो के अन्तर्द्वन्द्वो मे झूलता यह मन व्यक्ति को साधना से गिराने मे कोई कसर नही रखता। इस लिए साधक उसे एकाग्रताकी डोरी से कसकर बाध लेता है और निर्विचार की स्थिति मे पहुचने का भरपूर प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न मे उसे विशुद्ध मात्रिक शक्ति और आतरिक परीक्षण विशेष सहयोगी होता है जिसका उल्लेख उपाध्यायश्री ने मन विचारो का विश्व विद्यालय निबन्ध मे किया है।

शिक्षा चारित्रिक निर्माण का साधन है। यह चारित्रिक निर्माण सामाजिक परिस्थिति और परिपार्श्विक वातावरण पर टिका रहता है। इसके लिए महापुरुषो की जीवनिया, धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या तथा नैतिक और आध्यात्मिक सदर्भ से परिचय अत्यावश्यक है। इससे बौद्धिक चेतना का विकास और आन्तरिक व्यक्तित्व का निर्माण होगा। 'शिक्षा जगत के सुलगते प्रश्न' बिना आध्यात्मिकता के हल नही हो सकते। शिक्षक का भी एक विशेष उत्तरदायित्व बन जाता है। वह यदि जीवन भर सही विद्यार्थी बना रहता है तो शिष्य को भी सन्मार्ग पर लाने मे समर्थ हो जाता है। गुरूकुल प्रणाली कदाचित आज भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है इस सदर्भ मे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली को व्यवहारिक बनाये बिना सार्थक नही कहा जा सकता। पुस्तकीय ज्ञान ही इसके पर्याप्त नही है। उसे तो जीवन के उच्च आदर्शों और भारतीय सस्कृति के अनुकूल दायित्वो से सराबोर होना चाहिए। जिससे श्रमशीलता, समता और राष्ट्रीयता का विकास हो सके। यह तथ्य भी विचारणीय है कि शिक्षा का सम्बन्ध मात्र धनार्जन के स्रोत मे अभिवृद्धि ही नही है बल्कि जीवन को स्वावलम्बी, परिश्रमी, अहिसक और सवेगी बनाना है। जीवन के हर पल मे सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र के सुगन्धित पुष्प खिलते रहे। सदाचार का दीप जलता रहे और आसुरी वृत्ति समाप्त हो जाये तो ही मानव जीवन सफल माना जा सकता है।

जीवन मे आध्यात्मिकता को पल्लवित करने के लिए इन्द्रियो पर अनुशासन रखना भी आवश्यक है। इसके लिए आहार शुद्धि, सम्यक् योग और तत्प्रति सलीनता, कायोत्सर्ग जैसे साधन उपयोगी माने जाते है। इन्द्रियो को वश मे रखने वालो की कथाओ से साहित्य भरा पडा है। उपाध्यायश्री ने ऐसी ही कतिपय कथाओ को इस पुस्तक मे उद्धृत किया है जो बडी मार्मिक और हृदयवेधक है। ये कथाये सयम और सतोष की शिक्षाये देती है। यही सयम और सतोष जीवन का श्रृंगार है। सयम

के क्षेत्र मे नारी को दोष देना एकागिता है, मूर्खता है। नारी तो वस्तुत पुरुष को सद्गृहस्थ होने मे सहयोगिनी बनती है, उसे अध्यात्म की ओर मोड देती है। उपाध्याय श्री ने उसे कामुकता की काल - कोठरी नही बल्कि तरूवर की सघन छाव कहा है। जहा बैठकर गृहस्थ जीवन के नये - नये पाठ पढ सकता है।

जैन परम्परा मे णमोकारमन्त्र को अनादि मूल महामन्त्र माना गया है जिसकी भक्ति पूर्वक आराधना कर अपवर्ग की प्राप्ति की जा सकती है। उसके माध्यम से जिनेन्द्रदेव की अर्चना की जा सकती है। उपाध्यायश्री ने इसके अचिन्त्य प्रभाव का वर्णन अनेक उल्लेखो के साथ किया है। इसी प्रसग मे जिनदर्शन और उपासना का फल बताते हुए कहा है, कि न्यायोपात्त धन का दान सुपात्र के लिए हो तथा जीवदया पूर्वक आहार दान औषधिदान और अभयदान भी हो। साधक यह सब कुछ नि काक्षी होकर करे।

काक्षी और आसक्त व्यक्ति तनावग्रस्त रहता है और उससे बीमारि्ो को आमन्त्रित करता है। अह और मद का विसर्जन कर उससे मुक्त होने द. लिए साधक को कायोत्सर्ग करना चाहिए। चिता समान चिन्ता को दूर कर शरी के प्रति ममत्व छोड देना चाहिए। मानसिक एकाग्रता और ध्यान के माध्यम से त.ाव से मुक्त हुआ जा सकता है। अपने आप पर नियन्त्रण स्थापित कर और आवे्ग को समाप्त करने की दिशा मे कदम बढाने से हमारी चेतना जागृत हो जायेगी।

उपाध्याय श्री ने मासाहार और गर्भपात जैसी अमानवीय क्रियाओ पर भी चिन्ता व्यक्त की है और कहा है कि मानसिक पतन एव चारित्रिक क्षरण के साथ सवेदन शून्यता की यह पराकाष्ठा है। व्यक्ति वस्तु के स्वभाव पर निष्पक्ष हो कर चिन्तन करे तो वह इस चारित्रिक पतन से बच सकता है और पर्यावरण दूषित होने से उत्पन्न समस्याओ से मुक्त हो सकता है। आशा और तृष्णा के कारण व्यक्ति भौतिक साधनो को एकत्रित करता है। प्रकृति के साथ क्रूर व्यवहार करता है और हिसक साधना का उपयोग कर सृष्टि पर प्रहार करता है। तीर्थंकर महावीर ने जिस अहिसक सयमित और मानवीय जीवन पद्धति का सूत्रपात किया है उसका परिपालन करने से ये सारी समस्याये उत्पन्न ही नही होती। पर्यावरण को सुरक्षित रखने और सामाजिक सन्तुलन को बनाये रखने मे जैनधर्म ने जो अहिसक और अनेकान्त के सिद्धान्त दिये है वे निश्चित ही बेमिशाल है। उनका यदि सही ढग से परिपालन किया जाये तो विश्वशान्ति प्रस्थापित होने मे बडी मदद मिल सकती है।

उपाध्यायश्री गुप्तिसागरजी एक तरूण साधक है। निर्ग्रन्थ परम्परा के अनुयायी है। सुलझे हुए विचारक हैं, क्रान्तिदर्शी है, विचार सवाहक है और आचार के धनी है। महावीर की वाणी को जीवन मे उतारने का उन्होने महाव्रत लिया है। कुशल कवि होने के कारण सवेदनशीलता भी उनके साहित्य मे प्रतिबिम्बित होती है। क्रूरता, विषमता और स्वभाव की जटिलता को मानव के मन से समाप्त कर करूणा का विकास हो, समता का जागरण हो और कषायो का सयमन हो यही उनकी आकाक्षा है, यही उनका विश्रुत प्रयत्न है सरल भाषा मे अपने विचारो को प्रस्तुत कर उपाध्यायश्री ने भौतिकवादी व्यक्ति के मन को झकझोरने का जो सफल आयास किया है वह अभिनन्दनीय है।

प्रस्तुत कृति 'किसने मेरे ख्याल मे दीपक जला दिया' साप्रदायिक वाद से अनछुई है। इसमे लेखक ने जन - जन के मानस को छुआ है। घिसी - पिटी, रटी - रटाई लकीरो से हटकर एक ऐसा उन्मुक्त आकाश पाठको को दिया है जहा नैतिक एव पवित्र सदाचारो से ओत - प्रोत उन्मुक्त विचार पछी विचरण कर सके। विवेकानन्द के समान उनकी साहित्य धारा सतत प्रवाहित होती रहे, और लोकजीवन को अनुप्राणित कर तीर्थंकर महावीर की अहिसक विचार धारा को प्रचारित - प्रसारित करती रहे यही हमारी भावना है। उनके पवित्र विचार जन जागरण का केन्द्र बनेगे मानवता का सदेश प्रवाहित करेगे, युग बोध देते हुए सतप्त जीवन को नई दिशा देगे, नई अभिव्यक्ति देगे यह हमारा प्रबल विश्वास है। वे निरामय रहकर अपनी वीतराग साधना करते रहे और साथ ही अज्ञानान्धकार से ग्रसित जनता के लिए भी दीपक का काम करे यही हमारी कामना है।

डा॰ भागचन्द्र जैन भास्कर
अध्यक्ष
पालि - प्राकृत विभाग,
विश्व विद्यालय नागपुर

उच्चादर्शों की मंदाकिनी

उपाध्याय गुप्तिसागर जी नैतिक मूल्यो और उच्च आदर्शों के प्रति समर्पित कुशल लेखक एव कवि है। आपकी लेखनी और वाणी ने सदा उच्च-आदर्शों की मन्दाकिनी को प्रवाहित किया है।

प्रस्तुत कृति 'किसने मेरे ख्याल मे दीपक जला दिया' ललित निबधो की एक महत्वपूर्ण कृति है। जिसने मानव के अन्तस् को छुआ है सुप्त सवेदनाओ को जगाया है। योग्यता का अभिनन्दन स्वालम्बन, चिता और चिन्ता, मानसिक प्रदूषण से बिगडता पर्यावरण, सदाचार जीवन शुद्धि का बीज , हाइपर टेन्शन, गर्भपात, 'किसने मेरे ख्याल मे दीपक जला दिया, 'बादशाहे जैन का ये महिरवाँ दरबार

है, णमोकार जीवन की सजीवन घूट्टी, आओ विचारे विचार पर, मन विचारो का विश्वविद्यालय छाव, शुद्धाचरण वाली शिक्षा ही श्रेयस्कर, नारी तरूवर की सघन छॉव, आदि-आदि निबन्ध ऐसे है जिनकी आज नई और पुरानी, युवा और वृद्ध दोनो पीढियो को नितान्त आवश्यकता है। उपाध्याय श्री का साहित्य अजन की भॉंति भौतिकता की चाक चिक्य से धुधली हुई आखो की धुन्ध मिटाकर दृष्टि को निर्मलता प्रदान करता है।

'उपाध्याय गुप्तिसागर साहित्य सस्थान 'इन्दौर' का आरभ से ही यह उद्देश्य रहा है कि जो साहित्य चरित्र निर्माण करता हो एव मानवीय मूल्यो को प्रतिष्ठापित करता हो उसी का प्रकाशन किया जाये। हमे हर्ष है कि अपने ही उद्देश्यो की श्रृखला मे एक नई कडी जुड रही है, किसने मेरे ख्याल मे दीपक जला दिया।' यह सस्थान का षष्ठम पुष्प है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि लेखक ने सरल और सहज लहजो मे अपनी बात पाठको तक पहुँचायी है। आपके विचारो तथा भाषा शैली मे कही क्लिष्टता, जटिलता नही है। पाठक सहज प्रवाह मे पढता हुआ बहता चला जाता है।

प्रस्तुत प्रकाशन मे श्री चेतन लाल सतेन्द्र कुमार जैन का अर्थ सौजन्य सहभागी हुआ। सस्थान की ओर से आपके मगल भविष्य की कामनाओ सहित साधुवाद। साथ ही इसकी पाण्डुलिपि तैयार की भाई मोहन जोशी 'पीयूष' ने एव भाई अनिल ने (गाधी नगर) मुद्रण मे अपना आपेक्षणीय सहयोग दिया उनके लिए मै आशीर्वाद देने का लोभ सवरण नही कर पा रही हूॅ।

इस निर्दोष मुद्रण यात्रा मे सबसे निकट सहयोग रहा ब्र बहिन रजना शास्त्री का। इनके लिए मेरा यही शुभाशीष है कि वे दीर्घायुक एव स्वस्थ्य रहकर सयम पथ पर अविरल अग्रसर होती रहे।

उपाध्याय श्री के श्री चरणो मे अनेकश वन्दन। आपसे यही अपेक्षा है कि आप इसी प्रकार का जनोपयोगी साहित्य द्वारा मानव समाज का ज्ञान पथ आलोकित करते रहे।

सिद्धान्त रत्न ब्र सुमन शास्त्री
सम्पादक-गुप्ति सदेश

अनुक्रमणिका

1	योग्यता का अभिनन्दन स्वावलम्बन	15
2	सस्कार की फलश्रुति वैराग्य	22
3	भीतरी जगत के मुसाफिर गुरू–शिष्य	29
4	णमोकार मत्र 'जीवन की सजीवनी घुट्टी	36
5	बादशाहे जैन का यह महिर वा दरबार है	44
6	मनुष्य जन्म रूपी वृक्ष के षट फल	49
7	नारी तरुवर की सघन छॉव	63
8	किसने मेरे ख्याल मे दीपक जला दिया	71
9	धर्म वृक्ष पर फलते है सर्वेन्द्रिय सुख	80
10	मन विचारो का विश्व विद्यालय	86

11	अहिसा आख्यान नहीं आचरण है	93
12	सत्य का सर्वश्रेष्ठ अभिनन्दन सत्य–आचरण'	99
13	जीवन का दीप स्तम्भ – अचौर्य	103
14	जीवन का वास्तविक आनद ब्रह्मचर्य	108
15	मुक्ति का हिमायती अपरिग्रहवाद	113
16	मानसिक प्रदूषण से बिगडता पर्यावरण	119
17	हाइपरटेन्शन	129
18	आओ! विचारे विचार पर	134
19	चिता और चिन्ता	139
20	गर्भपात ! गर्भपात !! गर्भपात !!!	
	इतिहास तुझे कभी माफ नहीं करेगा।	144
21	सदाचार जीवन शुद्धि का बीज	150
22	सदाचार एक व्यवहारिक सत्य	155
23	अहिंसा प्रचेता का अर्थशास्त्र	158
24	शुद्धाचरण वाली शिक्षा ही श्रेयस्कर है	165
25	निर्वाण की परिकल्पना भारतीय सदर्भ मे	173

किसने

मेरे ख्याल में

दीपक जला दिया?

योग्यता का अभिनंदनः स्वावलंबन

अपने ऊपर विश्वास करना, अपनी शक्तियो पर विश्वास करना, एक ऐसा दिव्य गुण है, जो हर कार्य को करने योग्य साहस, विचार एव योग्यता उत्पन्न करता है। दूसरो के ऊपर निर्भर रहने से अपना बल घटता है और इच्छाओ की पूर्ति मे अनेक बाधाए उपस्थित होती हैं। स्वाधीनता, निर्भयता और प्रतिष्ठा इस बात मे है कि अपने ऊपर निर्भर रहा जाय, सफलता का सच्चा और सीधा पथ भी यही है।

यह ससार प्रतियोगिता का रगस्थल है। यहा पर जो विजयी होता है, वही पुरस्कृत किया जाता है, जो अपनी योग्यता और पात्रता का प्रमाण देता है, विजयश्री वही वरण करता है। अयोग्य, आलसियो और परावलंबियो के लिए इस सघर्ष भूमि मे कोई स्थान नही है।

पुरुषार्थ का सहारा

यदि जीवन मे कुछ बनने की इच्छा है तो स्वय अपने पुरुषार्थ का ही सहारा लेना होगा। यह सोचना गलत होगा कि कोई दूसरा कृपा करके कोई ऐसा मार्ग प्रशस्त कर देगा जो इच्छित लक्ष्य की ओर जाता हो। यह सच है कि उन्नति करने के लिए समाज की सहायता एव सहयोग की आवश्यकता होती है, किन्तु इस आवश्यकता की पूर्ति यो ही अनायास नही हो जाती। उसके लिए योग्यता और पात्रता का प्रमाण देना नितान्त आवश्यक है, जिसको पाने के लिए फिर भी स्वय अपने आप पुरुषार्थ करना होगा। जो लोग अपना स्वतत्र पुरुषार्थ न करके अपना श्रम और योग्यता दूसरो के हाथ बेच देते है वे कदाचित ही आत्मनिर्भर बन पाते है।

भौतिक उन्नति की तरह आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति भी आत्मनिर्भरता पर ही निर्भर है। इस विषय मे श्रेष्ठ और सिद्ध पुरुषो से निर्देश तथा पथ दर्शन तो पाया जा सकता है, लेकिन उसकी साधना स्वय ही करनी होती है। आत्म विश्वास के सम्बन्ध मे किसी दूसरे की साधना अपने काम नही आ सकती। आत्म साधना मे जिस सयम-नियम-व्रत-उपवास, अनुष्ठान और तपस्या की आवश्यकता होती है उसका साधन स्वय अपने

आप ही करना होगा, तभी उनका यथार्थ लाभ प्राप्त हो सकता है। यदा - कदा गुरुजनो की कृपा से भी आत्म प्रकाश की किरणे मिल जाती हैं, किन्तु इस कृपा के लिए पुन आत्म निर्भरता पर आना होगा। गुरु अथवा ज्ञानी पुरुष को प्रसन्न करने के लिए जिस सेवा और परिचर्या की आवश्यकता होती है वह तो अपने किए ही पूरी हो सकती है, कोई बदले मे सेवा करके गुरुजनो की प्रसन्नता किसी दूसरे के लिए सपादित नही कर सकता।

उत्साह आवश्यक

कोई भी क्षेत्र और विषय क्यो न हो, उसमे उन्नति के लिये आत्मनिर्भरता का गुण विकसित करना ही होगा। परावलम्बी प्रवृत्ति से किसी प्रकार की उन्नति नही की जा सकती। आत्म विश्वास, योग्यता, क्षमता, साहस और उत्साह आदि ऐसे गुण है, जो जीवन को उन्नति के शिखर पर ले जाने के लिए न केवल उपयोगी ही है, बल्कि अनिवार्य भी हैं। जिसमे आत्म विश्वास की कमी होगी वह किसी पथ पर बढने की कल्पना ही नही कर सकता। वह तो यथा - स्थिति को ही गनीमत समझकर चुपचाप अपना जीवन कट जाने मे ही कल्याण समझेगा। जो कर्त्तव्य के प्रशस्त पथ पर चलेगा ही नही, जिसे यह विश्वास ही न होगा कि वह भी उन्नति कर सकता है, आगे बढ सकता है, उन्नति और प्रगति उसके लिए असभव ही बनी रहेगी।

जिनमे उत्साह नही, वह जीवन - पथ पर आई एक ही असफलता से निराश होकर बैठ जाऐगे। एक ही आघात मे उनके उन्नति और विकास के सारे स्वप्न चकनाचूर हो जायेगे। निश्चय ही उन्नति और प्रगति मे उत्साह का बहुत महत्व है। उत्साह से वंचित हुआ व्यक्ति साधारण काम भी सफलता पूर्वक नही कर सकता तब कोई ऊँचा लक्ष्य तो बहुत दूर की बात है।

स्वावलबन अथवा आत्म निर्भरता के पवित्र व्रत पालन से उन्नति और विकास के सारे द्वार खुल जाते है। जिसने आत्म निर्भरता का व्रत लिया है वह इस लज्जा से कि कही किसी विषय से परमुखापेक्षी होकर उसका व्रत भग न हो जाए, स्वय प्रयत्नपूर्वक अपने अन्दर की सारी कमिया दूर करता रहेगा। दूसरे का मुख देखने या हाथ पसारने के वजाय स्वाभिमानी व्यक्ति अपनी सारी कमियो को दूर करने का कोई प्रयत्न नही छोडेगा, चाहे फिर इसके लिए उसे कितना ही कष्ट और कठिनाई क्यो न उठानी पडे।

किसी भी क्षेत्र अथवा विषय मे उन्नति क्यो न करनी हो, कोई भी लक्ष्य क्यो न पाना हो, स्वावलम्बी बने बिना उसमे सफलता नहीं मिल सकती। दूसरो की शक्तियो, साधनो और परिस्थितियो पर अपना जीवन लक्ष्य निर्भर कर देने वाले प्राय असफल होते है।

परावलंबी पृथ्वी का बोझ

परावलम्बी व्यक्ति न केवल अपने लिए ही समस्या होता है, बल्कि दूसरो के लिए भी समस्या और उलझन बनता रहता है। साधारण-सी कठिनाइयो और कामो के लिए दूसरो के पास जाकर खडा हो जाता है और सहायना सहयोग की याचना करने लगता है। कोई भी लक्ष्यनिष्ठ व्यक्ति उसकी इस याचना से असमजस मे पड जाता है। यदि वह उसके नगण्य से काम के लिए अपना बहुमूल्य समय देता है तो अपनी उन्नति की स्पर्धा मे दो कदम पीछे रह जाता है। और यदि इकार करता है तो मानवीय उदारता पर आच आती है। बहुत बार तो उसे अपनी हानि कर उसके काम से वक्त देना होता है और बहुत बार मजबूरी बताकर मानसिक वेदना सहनी पडती है। ऐसे परमुखापेक्षी और परावलम्बी व्यक्ति वास्तव मे धरती का भार के सिवाय और कुछ नही होते।

परावलम्बन बडी हीन, हानिकारक और लज्जास्पद वृत्ति है। हर स्वाभिमानी व्यक्ति को इसका त्याग कर देना चाहिए। स्वावलम्बन और आत्म - निर्भरता एक बडी उदात्त और आदर्श वृत्ति है। हर प्रयत्न और पुरुषार्थ के मूल्य पर इसे विकसित करना ही चाहिए। परावलबन मनुष्य की मानसिक निर्बलना है। जो उसे उचित नही है। पुरुष को पुरुषार्थ ही शोभा देता है, उसे हर प्रकार से अपने हर क्षेत्र मे स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनना चाहिए और ससार मे चल रही भौतिक अथवा आध्यात्मिक, किसी भी प्रतियोगिता को अगीकार कर विजय श्री वरण करनी ही चाहिए।

ऐसा नही है कि प्रत्येक समस्या या गुत्थी को सुलझाने मे व्यक्ति स्वय समर्थ होता है। कभी - कभी दूसरो की सहायता भी लेनी पडती है। दूसरो से सहायता अवश्य लीजिए परन्तु उन पर अवलंबित मत रहिए। अपने पैरो पर खडे होकर अपनी समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न कीजिए। जब आत्म -

विश्वास के साथ सुयोग्य मार्ग की तलाश करेगे तो वह किसी न किसी प्रकार मिल कर ही रहेगा।

जब मनुष्य आत्मनिर्भरता के वीरतापूर्ण दृष्टिकोण को छोडकर पराया मुह ताकने की कायरता, क्लीवता और हीनता की अधकारमयी भूमिका मे उतरता है तो वह बडे दीन वचन बोलने लगता है एव दूसरो से अपेक्षाए रखने लगता है। वस्तुत सारी समस्याओ को सुलझाने की कुजी अपने अन्दर है। दूसरे लोगो से जिस बात की आशा करते हैं, उसकी योग्यता अपने अन्दर पैदा कीजिए तो बिना माँगे अनायास ही वह इच्छाए पूरी होने लगेगी। जरुरत है तो सिर्फ दृढ इच्छा शक्ति की।

आत्म-निर्भरता योग्यता का पुरस्कार

आत्मनिर्भरता मात्र विचार करने से नही आती, बल्कि उसके लिए प्रयत्न भी करने पडते है तथा विचारो के अनुरूप ढलने की कोशिश भी करनी पडती है जैसे कि आप नही चाहते हैं कि बीमारी आपको सताये, तो स्वास्थ्य के नियमो पर दृढता पूर्वक चलना आरभ कर दीजिए। आप चाहते है कि ऐश-आराम उडावे तो धन कमाना आरभ कर दीजिए। आप चाहते है कि बहुत से मित्र हो, तो अपना स्वभाव आकर्षक बनाइये। आप चाहते है कि लोग आपका लोहा माने तो शक्ति सपादन कीजिए। आप चाहते है कि प्रतिष्ठा प्राप्त हो तो प्रतिष्ठा के योग्य कार्य कीजिए। आप चाहते है कि ऊँचा पद प्राप्त हो तो उसके योग्य गुणो को एकत्रित कीजिए। धन, बुद्धि, बल, विद्या चाहते है तो परिश्रम और उत्साह उत्पन्न करिये। जब तक अपने भीतर वे गुण नही हैं जिनके द्वारा मनोवाञ्छाऐ पूरी हुआ करती है, तब तक यह आशा रखना व्यर्थ है कि आप सफल मनोरथी हो जावेगे।

सफल मनोरथ के लिए बाहर की शक्तियाँ भी सहायता किया करती है, पर करती उन्ही की है जो उसके पात्र है। इस ससार मे अधिक योग्य को महत्त्व देने का नियम सदा से चला आया है। ससार मे सुयोग्य व्यक्तियो को सब प्रकार सहायता मिलती है। माली अपने बाग मे तन्दुरुस्त पौधो की खूब हिफाजत करता है और जो कमजोर होते है उन्हे उखाड कर उस जगह दूसरा बलवान पौधा लगाता है। ईश्वर की सहायता भी सुयोग्यो को मिलती है। ससार मे सफलता, लाभ की आकाक्षा के साथ अपनी योग्यता मे वृद्धि

करना भी आरम्भ कीजिए। यदि आप आत्मनिर्भर हो जावे एवं आप जैसा होना चाहते है, उसके अनुरूप अपनी योग्यताएँ अर्जित करने लगें तो कोई शक्ति नही जो आपको लक्ष्य तक न ले जाये।

सफलता के अग्रदूत

अपनी आत्मा को बाह्य परिस्थितयो का निर्माता - केन्द्र बिन्दु मानिये। जो घटनाऐ सामने आ रही हैं, उनकी प्रिय- अप्रिय अनुभूति का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लीजिए। अपने को जैसा चाहे वैसा बना लेने की योग्यता अपने मे समझिये। अपने ऊपर विश्वास कीजिए। किसी और का आसरा मत ताकिये। बिना आपके निजी प्रयत्न के योग्यता सपादन के बाहरी सहायता प्राप्त न होगी, यदि होगी तो उसका लाभ बहुत थोडे समय मे समाप्त हो जाएगा और पुन वही दशा उपस्थित होगी जो पूर्व मे थी। उत्साह, लगन, दृढता, साहस, धैर्य व परिश्रम इन छ गुणो को सफलता का अग्रदूत' माना गया हैं। इन दूतो का निवास स्थान आत्म विश्वास मे है। अपने ऊपर भरोसा करेगे तो यह गुण उत्पन्न होगे।

''उद्धरेत् आत्मानात्मानम्'' की शिक्षा देते हुए गीता ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि अपना उत्थान चाहते हो तो उसका प्रयत्न स्वय करो। जैसे अपने पेट के पचाये बिना अन्न हजम नही हो सकता, जैसे अपनी आखो के बिना दृश्य दिखाई नही पड सकता, उसी प्रकार अपने प्रयत्न बिना उन्नत अवस्था को भी प्राप्त नही किया जा सकता है।

परावलबन बनाम पराधीनता

आत्मविश्वासी, आत्म - निर्भर भी होता है। आत्म - निर्भर व्यक्ति कभी बडी - बडी कल्पनाएँ नही बनाता। वह केवल उतना ही सोचता है, जितना उसे करना होता है, और जितना कर सकने की उसमे शक्ति होती है। जबकि पर - निर्भर व्यक्ति की सहज कमजोरी यही होती है कि वह दूसरो के भरोसे जीवन मे बडे - बडे लक्ष्य निर्धारित कर लेता है कि शिष्टाचारिक आश्वासन मे भी वह अखण्ड विश्वास करने लगता है। दर - असल आत्म - निर्भरता के अभाव मे मनुष्य जब दूसरो के सहारे चलने की भावना का शिकार हो जाता है तो ससार मे हर व्यक्ति उसे शक्तिवान तथा मित्र मालूम होता है और उसका विश्वास उसके प्रति स्थायी हो जाता है।

यही कारण है कि परावलम्बी व्यक्ति आजीवन दुखी एव दरिद्र बना रहता है। जो दूसरो के सहारे जीना चाहेगा उसे दयनीय जीवन बिताना ही होगा। परावलम्बन का दूसरा नाम पराधीनता है - 'पराधीन सपने सुख नाही' वाली दशा से कभी भी कोई व्यक्ति मुक्त नही हो सकता। वह सदा त्रस्त, दु खी तथा असतुष्ट ही रहेगा। पर - निर्भरता ससार का सबसे बडा अभिशाप है।

जो आत्म निर्भर है, आत्म विश्वासी तथा आत्म - निर्णायक है, जिसके पास अपनी बुद्धि और अपना विवेक है, उसका ही जीवन सफल और सतुष्ट होता है। स्वावलम्बी दूसरो पर आश्रित नही रहता। आत्म - निर्भर व्यक्ति का लक्ष्य उसकी गति के साथ स्वय उसकी ओर खिचना चला आता है। आत्म निर्भर व्यक्ति के लिए समय के साथ अपनी शक्ति के भरोसे से प्रारभ किया हुआ काम ठीक उसी प्रकार फल लाता है, जिस प्रकार बोया हुआ बीज फलीभूत होता है।

आत्म निर्भरता दिव्य गुण

आत्म निर्भरता और आत्म विश्वास ऐसे दिव्य गुण है जिनको विकसित कर लेने पर ससार का कोई भी कार्य कठिन नही रह जाता। आत्मवान् व्यक्ति मे समयानुसार बुद्धि का स्वय स्फुरण होता रहता है। आत्म - विश्वासी को अपने निर्णय तथा कार्य पद्धति मे किसी प्रकार का सदेह नही होता। वह उन्हे विश्वास पूर्वक कार्यान्वित करके सफलता प्राप्त कर ही लेता है। आत्म - निर्भर व्यक्ति मे अपनी असफलता का दोष दूसरो को देने की निकृष्ट निर्बलता नही होती। आत्म - निर्भर अपनी असफलता का कारण स्वय अपने अदर खोजा करता है और उसे पाकर वह शीघ्र ही उसे सफलता मे बदल लेता है। परावलम्बी की तरह असफलता के लिए किसी को कोसने तथा दोष देने का अवकाश उसके पास नही होता।

अत यदि आप जीवन मे सफलता, उन्नति, सम्पन्नता एव समृद्धि चाहते है तो स्वावलम्बी बनिये। अपने जीवन पथ को खुद अपने हाथो से प्रशस्त कीजिए और उस पर चलिये भी अपने पैरो से। परावलम्बी अथवा पराश्रित रहकर आप दुनियॉ मे कुछ न कर सकेगे। **मनुष्य की शोभा आश्रित बनने मे नहीं, आश्रय बनने मे हैं।** क्या आश्रय बनने के लिए इस से

बढकर कोई शानदार चीज हो सकती है कि हमारी इच्छाए हमारे आश्रित हो, कम-से-कम हो और हम खुद ही उन्हे पूरा करे। यदि हम इच्छा निरोध या इच्छा परिमाण का व्रत ले ले तो हम पूर्णत आत्म निर्भर हो सकते हैं। जो इच्छाओ के दास है वे पराश्रित है, परावलम्बी हैं, वे आश्रित हैं, आश्रय बनने जैसी विराट क्षमता उनमे कहाँ हैं? 'आश्रय' बनने के लिए पुरूषार्थ वादी होना आवश्यक है जो पुरूषार्थ वादी हैं वे आशावादी है, भाग्य शाली पुण्यात्मा है उनके जीवन मे सदा खुशियो के दीप जगमगाते हैं। जो भाग्यवादी हैं वे निराशावादी है पापी है। उनके जीवन मे खुशियो के दीप उन्ही की निराशा मयी वायु के झौके से बुझ जाते हैं।

नि सन्देह यदि आप निष्कलक, निर्भीक और निर्द्वन्द्व जीवन जीना चाहते हैं तो आत्म-निर्भर बनकर अपना काम करिए। विश्वास कीजिए, आप अवश्य अपने लक्ष्य मे सफल होगे। मनोवांछित जीवन के अधिकारी बनेगे। ■■

मनुष्य का कार्य ही उसकी क्षमता का प्रमाण है। जब योग्यताए प्रबल होती है तब अधिकारो की आकाक्षा नही होने पर भी अधिकारो की आवलियॉ स्वत: योग्य पुरूष के पास दौडी चली आती है। और अपने स्वावलंबी स्वामी को विकास की ओर गतिमान करती है। स्वावलबी, श्रमजीवी हर दुविधा को सुविधा मे परिणत कर विषम-परिस्थितियो की घाटी को भी हॅसते-हँसते पार करने का अदम्य पौरूष रखता है। उसे हीन भावना का राहु कभी अपना ग्रास नही बना पाता। समाज ऐसी ही स्वावलम्बी योग्यता का गौरवशाली अभिनन्दन करती है। योग्यता का मानदण्ड वेतनमान नही है प्रत्युत उसका स्वावलम्बी जीवन है। एक चित्रकार सुन्दर दीवार पर जो आकर्षक चित्र सकता है, वही चित्रकार कच्ची मिट्टी की दीवार जिस पर शैवाल एवं ईंट के टुकड़े झांक रहे हो उस पर सुन्दर चित्रकारी नही कर सकता यह दोष चित्रकार का नही अपितु दीवार की योग्यता-अयोग्यता का है। इसी भांति अभिनन्दन किसका? बाल, युवा, वृद्ध, अमीर-गरीब लोकख्यात प्रतिष्ठित पदवान किसका? उत्तर होगा; अभिनन्दन केवल योग्यता का स्वावलम्बी जीवन का। जिसकी बुनियाद है जीवन की नैतिकता पवित्रता।

संस्कार की फलश्रुति:वैराग्य

राग के अभाव में जो मानसिकता निर्मित होती है उसका नाम है वैराग्य। और वैरागी वही हो सकता है जिसका भोगो के प्रति अनाकर्षण है। इन्द्रिय और मन पर पडने वाली मोह-सस्कार की काली छाया से दूर खडे हुए बिना, वैरागी होना वैसा ही असभव है जैसे ज्येष्ठ की चिलचिलाती धूप मे श्यामल निशा का अस्तित्व। जिसके जीवन मे वैराग्यानुभूति हो जाती है वह भले ही सिद्धात/शास्त्र, धर्मज्ञ न हो लेकिन उसकी साधना अप्रतिम हो जाती है, क्योंकि उसके वैराग्य पौध को सिचन मिलता है आस्था और सहिष्णुता के पावन नीर का।

वैराग्य जल से वासना की आतरिक अर्चिष शात होती है, विषय-ईंधन से नही। विषयो की अधी दौड मे धावमान चेतना को अन्तर्मुखी बनाने का एकमात्र साधन है वैराग्य। जो अत -शोधन की प्रक्रिया है, जीवन का भूषण है, आनद का स्रोत है। और है एक ऐसा सुरक्षा कवच जो व्यक्ति की अनवरत रक्षा करता है।

वैराग्योद् भूति के लिए तीन तत्व आवश्यक हैं। द्वादशानुप्रेक्षा का चितन, सम्यक दृष्टिकोण और सस्कार रसायन से सुसुप्त शक्तियो का जागरण। इस त्रिमुखी वाण से जब मोह के बादल छट जाते है तब चेतना उर्ध्वमुखी तो होती ही है साथ-ही-साथ सृजनात्मक शक्ति भी सुविकसित होती है। तो आइए जो सस्कार रसायन से सुसुप्त शक्तियो के जागरण का एक जीवत जीवन आज भी इतिहास के पन्नो पर अपना अमर स देश देते हुए मुस्कुरा रहा है, उसका दर्शन करे।

राज प्रासाद से मस्त पवन के झौके के साथ एक पुरूष स्वर बाहर आया। मदालसे! कितना समय बीत गया लेकिन अभी भी हमारी गोद सूनी है।

बीच मे ही बोल उठी, प्रिये! चिन्तित मत होइए अभी आपके साथ मेरे केवल चार बसत ही तो गुजरे है।

सम्राट ने अपनी सम्राज्ञी को बाहुपाश मे ले लिया। कुछ दिनों पश्चात साम्राज्ञी कहती है- स्वामिन् मेरी कुक्षि मे आपका अकुर फूट रहा है। मेरी अतरेच्छा हो रही है कि मैं आपके साथ धर्मचर्चा करू।

ओह शोभने! आज तूने कितना शुभ समाचार दिया। मेरा हृदय हिलोरे लेने लगा। अहा... मेरे मन को कितना शकून मिल रहा है, बृहस्पति भी इसकी कल्पना/गणना नहीं कर सकेगा? कोमलागी शची की तरह मेरे निकट बैठो, मै तुम्हारी इच्छापूर्ति करूगा।

प्राणवल्लभ! लोक मे सबसे बड़ा अधकार, सबसे बड़ी आग एव सबसे विषैला, खतरनाक विष क्या है? मैं तीनो का उत्तर एक ही शब्द मे जानना चाहती हू।

शुभे! सुनो! मिथ्यात्व सबसे बड़ा और सघन अधकार है। चर्मचक्षु और प्रदीप का प्रकाश इसे देखने और हटाने मे समर्थ नहीं है। मिथ्यात्व ही सबसे भयकर आग है, मेघवृष्टि भी जिसे नही बुझा सकती। और सबसे अधिक जहरीला जहर भी यही मिथ्यात्व है, जो जन्म-जन्मातरो से प्राणियों को पल-पल विषाक्त कर रहा है, जिसका सम्यक्त्व के अलावा लोक में कोई लौकिक इलाज नही है।

अहा... हा... कितना सुदर उत्तर है स्वामिन्। मदालसा कुछ प्यार से इठलाते हुए बोली।

मदालसे! अब विश्राम करो। इस तरह धर्म चर्चा करते-करते मदालसा के नव माह बडे आनदपूर्वक व्यतीत हुए। वह हर-पल-हर क्षण सावधान रहती थी, गर्भस्थ शिशु पर सत्सस्कारो के बीजारोपण मे। समय पक्षी की पंक्ति की भाति उड गया। माँ के सस्कारो से गढे एक सुदर बालक ने शुभ लगन, शुभ दिन, शुभ मुहूर्त, शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र मे जन्म लिया। जन्मोत्सव मे सारी नगरी दुल्हन की तरह सजाई गई। मुह मागे दान वितरित किए गए। कैदी बंधन मुक्त हो गए। रानी माँ ने धाय के हाथों मे बालक न सौप उसके जीवन निर्माण का दायित्व अपने सबल कधो पर ले लिया। मां के शिल्पी हाथ उसे गढ़ने के लिए सकल्पित हो गए। वह अपने नवजात शिशु को घुटी के साथ धर्म सस्कार पिलाने लगी।

'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,
संसार माया परिवर्जितोऽसि।।'

और बालक मयक दूज की तरह दिन-ब-दिन बढने लगा।

बालक की वृत्ति-प्रवृति, बाल सुलभ चेष्टा, अलौकिक थी। उसका चितन कुछ अलग किस्म का था। उसके खेल अध्यात्म के मैदान मे होते थे। उसके बोल लोकोत्तर थे, उसकी जिज्ञासाओं के समाधान पिता के लिए अनुत्तरित थे। पिता के मन मे सदेह की छिपकली चुकचुकाने लगी। पिता ने राजपुत्र को रागवर्धक ससाधनो से जकडने की जैसे-जैसे चेष्टा की, वीतरागता वैसे-वैसे दुगुने वेग से बालक पर अपना आधिपत्य जमाने लगी।

रागी-विराग के बीच द्वद्व होता रहा लेकिन एक दूसरे से अपरिचित अनभिज्ञ-सा। अचानक राजा पर दु ख का पहाड टूट पडा, जब उसने सुना मेरा नौ वर्षीय सुकुमार आज प्रात काल उद्यान मे पधारे एक दिगबर वीतरागी सत का अनुचर हो गया। दीक्षित हो गया। रानी ने राजा को बहुत समझाया। धैर्य बधाया। राजा आश्वस्त हुआ जब रानी ने द्वितीय सतान की आशा की डोर से उसे बाधा।

कुछ दिनो पश्चात आशा की किरण के रूप मे रानी के उदर पर गर्भ चिन्ह उभर आए। राजा की खोई खुशिया लौट आई। अवधि पूर्ण होने पर रानी ने द्वितीय पुत्र को जन्म दिया। पूर्ववत् उत्सव हुए। राजा, पुत्र के प्रति पहले से कुछ अधिक सावधान थे, लेकिन क्या किसी विरागी को बाधने वाला बधन आज तक कोई तैयार कर पाया है? जिसके मन मे सहज रूप से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है उसके लिए बाहरी दुनिया का कोई आकर्षण नही लुभा पाता। पूर्व जन्म के शुभ सस्कारो के सघात और माता के वातावरण ने बालक मे वही चेतना भर दी, जो उसके बडे भाई की रगो मे भरी थी। राग की अवधिपूर्ण कर वह भी अल्पवय मे अपने अग्रज का अनुचर बन गया। समय का चक्र चलता रहा और एक, दो, तीन, चार, पाच और छह राजपुत्र जिनानुगामी होते गए।

राजा का धैर्य सेतु टूट गया, उनका विश्वास डोल गया। रानी उन्हे जितना समझाती, राजा उतने ही उस पर शकित होने लगते। सम्राट की शकित

निगाहो के नागपाश ने सम्राज्ञी को जकड लिया। उनकी निगाहे रानी की गुप्तचरी बन गई।

अर्ध निशा का सन्नाटा। राजप्रासाद मे दीप जल रहे है। पूर्णेन्दु अपनी ज्योत्स्ना के अमृत घट भर-भर कर वातायनो से राजमंदिर मे उडेल रहा है। धूपदान से उठती सुगंधित तरगे राजा को बेचैन बना रही है। बीच-बीच मे किसी बाल पक्षी की मधुर चहचहाती आवाज उसके मन वीणा के तारो को झकृत कर रही है। नरनाथ की आखो से नीद बिदा ले चुकी।

वे बेचैनी से पलग पर करवटे बदल रहे है। कभी-कभी दीर्घ नि श्वास का स्पष्ट शब्द रानी के कानो मे पहुच राजा की जागृति और बेचैनी की सूचना दे रहा है।

क्या आप अभी तक जाग रहे है? एक क्षीण कापती नारी आवाज के साथ कापते हाथो ने राजा को सुखद स्पर्श दिया।

हा! मृदभाषिणी! मैं आज बहुत बेचैन हू। मुझे मेरे जीवन के बुझते दीप से पहले एक कुलदीप एव इस विशाल साम्राज्य को एक 'राजदीप' की आवश्यकता है। इस अभाव मे साम्राज्य चिंतित, शोक निमग्न है लेकिन तुम मेरी और प्रजाजनो की पीडा को नही जानती। शायद समझ भी नही सकोगी। जाओ...। मुझे मत छेडो, तुम विश्राम करो। मुझे एकात दो, उसकी मुझे आवश्यकता है। जाओ, मुझे सब ज्ञात है मेरे पुत्रो के निर्ग्रन्थ वनवासी होने मे तुम्हारा ही हाथ है।

इक्षु से भी अधिक मिठास भरी वाणी मे रानी बोल उठी-स्वामिन्! मोह के आवरण को चीर सम्यक प्रकाश मे आइए। आपके विचारो की परिधि इतनी सकीर्ण क्यो है? आप यह क्यो भूल रहे है जिस प्रकार सुसतति कुल का मुख उज्ज्वल करती है, उसी प्रकार आपके छहो पुत्र वश' को अमर बनाने मे अपना एक छोटा सा एक योग दे रहे है। उस विराट समिधा की आहुति मे आपको प्रसन्न होना चाहिए। आपका वात्सल्य, आपकी ममता, आपकी करूणा तो विश्व के सभी प्राणियो पर बरसनी चाहिए। सतति-मोह ने आपके ज्ञान नेत्रो को मूद दिया है।

समझा! मदालसे! समझा! तुम मोह की सकीर्ण परिधि मे से बाहर

निकल कही दूर बहुत दूर पहुच चुकी हो। शायद इसी विराट ममता ने तुमको पति से विश्वास घात जैसे कृत्य करने के लिए बाध्य किया है। आज इस अर्ध निशा मे मेरे नेत्र खुल गए। मै तुमसे दो मे से एक ही बात कहना चाहता हू या तो यहा से चली जाओ अथवा प्रिय! सिर्फ एक सतान का मुख मुझे और दिखा दो।

रानी ठिठक गई। दिन पर दिन पुन बीतने लगे। रानी ने सातवां गर्भ धारण किया। उसकी दैनिक चर्या पूर्ववत् रही। एक मंगल बेला मे राजमन्दिर नवजात शिशु के रूदन एव परिचारिकाओ की खुशियो भरी खिलखिलाहट से गूज उठा। राजा पहले से ही तैयार था। उसने पुत्र जन्म के समाचार सुन उसी क्षण पुत्र को मा से अलग कर दिया और उसे सौंप दिया धाय को। धाय के हाथो मे रहकर राजपुत्र ने 25 बसत पार कर दिए जीवन रथ की वल्गाए युवावस्था के सारथी ने अपने हाथो मे ली ही थी कि अचानक सेनापति ने समरभूमि की वल्गाए सुकुमार करो मे थमा दी।

बात यो हुई उन दिनो शत्रु पक्ष ने उसके राज्य पर धावा बोल दिया। राजा युद्ध के लिए तैयार हो कि इससे पहले राजपुत्र ने पिता को रोक दिया। पिताजी! मेरे जैसे जवान पुत्र के होते हुए वृद्ध पिता का समरभूमि मे उतरना पुत्र के लिए कलक की बात है। आप यही रूकिए। मै सेना सहित प्रतिद्वद्वी का सामना करने जाता हू। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए ताकि मैं विजयश्री वरण करके ही लौटू। मा का आशीर्वाद लेकर मै प्रस्थान करता हू। पुत्र की बाते सुन पिता की आखे छलछला आई। पिता से आशीर्वाद ले बेटा अत पुर मे मा के कक्ष की ओर बढा।

जन्म के कुछ क्षणो के पश्चात 25 वर्ष के दीर्घ अतराल के बाद आज माँ पुन अपने बेटे का चाद सा चमकता मुखडा देख रही है और वह भी युद्ध प्रस्थान की घडी मे। कितनी विडम्बना है? बेटे ने जैसे ही मा के चरणो मे शीश रखा, रानी का मातृत्व पूरे साहस के साथ भीतर ही भीतर चीत्कार करने लगा, किंतु धैर्य की देवी तत्क्षण सभलती हुई क्षत्राणी की भाषा मे बोली।

बेटे! तुम रणक्षेत्र मे जा रहे हो, जाओ मेरा आशीर्वाद है, लेकिन बेटा

मुझे तुमसे कुछ कहना है। कहते - कहते शब्द हलक मे अटक गए। कोशिश करने पर भी अधरो पर न आ सके।

क्या कहना चाहती हो मा? बेटे ने विचारो मे खोई मा को टोका।

कुछ नही बेटा। यह भोजपत्र पर लिखा हुआ सूत्र तेरे गले मै बाध देती हू। सकट के वक्त इसे खोलकर पढ़ लेना।

जी माताजी! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। कहते हुए वह प्रणाम की मुद्रा मे विनम्रता पूर्वक कक्ष से बाहर निकल गया। उधर मा जब तक वह दिखता रहा, अनिमेष नयनो से निहारती रही।

युद्धक्षेत्र मे राजपुत्र सपूर्ण कला के साथ लड रहा था। शत्रुपक्ष की सेना मगर की तरह उफनती आ रही थी। रणकौशल के अनुभव से अपरिपक्व युवा दिल घबरा गया। तेजी से शत्रु का रथ अपनी ओर बढते देख, उसे मा की बात याद आ गई। तत्काल गले से भोजपत्र निकाल पढने लगा।

सत्व बुब्बय सारिच्छा, छण जोवण जीविय पि पेच्छता।
मण्णति तो वि णिउच्च, इह बलिओ मोह माहप्पो।।

ओह। यह प्राणी, धन, यौवन और जीवन को जल बुदबुदे के समान देखने हुए भी इन्हे नित्य मानता है। उनके लिए युद्ध करता है। यह मोह का ही माहात्म्य है।

ओह! मेरी मा कितनी सुदर और विवेकवान है। जल बुदबुदे के नष्ट होने से पूर्व मुझे चेतावनी दी। सावधान किया। धन्य है मा तू सचमुच धन्य है।

मा दो प्रकार की होती है - एक जन्मदात्री मा, दूसरी जिनवाणी मा। एक ससार बधन मे डालती है, दूसरी बधन से मुक्ति दिलाती है। एक ससार मे डुबाती है, दूसरी ससार से उबारती है। जन्मदात्री मा तू अन्य माताओ से असाधारण है। तेरी कीमत जिनवाणी मा से किसी भी 'मद' मे कम नही है। उसने मन ही मन उस माँ को प्रणाम किया जिसने गर्भ मे ही सत्सकारो का इतना सुदर शिलान्यास कर दिया था, जिस पर विशुद्ध वैराग्य का महल खडा किया जा सकता था। बस वही हुआ, बालक के सम्कार वैसे ही उद्‌भुत होने लगे जैसे कच्ची मिट्टी से ढँका जल का स्रोत। जरा - सी मिट्टी हटी कि

रूका जल पूरे प्रवाह के साथ बहने लगता है। उसके अध्यात्म के धरातल पर समता प्रवहमान हो उठी।

राजपुत्र ने युद्ध विराम की घोषणा कर दी। रथ पर सवार युवा ने अपने कोमल करो से जिनमे एक पल पहले शस्त्र थे, घुघराले श्याम केशो को उखाड्ना प्रारभ कर दिया। समर भूमि धर्मस्थली बन गई। शत्रु राजा मित्र बन गया, उसके लिए राजपुत्र अब शत्रु नही, वदनीय हो गया। लाखो - लाख नेत्रो के समक्ष उस युवा राजपुत्र ने सारे राजकीय चिन्ह ऐसे छोड दिए जैसे मयूर अपने परव, बोझ की पीडा से छोड देता है। अपार जनसमूह के बीच उसने जिनेद्र प्रभू को साक्षी बना दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली और यहा मदालसा का सकल्प धन्य हो गया कि मै तो आर्यिका नही बन सकी किन्तु अपनी सतान को शिव - पथ पर आरूढ कर दिया। समाचार युद्ध भूमि की हवा के साथ राजमदिर तक पहुच गया और मदालसा भी विरक्ति से आपूरित हो आर्यिका के व्रत स्वीकार कर अपने जीवन को चरितार्थ करने सयम - पथ पर बढ गई।

महानुभाव! यह है सस्कार की फलश्रुति, वैराग्य की अनुपम छटा। दिशा - बोध का निर्देशक धवल वस्त्र। जिसे ओढकर मदालसा मुक्ति पथ पर बढने से पूर्व अपने सभी पुत्रो को अग्रेसित कर गई। यही है क्षत्राणी का धर्म। ससार से मुक्ति का दर्शन और है सिद्धत्व प्राप्ति का प्रथम पुनीत प्रयास। सस्कार - रसायन द्वारा सुप्त शक्तियो के जागरण एव वैराग्योभूति का अमोघ मत्र। सस्कारो के नियम गणित की भॉति अकाट्य होते है। सत्सस्कार आपके अन्दर उद्भूत दूषित कुविचारो को वैसे ही नष्ट कर देते है जैसे लौह को तेजाब। सत्सस्कार हमारे जीवन की थाती है। सम्यक् सस्कारो के बिना जीवन उसी प्रकार भार भूत बन जाता है जिस प्रकार गधे पर चन्दन का गट्ठर डालने पर गधा भार का अनुभव करता है, सुगन्ध का नही। सत्सस्कारो की फल श्रुति है वैराग्य। वैराग्य है आकाश की ऊँचाई और राग है पाताल की गहराई। वैराग्य मे किसी प्रकार की क्षुद्रता नही होती जबकि राग मे कोई महानता नही दिरवती। वैराग्य ही राग - बन्धनो को काटने का तेज शस्त्र है।

आइए। रानी मदालसा की घटना से आप भी बधन से मुक्त होने हेतु कुछ सीरवे। जीवन मे सयम को स्वीकार कर इस परिवर्तन रूप ससार से महाप्रयाण करे। ■■

भीतरी जगत के मुसाफिर:- गुरू-शिष्य

गुरू, गोविद दोनो खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरू आपकी, गोविद दियो बताय।।

कबीर की इन पक्तियो मे गुरू की महत्ता स्वत परिलक्षित हो रही है। गुरु का दर्जा ईश्वर से भी ऊचा माना गया है। गुरू के बिना गोविद /भगवान के दर्शन नही हो सकते हैं, क्योंकि अध्यात्म मार्ग पर चलने का पथ-प्रदर्शक गुरू ही होता है। जीवन की टेढी-मेढी कटीली राहो से बचाने वाला भी गुरु ही होता है। गुरू तो वह पारस होता है, जिसके स्पर्श मात्र से जीवन स्वर्ण बन जाता है। जीवन निर्माण को सही दिशा बताने वाले गुरू के बिना जीवन अधूरा है। जीवन को सस्कारी बनाने का उपक्रम है-गुरू का सपर्क। गुणी व्यक्तियो का सानिध्य बिना प्रयास ही सस्कार का निर्माण कर देता है।

जो बच्चो मे सस्कारो का शिलान्यास कर व्यक्तित्व निर्माण तो करना चाहने है, लेकिन गुरू के सपर्क मे आए बिना कुछ पाना चाहते है, तो ऐसे ही लोगो को लक्ष्य कर भगवान महावीर ने कहा है कि-'जो दुर्मति गुणी पुरूषो का सपर्क छोडकर कल्याण की आकाक्षा करता है, वह निर्दय होकर धार्मिक बनना चाहता है, नीति छोडकर यशस्वी बनना चाहता है, शाति और आत्म नियत्रण के बिना ही तपस्या करना चाहता है, मेधा के बिना बहुश्रुत बनना चाहता है, ऑखो की ज्योति खोकर ससार की हर वस्तु देखना चाहता है और मन को चचल रख कर ध्यान करना चाहता है। केवल चाह मात्र से कोई वस्तु नही मिल सकती। उसी प्रकार सत्सपर्क बिना व्यक्ति अपना कल्याण नही कर सकता, अर्थात गुरू के बिना जीवन मे अधकार है, गुरु की महिमा अपरम्पार है।

गुरू का चुनाव-लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि गुरू का सही चुनाव कैसे किया जाए? गुरू बनाने से पूर्व गुरू की सही पहचान करना बहुत जरूरी है। मिट्टी का घडा खरीदने पर हम उसे ठोक-बजा कर उसकी ध्वनि

सुनते है कि कही टूटा - फूटा न निकल जाए। ठीक उसी प्रकार बिना परख किए किसी को गुरू नही बनाना चाहिए। सागर सी गहराई एव शिखर सी ऊचाई जिसमे न हो वह गुरू नही हो सकता। गुरू के लिए भी कई कसौटिया होनी हैं - जो इन कसौटियो पर खरा उतरता है, वही गुरू बनने के गुरूत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकता है। ये हैं - जिसका आचार - व्यवहार स्वच्छ हो, शास्त्रीय आदर्शो का अनुसरण कर दूसरो को प्रेरित करता हो, जिसमे अनुशासन करने की अद्भुत क्षमता हो, जिसमे युग चेतना को सही दिशा मे ढालने की अर्हता हो। जो सतत् ज्ञान ध्यान मे सलीन हो, विषयो की आशा से दूर हो एव निष्परिग्रही हो वही गुरू होने का अधिकार प्राप्त करता है। गुरू की सबसे महत्वपूर्ण शर्त है कि वह निष्पक्ष हो, क्योंकि वह सबका होता है किसी एक का नही।

गुरू तो मकरन्द की मानिन्द होता है जो हर प्राणी के मन प्राण एव नासिका को सुरभित करना है। उनका जीवन सूर्य, चाद की तरह निस्वार्थ होना चाहिए, जैसे सूर्य, चाद बिना अपेक्षा के, बिना भेदभाव के सभी को अपना प्रकाश और ज्योत्सना सहज भाव मे लुटाते है, वैसे ही जिनका घट छोटे - बडे, गरीब - अमीर, कोठी - झोपडी, मेरे शिष्य - दूसरे के शिष्य आदि भेदभाव से रीता होना है वे इस 'गुरूतर भार' वहन के सर्वोत्तम पात्र हो सकते है। ऐसे ही गुरू की आज्ञा पाने के इच्छुक प्रसन्नता पूर्वक उसकी आज्ञा मुकुट की भॉति शिर पर धारण करने के लिए तत्पर रहते है एव उनकी शिक्षाप्रद वचनावलि को कण्ठ मे मुक्ताहार की तरह धारण करते है। गुरू का कर्त्तव्य है कि वे शिष्यो पर इस भॉति का शासन करे ताकि उनमे आत्मानुशासन स्वय विकसित हो। जो गुरू धीवर की तरह शिष्यो को मछलियो की तरह जाल मे न बाधकर उनमे अपने सशक्त शासन द्वारा अनुशासन एव आत्मानुशासन के सस्कारो का सधान कर पक्षी की तरह अपने शिष्य रूपी शिशुओ को मुक्त गगन बिहारी बनाता है वही सच्चा सद्गुरू कहलाता है।

सही अर्थो मे गुरू वही होना है जो स्वय पर प्रथम - अनुशासन करता है। प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करता है एव आत्म विश्वास का स्वामी होता है। कनकच्ची गुरू की सबसे बडी कमजोरी है। जो गुरू अपने शिष्यो को जीवन निर्माण के सूत्र नही दे सकते उनकी गुरूता के आगे प्रश्न चिन्ह

उपस्थित हो जाता है। कारण गुरू की सन्निधि मे मिलने वाला पाथेय अनुपम होता है। गुरू जैसा गुरूत्व जन्मत नही गुण विकाश से सहज प्राप्त होता है जैसे दूध, दही, घृत क्रमश गौरव को प्राप्त होते है। देखिए आचार्य रविषेण की उक्ति-'गुणाद् गुरूत्वमायाति दुग्ध दधि घृत क्रमात्'। वर्तमान मे इच्छाओं से रहित, रागद्वेष से मुक्त, सम्यग्दृष्टि, हितोपदेशक, परिग्रह रहित, समान दृष्टि, दयालु एव किसी कारण वश आपसी वैमनस्य को दूर हटा जोड़नें वाले साधु/गुरू दुर्लभ है। जुडे दिलो, शिष्यो, मित्रो, और भृत्यों को तोड़नें और तोडकर अपने मे मिला लेने वाले गुरू घर-घर, गली-गली मे बैठे है।

गुरू वह है जिसका सम्बध केवल धर्मनीति से होता है, राजनीति और राज नेताओं से नही। खेद है पहले राजा, महाराजा, चक्रवर्ती जैसे गुरूओ के आश्रित रहते थे लेकिन आज के तथा कथित गुरूओ ने गरूओ परिभाषा बदल दी है, और स्वय राज नेताओ की कृपा दृष्टि की ओर आखे गडाये रहते है। शिष्यो का अनुग्रह करना तो आचार्य रूप गुरू का लक्षण आगम सम्मत है लेकिन 'शिष्यो का विग्रह' करना कराना आगम मे कही दृष्टि गोचर नही होता।
गुरू का स्वरूप बतलाते हुए आचार्य कहते है-

शिष्यानुग्रह कर्ता यो दुरितेन्धन पावक ।
पंचेद्रिय महाभोग, विरतो विश्ववन्दित ।।

जो शिष्यों का अनुग्रह/उपकार करते हो, पाप रूपी ईन्धन के लिए अग्नि स्वरूप हो एव पाचो इन्द्रियो के भोगो से विरक्त हो वे ही विश्व वद्य गुरू है। शेष तो रविषेणाचार्य के अनुसार नरक के ईधन स्वरूप है।[1] इस प्रकार ये वे महत्वपूर्ण बिन्दु है जो गुरू की सम्यक् पहचान मे सहायक बनते है इसलिए जागरूकतापूर्वक गुरू का चयन करना ही श्रेयस्कर होता है।

---
1 पद्मपुराण

शिष्य की सीमाएँ - यह बात सर्वमान्य है कि जो झुकता है वही पाता है, जो अकडता है वह खोता है। किसी के हृदय को विनम्रता से ही जीता जा सकता है, लेकिन मानव की अह वृत्ति उसे झुकने नही देती। आज कई शिष्य शिष्यत्व की भूमिका पर पहुचे बिना ही सीधा गुरू बनने की चाह रखते है, परन्तु शिष्यत्व की क्षमता से गुरू की क्षमता बहुत ऊँची होती है। शिष्यत्व का विकास आदि बिन्दु है, तो गुरूत्व उसकी अंतिम बिन्दु है। पहली सीढी पर चढे बिना अंतिम सीढी पर चढने की कल्पना नदी मे प्रवेश किये बिना तैरना सीखने जैसी बात है। यहाँ उल्लेखनीय यह बात है कि साधना ही शिष्यत्व की मूलभित्ति है। जिसके लिए श्रद्धा की गिट्टी, विनय की मिट्टी और समर्पण के जल की महती आवश्यकता है। वहा तर्क वाद के शुष्क पाषाण खण्डो को स्थान नही है। जहा तर्कवाद आ जाता है वहा विशाल काय उतुग भवन भी खण्डहर हो जाते है। यदि शिष्य श्रद्धा, समर्पण, और विनम्रता से गुरु मे अपना स्थान बनाता है, उनकी कृपा का पात्र बनता है तो तर्क से नवनीत जैसे गुरू को भी खो देता है। तर्कवादी शिष्य का एक उदाहरण दृष्टव्य है जो उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

एक बार एक गुरु-शिष्य विहार करते हुए ग्राम के बाहर बनी वसतिका मे रात्रि विश्राम हेतु पहुचे। कडाके की ठण्ड पड रही थी। वर्षा थी कि रुकने का नाम ही नही ले रही थी। गुरु का सुकोमल देह ज्वर से ग्रसित हो गया। गुरू-शिष्य दोनो कक्ष मे शयन कर रहे थे। शिष्य खुर्राटे भर रहा था किन्तु गुरु की आखो से निद्रा नदारद थी। सिर पीडा से फटा जा रहा था लेकिन 'सम सम समता उस चेतन से झलक रही थी हर पल पल'। अर्ध रात्रि के सन्नाटे मे उन्हे अचानक किसी के अन्दर आने की आहट मिली। उन्होने शिष्य से कहा - वत्स! जरा बाहर देख, क्या बारिस थमी या नही। शिष्य बोला गुरूजी अभी - अभी किसी के अन्दर आने की आहट आई थी वह किसी और की नही, एक कुत्ते की थी। कुत्ता आपकी बगल मे बैठा है। उसकी पीठ पर हाथ फेरकर देख लीजिए, यदि पीठ गीली हो तो समझ लीजिए अभी बारिस हो रही है और यदि पीठ गीली न हो तो समझिए बारिस थम गई। इसमे बाहर जाकर देखने की क्या आवश्यकता? गुरू शिष्य का

तर्क सुनकर मौन हो गए। बडी मुश्किल से थोडा सा समय बीता होगा कि उनकी आखे दर्द से फटने लगी। गुरू ने शिष्य से कहा - बेटा मेरी आखो मे पीडा बढती जा रही है। जरा उठकर या तो दीपक बुझा दे या उसे बाहर रख दे। दीपक का प्रकाश मेरी आखो मे चुभन पैदा कर रहा है। शिष्य बोला गुरू जी आप अपना हाथ या चादर आखो पर डाल लीजिए या फिर करवट बदल लीजिए। अपने आप दीपक का प्रकाश आखो की ओर नही जायेगा, इसमे मेरे उठने की क्या जरूरत ? मै दीपक को बुझाना या बाहर रखना उचित नही समझता। गुरू ने दीर्घ निश्वास छोडा और सोने की व्यर्थ चेष्टा करने लगे।

पल - दो - पल ही न बीते होगे कि गुरू का सारा बदन ठण्ड से कापने लगा। बडी मुश्किल से हिम्मत बटोर कर गुरू बोले हे बेटे! मुझे शीतल वायु बाधा पहुचा रही है जरा दरवाजा बद कर दे। लेटे - लेटे शिष्य बोला - गुरू जी मै आपसे और द्वार से बहुत दूर लेटा हूँ। आप तो द्वार के पास ही लेटे है जरा पैरो से ही द्वार बद कर दीजिए मुझे क्यो उठना पडे। गुरू ने पैर से द्वार बद कर दिया। किन्तु द्वार दो मिनिट भी बद न रह सका। ठण्डी हवा के जोरदार झौके ने द्वार को खोल दिया। गुरू यद्यपि शिष्य के तर्क भरे उत्तरो के प्रति अनुत्तर एव अवाक् थे तथापि पीडा के सामने अवश भी थे। उन्होने पुन शिष्य से प्रार्थना भरे लहजे मे कहा - बेटा! उठ जा, मेरा सारा शरीर काप रहा है, द्वार खुल - खुल जा रहा है, जरा कुण्डी चढा दे। शिष्य तिलमिला उठा झल्ला कर बोला गुरू जी हद हो गई मैने तीन काम कर दिए। बारिस हो रही है या नही इसका तर्जुबा आपका बतला दिया। दीपक के प्रकाश से आखो को पीडा न पहुचे यह भी उपाय बतला दिया। बिना उठे द्वार को बद कर ठण्ड से बचने का रास्ता भी बतला दिया। जब मै तीन काम कर सकता हूँ तो क्या आप एक काम नही कर सकते।

गुरू जी चुप हो गए उत्तर सुनकर। चुप ही नही हुए सदा - सदा के लिए सो गए। सम्प्रति की देह पीडा हमेशा - हमेशा के लिए शात हो गई। जब सुबह शिष्य उठा तो उसने अपने गुरू की केवल ठन्डी देह पायी। क्रूर काल ने उससे उसका गुरू छीन लिया, अथवा यह कहे शुष्क तर्कवाद से

उसने स्वय अपना गुरू खो दिया। श्रद्धा के बिना तर्कमय जीवन केवल पलास का पूला है।

जीवन मे व्रत का स्थान दूसरा है परन्तु श्रद्धा का स्थान पहला है क्योंकि हृदय श्रद्धा से बदलता है कोरे व्रत से नही। खण्डित श्रद्धा अखण्ड व्यक्तित्व का विकास नही कर सकती। शिष्य होने की प्रथम शर्त है, जीवन श्रद्धा से भरा हो। कारण श्रद्धा अमृत है जो व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनो को न केवल जीवित रखती है अपितु दोनो को तरो-ताजा बनाए रखती है। जब तक शिष्य मे गुरू के प्रति श्रद्धा के भाव गहरे नही होते तब तक वह गुरू के गुरूतर व्यक्तित्व को नही समझ सकता। 'गुरू' जैसे शब्द के गभीर अर्थ को समझे बिना हर शिष्य गुरू बनने का दुराग्रह रखता है। 'गुरू जैसे महत्तर' बोझ को बर्दाश्त करने के लिए सम्यक् अर्थो मे शिष्यत्व की भूमिका अपनाना/निर्वाह करना आवश्यक है। इस कक्ष को उत्तीर्ण किए बिना गुरू के पद पर आसीन होना असभव है।

जो शिष्य, शिष्य की योग्यताओ, सीमाओ का निर्वहन नही करता, वह न तो सच्चे अर्थो मे शिष्य कहला पाता है न ही गुरू बन पाता है। उसकी 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' वाली स्थिति निर्मित होती है। वह अपने जीवन से उस तर्कवादी शिष्य के समान गुरू से भी अपना जीवन रीता कर देता है। शिष्य की अपनी सीमाएँ होती है जो शिष्य गुरू के कडे अनुशासन को सहन करता है, चोटे खाता है वही योग्य शिष्य बन पाता है। शिष्य चाहे कितना ज्ञानी क्यो न हो सीखेगा तो गुरू से ही। जो अच्छा शिष्य होगा वही अच्छा शासक अथवा श्रेष्ठ गुरू होगा। शिष्य को अपने हृदय-कमल मे गुरू को पुष्प की सुगधि की तरह हृदय मे बसाना चाहिए। वह फूल, फूल क्या जिसमे पराग और सुगन्ध न हो? वह शिष्य क्या जिसके हृदय मे गुरू का सान्निध्य न हो। शिष्य हो तो एकलव्य की तरह समर्पण शील व्यक्तित्व वाला। सुशिष्य वही कहलाता है जो गुरू का नाम रोशन करता है। गुरू के सामीप्य और दूरी मे कितना अन्तर होता है- उसकी क्या अनुभूतियाँ होती है इसे शिष्य ही अनुभव कर सकता है, गुरू इसे नही जान सकता।

गुरू, गुरू होता है-शिष्य मे चाहे जितनी योग्यताएँ हो, वह गुरू

की तुलना मे छोटा ही होता है। नाक, ललाट से सदा नीची रहती है। नट, नृत्य कला मे कितना भी पारगत हो, वह अपने कधो पर चढकर कभी भी नही नाच सकता। इसलिये गुरू, शिष्य के लिये सदा पूज्य एव अर्च्य रहता है। गुरू के सानिध्य मे जो उपलब्धि होती है, वह अन्यत्र कही नहीं हो सकती। यह ससार अधकार से भरा हुआ है। इसमे प्रकाश की कोई किरण मिल सकती है तो सिर्फ गुरू से ही मिल सकती है। गुरू बिन घोर अधकार है। गुरू के बिना मनुष्य वृक्ष से टूटकर जल मे गिरने वाले फल के समान है। सद्‌गुरू के अभाव मे शिष्य की शक्ति का सम्यक् नियोजन नही हो सकता। दर्पण मे हर कोई अपना चेहरा देख सकता है बशर्ते प्रकाश हो। इसी प्रकार मनुष्य कितने ही ग्रन्थ, शास्त्र पढ ले लेकिन अनुभूति, और विवेकोदय तभी होगा जब गुरू का दिव्य प्रकाश होगा। माँ तो जन्म देती है पर जीवन नही सभाल पाती। गुरू जन्म नही देते किन्तु जीवन की कला सिखा, जीवन बना देते है। गुरू जीवन मे कभी अहकार नही पालते वे उस पर चोट करते है। जीवन एक यात्रा है जिसमे अनेक पडाव हैं इन पडावो मे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध करने के लिए ही शिष्य गुरू की उपासना करता है। जो गुरू मे शका करता है वह सब कुछ खो देता है।

एक निष्पत्ति – गुरू भी उसी शिष्य का निर्माण करते है, जिसमे शिष्य बनने की पूर्ण अर्हता/योग्यता हो। सक्षम गुरू भी अयोग्य शिष्य का निर्माण कभी नही कर सकते है। न ही उन्हे शिक्षा देते है। विद्या के साथ मर जाना श्रेष्ठ है किन्तु मूर्ख उदण्ड शिष्य को शिक्षा देना व्यर्थ है। दोनो की अर्हता–ही एक सम्यक् निष्पत्ति ला सकती है। इसलिए शिष्य का भी योग्य एव सक्षम होना आवश्यक ही नही अनिवार्य है। ■■

जब तक मनुष्य गुरू द्वारा उपदिष्ट करूणा – गर्भित वचनों की शरण नही लेता, तब तक वैभवशाली होने पर भी शोभित नहीं होता। जैसे कोयल मधुरभाषिणी होती हुई भी बसन्त ऋतु में जितनी मधुर बोल सकती है, उतना अन्य महीनो में नही।

णमोकार मंत्र; 'जीवन की संजीवनी घुट्टी'

एकत्र पचगुरू मत्रपदाक्षराणि,
विश्वत्रय पुनरनन्त गुण परत्र।
यो धारयेत्किल तुलानुगत तथापि,
वदे महागुरूतरं परमेष्ठि मत्रम्।।

णमोकार मत्र जीवन-विकास का पहला क्रम है। गर्भावस्था मे भावनात्मक एव जन्मोपरान्त घुट्टी के साथ दी जाने वाली सजीवनी परमौषधि है। पन्डित प्रवर आशाधर जी श्रावकधर्म-प्रतिपादित करते हुए कहते है कि सर्व प्रथम कोमलमति बालको के लिए णमोकार मत्र देना पढाना चाहिए, तत्पश्चात अन्य विषयो का ज्ञान कराना चाहिए। कारण इसमे चौदह पूर्व परमागम का ज्ञान भरा है, 'आङ्ग पौर्वमयार्थ सग्रह्मधीत्याधीत शास्त्रान्तर '। जिस प्रकार मृदु मृत्तिका पर उत्कीर्ण आकार के सस्कार उस मृत्पात्र पर यावज्जीवन स्थायी रहते है तद्वत् मृदुमति बालको पर किये गये मत्र-सस्कार उसके जीवन मे अमिट हो जाते है। श्रद्धा, निष्ठा, आस्था एव विश्वास से भरा मत्र घटवान् ससार मे कही भी विचरण करे उसे किसी का भय आक्रान्त नही कर सकता। कारण णमोकार मत्र अमोघ, अपराजित शक्तिमत्र है। जिनशासन का सार और चौदह पूर्व रूप परमागम का सम्यक् उद्धार है।

मत्र महिमा

वर्ण और पदो मे मत्र शक्ति एव मत्रातिशय प्रकट होना प्रयोक्ता, उसके भाव, क्षेत्र एव काल पर निर्भर है। णमोकार मत्र कर्म नाशक तो है ही साथ ही आत्म शक्तिवर्धक यह अदभुत मत्र अपनी उपस्थिति से कषायो को विश्रान्ति देता है। सकट-मोचक यह महामत्र मगल भावना को वृद्धिगत करता है। जैनागम इसकी महिमा एव चमत्कारी प्रभाव से भरा पडा है। मरणासन्न कुत्ता जीवन्धर द्वारा णमोकार मत्र श्रवण कर सुदर्शन यक्ष हुआ। जलते-दहकते नाग-नागिन, पार्श्व कुमार द्वारा दिए मत्र प्रभाव से धरणेन्द्र-पद्मावती हुए। कराहता बैल पद्मरूचि सेठ (राम के जीव) द्वारा मत्र शक्ति के अचिन्त्य प्रभाव से वृषभध्वज नामक राजपुत्र हुआ। सर्प से

डसा श्रेष्ठी धनञ्जय पुत्र तत्काल निर्विष हो पुन जीवन को प्राप्त हुआ। जिसके पीछे मृत्यु दौड रही थी ऐसा अजन चोर इस महामत्र की आराधना से अनेक विद्याओ का अधिपति हुआ। मृत्यु के जबाडो मे जकड 'अज' चारूदत्त द्वारा प्रदत्त मत्र को शान्ति पूर्वक सुनता - सुनता देवगति को प्राप्त हुआ। ग्रन्थो मे अनेक उदाहरण भरे पडे है। इस मन्त्र शक्ति के सम्यक् प्रभावो के। जहा इस अपराजित मन्त्र की साधना, आराधना, उपासना मन्त्र प्रयोक्ता को स्वर्ग जैसी ऊचाई पर पहुचा देती है, वही इस मन्त्र की विराधना, जीव को रसातल मे भी उतार देती है। सुभौम चक्रवर्ती का नाम आज भी इस सम्बन्ध मे कुख्यात है।

णमोकार मंत्र से इसी देह मे पुनर्जन्म

कितना अचिन्त्य प्रभावी है यह महामत्र, जो हमारी बहुआयामं । सत्ता को निरवारता, उद्घाटित करता हैं। इसकी शक्ति से परिचित, इसकी म हिमा को अपने भीतर जीता हुआ जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत है - जामनगर (सौरा ट्र) के श्री गुलाबचद खीमचद शाह के जीवन का कैन्सर की मारक, दाहक व्य ॥ का मर्मबेधी ब्यौरा। उन्होने बताया कर्मयोग से मेरे शरीर मे कैन्सर के कीटाणुओ ने आक्रमण कर दिया। ज्ञात होते ही इलाज कराता रहा किन्तु मर्ज चरम सीमा तक बढ गया। तब मेरी जीवन आशा ने एव विशेषज्ञो के दिमागो, दवाओ और प्रयत्न के साथ सद्दुआओ ने भी घुटने टेक दिये और निराशाओ के घटाटोप मे मै, मेरा सारा परिवार, नाते - रिश्तेदार डूब गए। चारो और मृत्यु .... मृत्यु....केवल मृत्यु का नीरव सन्नाटा छा गया। जिसे सभी अपनी नग्न आरवो से देरव रहे थे। जीवन से निराश मै अपनी आरवो से मृत्यु का भीषण ताडव एव असहनीय वेदना को न देरव सका। मैंने अपनी आरवे मूद ली। इस परिस्थिति मे मगल मत्र णमोकार ही अन्तिम शरण था। निराशा के बादलो मे - 'अर्थान्य श्रेष्ठाश्च सदा लभन्ते जिनोत्तमाना परिकीर्तनेन' - की एक बिजली कौध गई। आशाओ का सूर्य उदित हो उठा। मैंने पूर्ण निष्ठा एव श्रद्धा के साथ सब कुछ छोड अपने आपको णमोकार मत्र मे लगा दिया। मुझे मत्र की शरण ने न केवल समाधान दिया वरन अपूर्व शान्ति भी दी। मैंने अनुभव किया मै अब उत्तरोत्तर रोग मुक्त हो रहा हूँ। महाराज श्री मैं आज

अल्पावधि मे पूर्ण रोग मुक्त आपके समक्ष खड़ा हूँ।

महानुभाव! उनकी आखे 'महाराज श्री, णमोकार मत्र के अचिन्त्य प्रभाव से मुझे इसी देह मे पुनर्जन्म प्राप्त हो गया' कहते हुए भर आयी। उन्होने बताया महाराज श्री मेरे कण्ठ मे पानी की एक बूद भी प्रवेश नही कर पा रही थी किन्तु कुछ ही घन्टो बाद मैंने भर पेट पानी पीकर अपनी तृषा शात कर ली और मेरे जीवन के वे सारे द्वार खुलने लगे जो कुछ घटो पूर्व पूरी तरह बद हो चुके थे। मैंने कहा- भैया, सत्य है मत्र शक्ति का प्रभाव ऐसा ही होता है। जिस मत्र मे प्रतिसमय असख्यात गुणी कर्म निर्जरा करने का अद्भुत पौरूष है, जिसमे जन्म, जरा मृत्यु जैसी भयानक व्याधियो को नष्ट करने वाला जीवन है क्या वह एक आकस्मिक आई हुई केन्सर जैसी व्याधि को दूर नही कर सकता? जब मत्र शक्ति को आस्था के साथ क्षमा, सत्य, अहिसा, साधना एव समर्पण का सपुट मिल जाता है, तब उसमे एक अमोघ अद्वितीय तेजस्वी ऊर्जा प्रकट होती है जो पलक मारते ही सारे सकट मेट देती है।

चमत्कार आज भी अनुगुंजित है

एक मुस्लिम बधु अब्दुल रज्जाक के पास एक जैन बधु पिशाच बाधा दूर कराने के लिए पहुचे तो उसने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा- जिस धर्म के अनुयायियो के पास 'णमोकार मत्र' जैसा अद्भुत शक्ति मत्र है वे मेरे पास क्यो आते हैं? मेरे पास कुछ भी नही है। पर मै दावे के साथ कहता हूँ कि इस मत्र पर श्रद्धा रखने वाला हर मुसीबत से बच सकता है, जिसे मैं प्रतिदिन अनुभव करता हूँ। मै इसी मत्र को श्रद्धापूर्वक पढकर भूत पिशाच जैसी बाधाओ को दूर करता हूँ। बडे-बडे जहरीले जगली सर्प वृश्चिको का विष उतार देता हूँ। और आज भी उस ग्राम जखोरा जिला झासी उत्तर प्रदेश मे उसके श्रद्धा और चमत्कार की बात अनुगूंजित है।

सचमुच ही मन की निष्कपटता और सरलता, श्रद्धा और समर्पण, न केवल शरीरगत व्याधि सकट को नष्ट करती है अपितु आत्मा को भी शुद्ध और परिष्कृत करती है। जिसकी आत्मा मत्र स्नान से परिशुद्ध हो जाती है उसी सुसस्कृत, स्नात आत्मा मे ही धर्म और रिद्धियाँ- सिद्धियाँ ठहर पाती

है। मत्रो की चमत्कारिक ध्वनि तरगो से अनोखी विद्युतशक्ति उत्पन्न होती है।

मत्र वही है जिसके पाठ मात्र से कार्य सिद्ध हो। अक्षर या अक्षरो का समूह मत्र कहलाता है। अक्षर यानि वर्ण समूह से मत्र बनता है। प्रत्येक अक्षर मत्र - बीज युक्त होता है। इस दृष्टि से अक्षर रहित मत्र का कोई अस्तित्व नही हो सकता। "न हि मत्रोऽक्षर न्यूनो निहन्ति विषवेदना" इस सूत्र मे स्वामी समत भद्र आचार्य कहते है कि जिस मत्र मे एक अक्षर भी कम क्यो न हो, वह मत्र - मत्र नही, क्योंकि उससे कार्य सिद्धि नही हो सकती। अक्षर अथवा अक्षर समूह (शब्दो) मे अपरिमेय शक्ति निहित है। जिस प्रकार शब्दो के विभिन्न ध्वन्यात्मक प्रभाव है, उसी तरह वर्ण और वर्ण समूहात्मक शब्दो का महत्, विशेष प्रभाव विभिन्न अनुभवो के द्वारा विभिन्न द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावो के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव मे आते प्रतीत होते हैं। अत शब्द शक्ति अचिन्त्य है।

जो मन का त्राण करे वह है "महामत्र"। जगतव्यापी अशुभ विचारो के प्रभाव से जो मन को नियन्त्रित, सुरक्षित रखता है, वह है महामत्र। जिसके जाप से, ध्यान से भोगो से विरक्ति हो वह है महामत्र, जिसके स्मरण से किसी का अनिष्ट न होकर इष्ट और कल्याण हो वह है - महामत्र "णमोकार"।

मत्र कैसे पढे

इस महामत्र मे पॉच पद है, जिनमे पैतीस अक्षर है। इन अक्षरो मे चौतीस स्वर और व्यजन है। यह महामत्र णमोकार, नमस्कार, नवकार इत्यादि नामो से भी जाना जाता है। यह महामत्र अपराजित, अपरिमित, शक्तिशाली एव स्वर्गापवर्ग सुख प्रदाता है। इसके एक बार उच्चारण मे तीन उच्छवास लगते है। प्रथम उच्छवास लेते समय "णमो - अरिहताण" उच्छवास छोडते समय "णमो सिद्धाण द्वितीय उच्छवास लेते समय "णमो - आइरियाण" छोडते समय "णमो उवज्झायाण" एव तृतीय उच्छवास लेते समय "णमो लोए" और उच्छवास छोडते समय "सव्वसाहूण" बोलना चाहिए।

जैसा जप वैसा फल

णमोकार मत्र की आराधना चार प्रकार से की जाती है। बैखरी, उपाशु,

मानस और सूक्ष्म। बैखरी मे मन्त्र बिखर जाता है। इसका जप जोर - जोर से बोलकर पाठ रूप मे किया जाता है। मन्त्र केवल 25प्रतिशत अन्दर रहता है, 75प्रतिशत मत्राक्षर बिखर जाते है। उपयोग स्थिरता भी स्थूल रूप से हो पाती है अस्तु इस जप का फल जप कर्ता को केवल 25प्रतिशत ही मिलता है। दूसरा जप उपाशु जप कहलाता है, इसमे आराधक के ओष्ठ, तालु हिलते है, ध्वनि भी मन्द - मन्द सुनाई पडती है। इस जप मे मत्राक्षर 50प्रतिशत बाहर निकल जाते है अस्तु फल भी 50प्रतिशत ही मिलता है। तृतीय जप का भेद है मानस। इस मन्त्रोपासन मे साधक मन्त्र को श्वास - प्रश्वास पर जपता है, चित्त परिणति स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है परन्तु पूर्ण सूक्ष्मता को प्राप्त नही हो पाती। इस जपाराधना से उपासक को 75प्रतिशत फल मिलता है। अन्तिम जप है सूक्ष्म जिसमे साधक सब ओर से अपनी चित्त वृत्ति को एकाग्र कर पच परमेष्ठी वाचक मत्रो का जैसे - जैसे मन मे ध्यान करता है वैसे - वैसे वह उनकी गुणात्मकता के साथ साक्षात्कार करने लगता है, अस्तु वह 100 प्रतिशत फल सहज योग साधना, मन्त्र साधना द्वारा प्राप्त कर लेता है। ये चारो एक - दूसरे से क्रमश अधिक महत्वपूर्ण रखते है। इन चारो मे क्रमश अधिक - अधिक निर्जरा होती है।

इस मन्त्र का पूर्ण एकाग्रता से 108 बार जप करने से एक प्रोषध का फल सहज साधक को मिल जाता है। प्रायश्चित ग्रन्थो मे भी आचार्यो ने स्वय आचार्यो को एव अपने शिष्य समुदाय को इसी पच नमस्कार मत्र के द्वारा प्रार्यश्चित सबधी उपवासो का प्रायश्चित देना, उल्लिखित किया है। सचमुच ही आत्म शुद्धि का इस अपराजित मन्त्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नही है।

किसी ने ठीक ही कहा है।

नमस्कार सम मन्त्र, वीतराग समप्रभ।
सम्मेदाचल सम यात्रा न भूतो न भविष्यति।।

"निर्वीयाक्षर नास्ति मूलमनौषधम्" - ऐसी कोई वनस्पति नही है, और ऐसा कोई भी अक्षर नही है जिसमे शक्ति नही है। शब्द शक्ति अपरिमित है। शब्द शक्ति के साथ साधक की आध्यात्मिक शक्ति एव शब्द का वाच्य पदार्थ

से मिलकर विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते है। औषध सेवन के समान मत्र जाप मे भी सावधानी अनिवार्य होती है। औषधि के निर्माण, विधि, अनुपात एव सेवन त्रुटि से हानि होनी है, उसी तरह मत्र के सबध मे भी हानि जानना चाहिए। अनेक मन्त्र देवताधिष्ठित होते है, जो साधक, प्रयोक्ता को पागल तक कर देते है। परन्तु णमोकार मत्र के लौकिक देवता सेवक है। अत इनके आराधक मानव देवो से भी पूजित होते है। तीर्थकरो के पचकल्याणक इसी का उदाहरण है।

अनादि द्वादशाग जिनवाणी का अग होने से यह णमोकार मत्र अनादि मूल - मत्र कहा गया है। षटखडागम के प्रथम भाग जीवट्ठाण मे आचार्य पुष्पदत ने ग्रथ की रचना के प्रारभ मे इसी मत्र द्वारा मगलाचरण किया है। आचार्य वीरसेन स्वामी जो कि धवल टीका के रचयिता है, उन्होने इसे परपरा से आने के कारण परपरा प्राप्त निबद्ध मगल सिद्ध किया है, क्योंकि मोक्षमार्ग, उसके उपदेष्टा और उसके साधक भी अनादिकाल से चले आ रहे हैं। आचार्य शिव कोटि महाराज की 'भगवती आराधना' की टीका के अनुसार यह महामत्र द्वादशाग के रचयिता गणधर कृत है। जबकि तीर्थंकर और गणधर भी अनादिकाल से होने चले आ रहे है, एव विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर जो कि वर्तमान मे शाश्वत है, उन्होने भी इसी की आराधना की है जो है, नवकार, नमस्कार, णमोकार मत्र।

णमोकार एक अहिसक मत्र।

आकृष्टि सुर सपदा विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता।
उच्चाट विपदा चतुर्गति भुवा विद्वेषमात्मैनसाम्।।

यह देवो की विभूति, भोग - सपत्ति को अपनी ओर आकृष्ट करता है। मुक्ति लक्ष्मी को अपने वश मे करता है। देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यञ्च रूप चक्र को नष्ट करता है। चमत्कार - प्रिय जनता मार्ग - भ्रष्ट न हो और जैन मत्र पर से उसका विश्वास न हटे तथा अपना हित कर सके इस कारण जैनाचार्य ने विद्यानुवाद पूर्व मे मन्त्रो के उल्लेख भी किये है। सासारिक कामनाओ के वशीभूत साधारण जन - समूह को उन्होने मत्र - तत्र विधान आदि के द्वारा दुनिया के झगडे - झझटो, जाल - फरेबो से बचाने के लिए

आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तभन, सम्मोहन, शान्ति और पुष्टि इन आठ कार्यो मे दिशा, समय, आसन, मुद्रा, पल्लव, वस्त्र, योग, माला, हस्तागुली, मडल और स्वर की विधि-विधान बनाकर आकर्षित किया है।

जिनागम का समुद्धार णमोकार

केवल णमोकार मत्र से ही चौरासी लाख मत्र बनते है, जिनसे सर्व रक्षा, शान्ति, शत्रुभय, द्रव्य हरण, द्रव्यप्राप्ति, रोगक्षय, कार्यसिद्धि विष निवारण आदि कार्यों की सिद्धि होती है। **जैनमत के अनुसार यह एक अहिसक मत्र है जिससे प्राणी-मात्र की रक्षा होती है।** इसकी उपासना से लौकिक शत्रु का अनिष्ट न होकर पाप-शत्रु का सहार, सासारिक विपत्ति का निवारण एव मुक्ति लक्ष्मी का वशीकरण होता है। जैन-वैदिक एव बौद्ध विचारधाराओ की त्रिवेणी भारतीय सस्कृति के स्वरूप को स्थिर रखती है। इस सस्कृति का आस्था पक्ष वस्तुत मत्रो द्वारा परिपुष्ट होता आया है। जो स्थान जैनो मे ''णमोकार मत्र'' का है, उसी प्रकार वैदिक विश्व मे 'गायत्री' का तथा बौद्ध विश्व मे 'तिरसन' नामक मत्र का है। स्थान भले ही श्रद्धावश समान हो किन्तु 'णमोकार मत्र' तो अपने आप मे अलौकिक मत्र है और है अलौकिक सुख का भण्डार।

णमोकार मत्र जैन आगम का प्रथम अध्याय है। जिन अनुयायियो को यह मत्र बाल्यकाल मे ही सिखा दिया जाता है। उन पर उसके सस्कार अमिट हो जाते है। वर्तमान की युवा पीढी मे से अधिकाश को भले ही कोई भजन, स्तुति, पूजा, पाठ या स्तोत्र याद न हो किन्तु 'णमोकार मत्र' उन्हे अवश्य याद होगा। इस मत्र की दीक्षा तो बच्चो को घुट्टी के साथ ही दी जाती है, इस मत्र का याद होना। पढना अथवा बोलना ही किसी के जैन होने का प्रमाण माना जा सकता है। बौद्ध पाठशाला मे पढ रहे अकलक-निकलक के जैन होने की पहिचान निद्राकाल मे आकस्मिक विघ्न उपस्थित होने से इस मत्र उच्चारण से ही की गई थी। इसका स्मरण, चितन, जाप और आलाप आज भी लाखो-लाख नर-नारियो, आबाल-वृद्धो द्वारा नित्य किया जाता है। प्रत्येक धार्मिक, मागलिक अनुष्ठान, जीवन-सचालन एव कार्य प्रारभ इसी मत्र से किया जाता है।

सामाजिक और वैयक्तिक जीवन आतरिक मूल्य प्रवृत्तियो का

समन्वय ही वस्तुत संस्कृति कहलाता है औरसस्कृति, मत्र को जानने-पहिचानने का द्वार खोलती है। मत्र मानव हृदय का मथन किया हुआ नवनीत है। णमोकार मत्र का आदर्श स्वय ही अपने पुरूषार्थ द्वारा साधक अवस्था धारक को सिद्ध अवस्था प्राप्ति का सकेत है।

इस मत्र का शाब्दिक स्वरूप है-

णमो अरिहंताण णमो सिद्धाण णमो आयरियाण

णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्व साहूण।।

यह मत्र किसी व्यक्ति विशेष की आराधना की बात नही करता। यह तो वस्तुत गुण-चितवन करने का उद्घोष करता है। इसका तन अरिहत-सिद्ध-आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओ की गुणात्मक गरिमा का समुच्चय है। इसलिए इसे 'पच-परमेष्ठी' मत्र भी कहा गया है। इस मत्र के पारायण से मन्त्र साधक मे स्वावलबन की भावना उपजती है, जागृन होती है। अतत इसमे प्रभु बनने की शक्ति भी विद्यमान है।

लोक विश्वास है कि इस मत्र के नित्य पारायण से व्यक्ति के सारे पाप स्वत शात हो जाते है। उसके जीवन मे अपूर्व सुख शान्ति का सचार हो उठता है। इस लोक-विश्वास के बलबूने पर णमोकार मत्र न केवल जैनो मे अपितु जैनेतर समाज मे भी समादृत होने लगा है यह मत्र जिनागम का समुद्धार है। यह पाप नाशक णमोकार महामत्र जैन दर्शन की आत्मा है। पच परमेष्ठी का समवेत रूप है। इसकी आराधना, उपासना, साधना साधक को पवित्र निर्मल एव परिशुद्ध बनाती है।

जैसा कि मगलाचरण मे कहा है-तराजू के एक पलडे पर पच गुरू वाचक णमोकार मन्त्र के पैतीस अक्षरो को रखिए उसी तुला के दूसरे पलडे पर तीनो लोको को रखिए। पच परमेष्ठी मत्र का पलडा ही महान /भारी होगा। मै शिर से इस मन्त्र को नमस्कार करता है। जय णमोकार .....। ■■

श्वेतवर्णी निर्मलता के प्रतीक अरिहन्त का ज्ञान केन्द्र मस्तिष्क पर, अरूण वर्णी सर्व निर्जरा के द्योतक सिद्ध प्रभु का दर्शन केन्द्र-दोनो भृकुटियो के मध्य, सघ वात्सल्य द्योतक पीतवर्णी आचार्य का विशुद्ध केन्द्र कण्ठमणि विश्वास के प्रतीक नीलाभ उपाध्याय परमेष्ठी का आनन्द केन्द्र-हत्कमल एव श्यामवर्णी साधना की सघनता मे सल्लीन एकता की मूर्ति साधु का शक्ति केन्द्र मेरूदण्ड पर ध्यान कीजिए।

बादशाहे जैन का यह मंदिर या दरबार है

- जिनेन्द्र भगवान का दर्शन खाली हाथो न करें।
- जिनेन्द्र भगवान का दर्शन सामने से न करे, प्रत्युत यदि प्रतिमा पूर्वाभिमुख है तो प्रतिमा दाहिने हाथ की ओर खडे होकर दर्शन करे और यदि प्रतिमा उत्तराभिमुख है तो प्रतिमा के बॉये हाथ की ओर खडे होकर दर्शन कीजिए।
- जिनालय श्रद्धापूर्वक जाएँ किन्तु पीठ दिखाकर न लौटें।

प्रात प्राची मे सूर्य उदित होता है, बरसात मे मेह बरसता है, गर्मियो मे गर्मी होती है, यह हुआ प्रकृति का नियम। उसी प्रकार मानव होने के भी कुछ नियम होते है। आकृति का मानव होना पर्याप्त नही है। प्रकृति का मानव बनना ही उसकी सफलता है, जिसमे प्रमुख नियम है अपने इष्ट का दर्शन।

जैन सस्कृति मे जैन होने की प्रथम पहचान है - जिनेन्द्र दर्शन। प्रात काल उठकर मगलो के देने मे समर्थ, पाप - प्रणाशक, पुण्य के हेतु तथा सुर - असुरो के द्वारा सेवित चरण कमलो से युक्त श्री जिनेद्र प्रतिमा का दर्शन करना चाहिए जो है मानव मात्र का कर्त्तव्य। किन्तु आधुनिक सभ्यता मे पल रहे बच्चे 'जिन दर्शन' सस्कार विहीन होते जा रहे है। वे भौतिकता के रस मे सराबोर जिनबिब को पाषाण खण्ड समझ उसके महत्व से नावाकिफ है और फिल्मी सितारो को महत्व देते है। उन्हे सोने से पूर्व एव जागते ही देखना नही भूलते। लगता है उनको देखना जैसे मनुष्य का अभिन्न अग बन गया हो। मनुष्य की इस स्थिति पर किसी ने ठीक ही कहा है -

प्रभु दर्शन को आलसी, मस्ती को तैयार।
ऐसे पापी नरन को बार - बार धिक्कार।।

दिल्ली शहर की बात है। एक मा अपने बेटे को प्रतिदिन कहती

है - बेटे मन्दिर जाओ। जिनेद्र भगवान के श्रीमुख के अवलोकन, दर्शन से हृदय के बद कपाट खुलते हैं। मन को शांति मिलती है, विचारो को बल मिलता है एव जीवन के अंधेरे आकाश मे भविष्य की उज्जवल आशा के एक - एक तारे जल उठते है। इस प्रकार मा के द्वारा बार - बार समझाइश देने पर भी बेटे पर कोई असर नही हुआ।

एक बार गोम्मटगिरि इन्दौर मे वह परिवार सहित मेरे दर्शनार्थ आई। अपनी समस्या को बच्चे की शिकायतनुमा मे मुझसे कहने लगी - मुनिश्री यह मेरा बेटा है, मेरी बात नही मानता, मै इसे बार - बार मन्दिर जाने के लिए प्रेरित करती हू, परन्तु इस पर मेरा कोई प्रभाव नही पडता। आप इसे मंदिर जाने के लिए कहियेगा। मैं चुपचाप अपना स्वाध्याय करता रहा। महिला ने अपनी बात पुन दोहराई, पर मेरी ओर से कोई उत्तर न पा उत्तर की प्रतीक्षा मे अपलक निहारने लगी। जैसे ही मेरा स्वाध्याय पूर्ण हुआ, बालक ने जिज्ञासा भरे नेत्र मेरे चेहरे पर टिका दिए और पूछने लगा - मुनिश्री! आप मुझे बतलाइएगा आखिर मन्दिर क्यो जाना चाहिए? मन्दिर जाने से क्या लाभ है? मैने उससे प्रतिप्रश्न किया - आप क्या पढते है? उसने कहा - बी.एस. सी.। मैने उससे कहा - यदि मै आपको तीन सुईयॉ दू चुबकीय बनाने के लिए तो आप क्या करोगे? उसने तुरत उत्तर दिया - लेबोरेट्री मे जाऊगा और लेब इन्चार्ज से चुबक लेकर सुईयो को चुबक का बार - बार स्पर्श कराऊगा, जिससे सुईयॉ चुबकीय हो जाएगी। मैने कहा बस! आपका उत्तर आपके ही पास है, अधिक दूर मत जाइए। जैसे चुबक के स्पर्श से लौह सुइयॉ चुबकीय हो जाती है वैसे ही जिनबिब चुम्बक है और हम है सुई। मेरा इतना ही कहना हुआ और बालक को समझते देर नही लगी। वह बीच मे ही बोल पडा - समझ गया, मुनिश्री। जैसे लौह सुईया चुबक का स्पर्श पा चुबकीय अर्थात चुबक जैसी बन जाती हैं वैसे ही जिनेन्द्र भगवान के दर्शन - स्पर्शन से हम भी चुबकीय यानि उन जैसे पावन हो जाएगे। मुझे आज रहस्य समझ मे आ गया कि मंदिर क्यो जाना चाहिए और भगवान के दर्शन से क्या लाभ है? और उसने उसी वक्त जिन दर्शन का दृढ सकल्प कर लिया।

अब प्रश्न यह रहा कि मंदिर कैसे जाना चाहिए। किसी ने कहा है-

'बा अदब आना यहा, हर शख्स को दरकार है।
बादशाहे जैन का यह, मंदिर वा दरबार है।।'
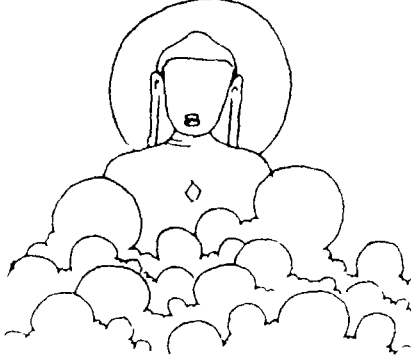
मन्दिर देवाधिदेव अर्हन्त का दरबार है, समवशरण का प्रतीक है। इसमे सभी दर्शनार्थियो को अत्यत विनम्रता पूर्वक आना चाहिए। आचार्य वीरसेन स्वामी जय धवला मे लिखते है- 'जिणबिब दसणेण णिधत्ति णिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादि कम्म कलावस्य खय दसणादो' जिनबिब का दर्शन करने से उन कर्मों भी क्षय देखा जाता है, जिन्हे कहते है निधत्ति और निकाचित कर्म। जो जीवात्मा को बिना फल दिए निर्जरित नही होते, उनका फल निश्चित रूप से देहधारी, कर्मधारी आत्माओ को भोगना पडता है। अत हे देव! यदि मुझे इस जगत् मे प्रतिदिन शुभ फल प्रदायक, सदा प्रसन्न रहने वाला आपका दर्शन प्राप्त होता है, तो कल्पवृक्ष, कामधेनु मत्र, विद्या, गृह, समुद्र, देव एव चिंतामणि रत्न से क्या प्रयोजन? क्योकि आपका पवित्र दर्शन कल्याण को विस्तृत करता है, विवेक का वितान फैलाता है, पाप का उन्मूलन कर प्रकट करता है विशाल वैभव को।

ज्ञातव्य है जिनेन्द्र देव का मुखावलोकन करने से मनुष्य को वैसा ही सतोष होता है, जैसा कि मयूर को मेघ-गर्जन से, बिछुडे हुए को बधु जन के मिलाप से, तृषा पीडित प्राणियो को मधुर जल पान से, बधन-बद्ध प्राणी को बधन मुक्त होने से, रोगी को आरोग्य लाभ से और

दृष्टिहीन को नेत्र दृष्टि प्राप्त होने से सुख, सतोष मिलता है।

यह सच्चाई है जिस श्रद्धालु भव्य ने क्षणभर भी आपका नयनाभिरामी दर्शन किया उस ने सदाचार धारक ज्ञानी तपस्वी को बार-बार दान दिया। दीर्घ कालीन तपस्या धारण की अनेक प्रकार की अनेक अर्चनाएँ की एव विश्व वन्दित निर्मल गुण समूह रूप शील धर्म को प्राप्त किया अर्थात् जितना पुण्य इन सब क्रिया-कलापो द्वारा प्राप्त होता है, उतना पुण्यार्जन भव्यात्मा वीतराग मुद्रा के दर्शन मात्र से प्राप्त कर लेता है। आचार्य कहते है जिनेन्द्र की स्तुति से वचन, स्मरण से मन और नमस्कार करने से यह शरीर पवित्र हो जाता है। प्रभु का दर्शन सम्पूर्ण जीवन को धन्यतम बना देता है।

त्वन्नुते पूत वागस्मि त्वतस्मृते पूत मानस
त्वन्नते पूत देहोऽस्मि धन्योऽस्म्यद्य त्वदीक्षणात्।

समुद्र की लहरे, मेघ की जलधाराएँ-नभाङ्गण के तारे जैसे गिने नही जा सकते वैसे ही वीतराग प्रभु के मुखावलोकन से सचित पुण्य ससारी की बुद्धि द्वारा गिना नही जा सकता। वस्तुत जिनेन्द्र दर्शन आत्म लाभ की पवित्र भावना से सागारो का पवित्र और आद्य कर्त्तव्य है। धर्माचरण को तरो-ताजा बनाए रखने के लिए एव आत्म-सस्कृति की सम्पन्नता के लिए 'देव दर्शन' आत्म दर्शन का दैनिक सविधान है। चैत्य और चैत्यालय हमारे आत्म परिणाम की विशुद्धि के पवित्र स्थान है। जिन बिम्ब दर्शन मोह का क्षयकर वीतरागता का मार्ग प्रशस्त करते है।

स्कूल, पाठशालाओ मे शाब्दिक ज्ञान मिलता है किन्तु जैन बादशाह के दरबार मे जीवन का ज्ञान मिलता है। यह दरबार हमारी आध्यात्मिक सजगता के हाजिरीपत्रक है। यहाँ आकर नित्य प्रति सुबह-शाम श्रावक अपनी आध्यात्मिक डायरी के इन्द्राज करता है।

जिन चैत्यालयो के उतुङ्ग शिखर, आभावान् स्वर्ण मय कलश, ऊर्ध्व लोक/सिद्धालय की ओर उद्धान का निर्देश देते है। उन पर फहराती हुई, माला, मृगेन्द्र, ध्वज, कमल, मयूर, हस, वैनेनेय, गज, अश्व, रथ इन दस चिन्हो वाली पालि ध्वजाएँ ऐसी सुशोभित होती है मानो अपने ऊँचे-ऊँचे हाथ फैलाकर भव्य जीव को अपनी ओर बुला रही हो यह कहती हुई आओ! भव्यो यहा

आओ! त्रैलोक्येश्वर का अपूर्व दर्शन कर शिव-पथ का पाथेय तैयार करो।

अपनी कान्ति से कर्पूर, हार, हिमालय और चन्द्र की कान्ति को तिरस्कृत करते हुये ये जिनालय, कृत्रिम देवालय है अथवा अकृत्रिम देवालय, या कि विविध रत्नावलियो की विचित्र किरणावलियो से दैदीप्यमान यह जिनगृह क्या सुमेरू पर्वत है अथवा गन्धर्व, किन्नरो की क्रीडा स्थली। इस प्रकार सुर और नरो मे अनेक भ्रान्ति की सभावनाएँ उत्पन्न करना है।

ऐसे पवित्र, लोक प्रशसनीय जिन मन्दिर का जो श्रीमान भव्य जीव निर्माण कराता है। महेन्द्र पदवी भी दासी के समान उसका आचरण करती है वह चिर काल तर सुधारस का पान करता हुआ दिव्य-सुखो का उपभोग करता है। आचार्यो का कथन है जिसने जिनालय स्थापित किया वह सघपति है। उसने मंदिर ही नही जिन शासन ही स्थापित किया है। वस्तुत सद् गृहस्थो के लिए जिन मन्दिर से बढकर कोई पुण्य नही है, क्योंकि यह स्वर्ग का प्रथम सोपान है और क्रमश मुक्ति स्त्री का दायक।

जिनगेह सम पुण्य न स्यात् सद् गृहिणा क्वचित्।
स्वर्ग सोपानमादौ च मुक्ति स्त्री दायक क्रमात्।।

आगम शास्त्रो मे रेखांकित किया गया है कि जिनेन्द्र दर्शन का विचार करने मात्र से मनुष्य को एक उपवास का उद्यम करने से दो उपवास का, मंदिर की ओर गमन प्रारभ करने से तीन उपवास का, गमन करने पर चार उपवास का, बीच मार्ग मे एक पक्ष के उपवास का प्रतिमा जी के दूर से दिखने पर एक माह के उपवास का, मंदिर के बाह्य मैदान मे पहुचने पर छह माह के उपवास का, मंदिर के द्वार मे प्रवेश करने पर एक वर्ष के उपवास का, जिनबिब के मुख का दर्शन करने से हजार वर्ष के उपवास का और जिनेन्द्र प्रभु की भक्तिपूर्वक स्तुति करने से अपने आप अनत उपवासो का फल प्राप्त होता है।

सचमुच ही जिनेन्द्र भक्ति से बढकर दूसरा कोई उत्तम पुण्य कार्य नही है। अस्तु इसमे सदेह के बिच्छुओ को अपने जहरीले डक मारने के लिए अवसर न देते हुए हे भोले, भव्य प्राणियो! अपने कर्त्तव्यपथ से दूर नही जाना, यही है आपकी अपनी जैन होने की पहिचान। ■■

मनुष्य जन्म रूपी वृक्ष के षट् फल

जिनेद्र पूजा गुरुपर्युपास्ति,
सत्वानुकम्पा शुभपात्रदानम्।
गुणानुराग श्रुतिरागमस्य
नृजन्मवृक्षस्य फलान्यामूनि।

जिनेन्द्र पूजा, गुरू उपासना, जीव दया, सुपात्रदान गुणो के प्रति अनुराग और शास्त्र श्रवण ये मनुष्य जन्म रूपी वृक्ष के षट्फल है। इन्हे पाने के लिए मनुष्य को प्राणपण से अपनी श्रद्धा को एक बिन्दु पर केंद्रित कर उद्यमी होना चाहिए। श्रद्धा के आलोक मे जो सत्य उपलब्ध होता है, वह बुद्धि और तर्कवाद के आलोक मे नही हो सकता। अकर्मण्य मनुष्य के जीवन वृक्ष पर ये फल नजर नही आते उसकी जीवन बगिया सूनी ही रह जाती है।

प्रथमफल – जिनेन्द्रार्चना

आचार्य पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि जिनेद्र पूजा सम्यक्त्व-वर्धिनी क्रिया है। इसके आचरण से मानव मन पवित्र होता है। सुसुप्त शक्तियो का जागरण होता है और कदम प्रगति पथ की ओर आगे बढते है क्योंकि गुलाब पुष्प सुरभि और मकरद ही तो लुटाता है। जिनेद्र पूजा जीवन का टार्चबेअरर ,मशाल है। क्या आप ऐसा नही कर सकते कि इस वीतरागता के टार्चबेअरर को अपने हाथ मे ले जीवन पथ पर आगे-आगे बढते हुए उसकी रोशनी मे अपनी बुराइयो को देखते, जूझते अपना निर्मलीकरण करे? पूजा चित्तवृत्तियो के निर्मलीकरण का सर्वोत्तम लोक सुलभ उपाय है, जो हमे सारी बुराइयो से उबार सकता है। पूजा प्रक्रिया मे जो 'निस्सही' शब्द आया है, क्या कभी आपने उस पर गौर किया है? यदि किया तो ठीक, नही तो सुनिए! यह बडा महत्वपूर्ण शब्द है। मन्दिर के पवित्र वातावरण मे प्रवेश से पूर्व हम अपनी उन वस्तुओ, वृत्तियो को मन्दिर के द्वार पर ही पादत्राण की तरह छोड दे जो हमारे अदर सासारिकता का जहर घोलती हैं, मन को विकृत, अस्थिर, चचल और स्वार्थान्ध करती है। हमारे पास मन, वचन और

काया के तीन सोपान हैं। इनको मणि सोपान बना हम जीवन के उन्नत मुक्ति सौंध को भी पा सकते हैं, तो इन्ही को टूटे, खण्डित सोपान बना जीवन की जघन्यावस्था को भी पा सकते हैं, नीचे बहुन नीचे सात राजू की निम्नता मे बने नरक बिलो मे भी उत्तर सकते है।

जिनेद्र पूजा परायण कोई पुमान आचार्य समन्तभद्र को नही मिला इसलिए उलझे पुमानो को सुलझे हुए पूजा परायण एक मेढक का उदाहरण देना पडा। जब भगवान महावीर का समवशरण राजगृही के वैभार पर्वत पर आया था, उस समय का प्रसग सर्वविदित है। एक लघुकाय मेढक भक्तिभाव से भरा हुआ प्रभू पूजा के उद्देश्य से कमल पुष्प की एक पखुडी मुख मे ले फुदकता हुआ जा रहा था वैभारगिरि की ओर। मार्ग मे श्रेणिक गज के पग तले आकर सदा-सदा के लिए शात हो गया। वह शात तो हो गया, परन्तु भविष्य के लिए इतिहास के कुछ पन्ने रग गया। उसका मुकाम बदल गया। जिनेन्द्र पूजन के भाव थे। चित्त उनके ही चरण कमलो मे आसक्त था फलस्वरूप उसने देवत्व प्राप्त किया।

'नाथ तेरी पूजा को फल पायो, तुरत स्वर्ग पद पायो।'

एक अतर्मुहूर्त्त मे स्वर्ग पहुचकर राजा श्रेणिक से पूर्व ही विशाल वैभव के साथ वीर प्रभू की पूजनार्थ प्रस्तुत हुआ। श्रेणिक का ध्यान अचानक ही आकृष्ट हुआ मेढक के लाछन युक्त किरीट धारी देव के प्रति जो नति परायण पूजा के नारिकेल सा अपना सिर उनके चरण मूल मे रखे हुए था। महावीर से तत्काल प्रश्न किया प्रभो ! मेढक के चिन्ह से चिन्हित किरीट धारी यह कौन सा देव है? मेरा मन क्यो इसकी ओर आकर्षित हो रहा है? तब प्रभु ने आद्योपात विशद व्याख्यान श्रेणिक के सम्मुख रख दिया। यह है जिनेद्र पूजा की भावना का फल फिर सोचिए! कि पूजा को सागोपाग करने वाला कितने महान फल को प्राप्त होगा। अभिषेक को आदि लेकर पूजा के षडग है। अभिषेक, स्थापन, आह्वान, सन्निधिकरण, पूजन और विसर्जन।

द्रव्य की शुद्धि और श्रेष्ठता का अनुसरण भावो की शुद्धि और श्रेष्ठता करती है, अर्थात् जैसा द्रव्य होता है वैसे ही परिणाम हुआ करते है। महा

देवाधिदेव त्रैलोक्येश्वर के श्री चरणो मे श्रावक जन जो वस्तुए समर्पित करते है वे उत्तम ही नही सर्वोत्तम होनी चाहिए एव उनसे जुडा हुआ मानसिक चैतन्योपयोग भी निर्दोष, निर्लुब्ध, एव उज्जवल हो तभी यथेष्ट फल प्राप्ति सभव है। आराध्य और आराधना सामग्री दोनो मे ही स्थापना की जाती है। आराध्य देव द्रव्य और स्थापना निक्षेप से हमारे पूज्य है। पूजन सामग्री मे भी स्थापना निक्षेप से कल्पना की जाती है। सामान्य नदी, कूप या वापिका के जल मे यह क्षीरोदधि समुद्र का जल है। यह गगा महानदी का जल है। यह जल मुनि मन सम उज्जवल है। ऐसी कल्पना करते हैं। जल की तरह शेष द्रव्यो मे भी स्थापना, कल्पना करते है तब कल्पना या स्थापना मे कृपणता को अवकाश नही होना चाहिए। जब श्रावक जल, चन्दन, अक्षत पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य चढाता है तब उसे एक 'दिव्य' शब्द और बोलकर चढाना चाहिए, अर्थात् दिव्य जल, दिव्यचदन दिव्याक्षतान् (आदि) निर्वर्पामीति स्वाहा' बोलना चाहिए।

इन दिव्याष्ट द्रव्यो को श्री चरणो मे समर्पित करने के आचार्यो ने निम्न महाफल बतालाए है। परन्तु शर्त है चढाने से पूर्व, चढाते समय या चढाने के पश्चात् किसी प्रकार की फलैषणा नही होना चाहिए। निष्काक्ष भक्ति ही सम्यक् फलप्रदात्री हुआ करती है।

जल - परम वीतराग के श्री चरणो के सम्मुख चढाया गया कूप या नदी का दिव्य जल, जन्म, जरा और मृत्यु रूप महान व्याधियो की शाति कर समस्त पाप रूपी मैल का सशोधन करता है।

चन्दन - सौभाग्य सम्पन्न दिव्य वैक्रियक शरीर प्रदान करता है तथा अन्त मे तीर्थङ्कर जैसे महा सुगधित शरीर प्रदान कर ससार ताप का उच्छेद करता है।

अक्षत - जिनेन्द्र के पाद - पकजो मे महा श्रद्धा से चढाये गए स्वच्छ, अखण्ड शालि अक्षय नौ निधि एव चौदह रत्नो का स्वामित्व अर्थात् चक्रवर्तित्व पद प्रदान करते है। अखण्ड तन्दुल रूप अक्षत के प्रभाव से प्राणी सदा अक्षुब्ध अर्थात् रोग - शोक रहित निर्भय होता है। अक्षीण ऋद्धिया उसके चरणो का बन्दन करती है। एव अन्त मे वह भव्य श्रावक आत्मा के अक्षय, अव्याबाध

सुख को प्राप्त होता है।

पुष्प - सुन्दर प्रासुक पुष्पो से पूजन करने वाला पूजक कमल के समान सुन्दर मुख वाला एव तरूण युवतियो के नयन कमलो तथा दिव्य पुष्प की उत्तम मालाओ के समूह से समर्चित देह वाला कामदेव होता है।

नैवेद्य - ताजी और शुद्ध, विवेक पूर्वक बनाई गई नैवेद्य/चरू मनुष्य को शक्तिमान, कान्तिवान और तेज से सम्पन्न सौन्दर्य रूप समुद्र की बेला वर्ती तरगो से सप्लाविन दिव्य देह प्रदान करती है। अर्थात् ऐसे प्राणी सूर्य, चन्द्र जैसे तेजस्वी अति सुन्दर शरीर के स्वामी होते है।

दीप - जो सद्भक्त सम्यक् भावो के द्वारा अर्हदादि पच गुरूओ के श्री चरणो मे दिव्य दीप चढाते है वे सद्भावो के योग से उत्पन्न हुए केवलज्ञान् रूपी प्रदीप के तेज से समस्त जीवादिक पदार्थो के ज्ञाता अर्थात् केवलज्ञानी होते है।

धूप - धूप से उत्पन्न धूम से आराधक की मन शुद्धि के साथ देह शुद्धि तो होती ही है, साथ ही अनेक रोगो का शमन भी उस धूम से हो जाता है। इसके अतिरिक्त वह भव्यात्मा चन्द्र सम धवल कीर्ति से जगत्त्रय को ध वल करने वाला अर्थात् त्रैलोक्य व्यापी यश वाला होता है।

फल - महा निर्वाण रूप इष्ट फल को प्राप्त करना है।

अर्घ्य - 'अर्घ्यं सर्व सिद्धयर्थं' - सभी द्रव्यो का समूह अर्घ कहलाता है और यह अर्घ सभी अर्थो/प्रयोजनो को सिद्ध करता है।

इनके अतिरिक्त जो मनुष्य मन्दिर मे घटा, ध्वजा, छत्र, चमरादिक भेट करता है उनका फल भी अचित्य है।

घटा - जिन मंदिर मे घटा समर्पण करने वाला पुरूष घटाओ के शब्दो से आकुल श्रेष्ठ कल्प विमानो मे उत्पन्न हो सुर समूह से सेविन उत्तम - अप्सराओ के मध्य क्रीडा करता हैं।

ध्वजा - विजय पताका का प्रतीक है। इन विजय ध्वजाओ का दाता सग्राम के मध्य भी विजयी होता है। साथ ही षड् खण्ड रूप भरत क्षेत्र का निष्प्रतिपक्ष स्वामी और यशस्वी होता है। ये ध्वजाए माला, मृगेन्द्र, कमल, ध्वज, शुक, गज, वृषभ, रथ, मयूर और हस इन दस प्रकार के चिन्हो से चिन्हित होती

है। इन्हे पालि ध्वज कहते है।

छत्र – छत्र दान करने से दाता पुरूष शत्रु रहित हो पृथ्वी पर एक छत्रराज्य करता है।

चमर – चमर के दान से स्वर्गो मे स्वय चमर समूह से परिवर्जित किया जाता है।

इन सर्व क्रिया – कलापो से अनुरक्त – उपयोग सम्यग्दर्शन की विशुद्धि को बलवती बनाता है। इस दर्शनविशुद्धि से तीनो लोको मे हलचल पैदा कर देने वाला तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है। यह सम्यक्त्व वर्धिनी क्रिया है।

गुणो मे अनुराग वश जिनेन्द्र की पूजा की जाती है और गुणानुराग का अपर नाम ही तो भक्ति है जिसमे सर्वाङ्ग हार्दिकता अपेक्षित है। पूजा करते समय इतना ध्यान अवश्य रखे कि सामग्री निष्पाप साधनो से तैयार की गई हो। प्रासुक जल से सावधानी पूर्वक बनाई गई हो, आरम्भ की बहुलता न हो।

प्रसग वश पूजा के भेदो और फलो को बतलाना उचित समझता हूँ। पूजा तीन प्रकार की होती है–

'भृत्यैश्च बन्धुभि पूज्यैरिन्द्रै र्जिनपते कृता।
तामसी राजसी पूजा सात्त्विकी भवति धुवम्।।'

सेवको – नौकरो से जो पूजा कराई जाती है वह है तामसी पूजा, सम्माननीय या बधु वर्ग से जो पूजा कराई जाती है वह राजसी पूजा एव जो इद्रो द्वारा अर्थात स्वय मे इन्द्र की स्थापना करके जो पूजा की जाती है वह है सात्त्विकी पूजा। इन तीनो पूजाओ का फल क्रमश दस उपवास सौ उपवास एव स्वर्गश्री और मुक्तिश्री के समागम से प्राप्त होने वाला अनत सुख है।

आचार्य पद्मनंदिजी कहते है जो जीव श्रद्धा – भक्ति से भगवान जिनेद्र का न दर्शन करते है, न पूजा करते है, और न ही उनकी स्तुति करते है उनका जीवन निष्फल है उनके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

द्वितीय फल गुरोपासना

ज्ञान, ध्यान और तप मे सलग्न निर्ग्रन्थ गुरूओ की सम्यक रीत्या

परिचर्या, वैय्यावृत्ति का नाम है गुरु-उपासना जो कि मन से स्मरण वचन से स्तुति और काया से सेवा के रूप मे की जाती है। अनुकूल आचरण से युक्त निश्छल मनोवृत्ति से गुरू के मन मे प्रवेश कर राजा की तरह उन्हे करना, निरन्तर विनय से अनुरक्त करना। गुरूओ के दिखते ही उठकर खड़ा होना, उनका आगमन होते ही सम्मुख जाना, मस्तक पर अजुलि रखकर स्वय आसन पर आसीन कराना, भक्ति-भाव से नमस्कार करना, आदरपूर्वक सेवा करना, उनके जाने पर पीछे चलकर विदा करना यह है गुरू उपासना का क्रम। गुरू उपासना से, उनकी प्रसन्नता के प्रसाद से उपासक को केवलज्ञान रूपी नेत्र प्राप्त होता है। जो गुरू की उपासना नही करते वे सूर्य के रहते हुए भी अधेरे मे रहते हैं। उनके अज्ञान को दिवाकर भी दूर नही कर सकता। जिस प्रकार प्रकाश के बिना मनुष्य मार्ग को नही देख सकता उसी प्रकार धर्मार्थी गुरू के आलोकाभाव मे धर्म मार्ग नही देख सकता। जो नित्य गुरू की उपासना करते है उनका चैतन्यदीप कषाय वायु से सस्पर्शित नही होता। षोडश कारण पूजा मे कहा भी है-

'जो आचारज भक्ति करे है, सो निर्मल आचार धरे है'

जीवन की 'सस्कार धानी' गुरू उपासना ही है। जो हमे आध्यात्मिक सौदर्य की नई ऊर्जा, नई उष्मा, नवीन ताजगी की अनुपम सुषमा प्रदान करती है। गुरू, सृष्टि मे ज्ञान, आचरण एव विचारो की खूबसूरत मीनार निर्मित करते हैं। जिससे मानव रूपी शिष्य समाज अधकार की घाटियो से निकलकर आलोक के प्रकोष्ठ मे प्रवेश करता है। जो अखिल विश्व को सम्पूर्ण सकीर्णताओ से ऊपर उठाकर, सकुचित स्वार्थो से पृथक कर 'सत्य शिव सुन्दरम्' के मखमली वातास मे ले जाते हैं वे ही सच्चे अर्थो मे गुरू हैं। जिनवाणी के माध्यम से आखे खुलने के बाद ही उनमे ज्योति आ सकती है, लेकिन गुरू समागम मे जिनवाणी, जिनदेव और जिनगुरू तीनो मिल जाते है। वे भाग्यशाली है जिन्हे गुरूकृपा प्राप्त है।

शकुन शास्त्र मे जैसे हस, भारद्वाज पक्षी, पूर्णकलश, गज, कन्या के दर्शन शुभ निमित्तो के सूचक है वैसे ही जिनेद्र मुद्राकित गुरू का दिगम्बर वेश सकल शुभ निमित्तो का सूचक है।

समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे कहा है गुरू अर्थात तपोनिधि को प्रणाम करने से उच्च गोत्र, आहारादि दान देने से भोगोपभोग की सामग्री, उपासना करने से पूजा-प्रतिष्ठा, भक्ति से सुदर रूप तथा स्तवन करने से कीर्ति की प्राप्ति होती है। जो गुरू के समीप मे न शास्त्र श्रवण करते है और न उनको हृदय मे धारण करते हैं, न ही उनका दर्शन करते है, उनके न तो कान है, न हृदय और न ही नेत्र हैं वे बहरे, असज्ञी और अधे है ऐसा मैं समझता हू।

तृतीय फल है जीव दया

जो धर्म रुपी महल की नीव है। धर्म पादप की जड है। दया, ध र्म की रक्षा के लिए ही दुनिया मे अनेक तरह के नियमो-उपनियमो का प्रावध ान है। क्या कभी आपने बिना नीव के महल की स्थिरता देखी है? मनुष्य मे सपूर्ण गुण जीव दया के आश्रय मे उसी तरह रहते है-जैसे पुष्पो की लडिया सूत्राश्रित रहती है। गुण-समुदाय जीव दया के आश्रय से स्थिर है। यदि माला के मध्य का धागा टूट जाता है तो उसके पुष्प बिखर जाते है उसी प्रकार दया के अभाव मे या दया का धागा टूटने पर सम्यग्दर्शनादि सारे गुण बिखर जाते है जब छाछ से आर्द्र भूमि पर तृण अकुरित नही होते तब क्या दयार्द्र मनोभूमि पर किसी के द्वारा लगाए गए दोषाकुर उत्पन्न हो सकेगे?

जिन गृहस्थो का हृदय जिनागम के अभ्यास से ओतप्रोत हो चुका है वे ही गृहस्थ वास्तव मे धर्मात्मा है। दूसरे प्राणियो को कष्ट देने से ही पाप नही होता, बल्कि प्राणी की हिसा के विचार मात्र से आत्मा दूषित होकर पापयुक्त हो जाती है। घटना का घटक अदर ही है बाहर नही। जिन खर-नखरदार पजो से मार्जार चूहो का शिकार करती है उन्ही पजो से कभी अपनी प्राण प्यारी सतान झेलती है। जिन पजो मे प्यार पलता है, उन्ही पजो मे काल छलता नजर आता है। स्वत सिद्ध है पजे न स्वय हिसक है न अहिसक है। प्राण का पलना, काल का छलना अन्तर घटना है। बाहर तो मात्र अभिव्यक्ति है, तरग यात्रा है। इसी पर आधारित है सारा घटना चक्र। वही विश्व को बनाता भुक्ति, वही दिलाता मुक्ति।

दया आत्मबल है। जिनमे दया नही होती उनमे प्रेम भी नही होता।

जिसके पास दया धर्म है उसके ऊपर आकाश भी निरतर रत्नवृष्टि करता है। किसी ने कहा है- 'जिन प्रेम कियो तिन प्रभु पायो।' जैसे सत्य से भव्यतर कुछ नही है वैसे दया से दिव्यतर कुछ भी नही है । इसी दया के दृढतम आधार पर महान मनीषी अपना शाश्वत उत्कर्ष खडा करते हैं। सैकर कहते हैं- दया ऐसी दासी है कि वह अपने मालिक को भिखारी की हालत मे मरते नही देख सकती। जैसे चद्रमा चाण्डाल के घर- झोपडे को भी रोशनी देता है वैसे ही दयालु हृदय क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी पर दया की वृष्टि करते है। जो शक्तिहीन हैं वे ही दयाहीन होते है, जो दयालु होते है वे बलिष्ठ माने जाते हैं। दयालुता चारित्र को सुदर बनाती है, माता के समान चरित्र की सुरक्षा करती है और अपनी बढती हुई उम्र के साथ चेहरे को भी सुदर बना देती है। किन्तु जब दया का देवदूत दिल से दुत्कार दिया जाता है और आसुओ का फव्वारा सूख जाता है तब इन्सान रेगिस्तान की रेत मे रेगते हुए सर्प की मानिद हो जाता है। दया की महिमा सभी धर्मग्रथो मे गाई गई है।

ससार वल्लरी का उच्छेदक चतुर्थफल सुपात्र दान

मनुष्य के जीवन मे भोग और रोग दोनो रहते है। जो भोग और दान की भेद रेखा को नही जानता वह केवल सचय ही करता है किन्तु उस सचय की भी जहा सार्थक समाप्ति नही वहा सिर्फ लज्जा है।

श्रावक का कर्त्तव्य है वह अपने न्यायोपात्त धन का कुछ अश दान के रूप मे अवश्य निकाले। गृहस्थाश्रम मे गृह सबधी आरभ उद्योग, व्यापारादि मे अर्जित पाप को अतिथि के लिए दिया गया दान उसी प्रकार धो देता है जैसे रूधिर या मल को जल।

'रक्तेन दूषित वस्त्र न हि रक्तेन परिशुद्धयति'

रक्त से दूषित वस्त्र रक्त के द्वारा क्या कभी धोया गया है? यदि नही, तो पाप द्वारा पाप कैसे निजर्रित किए जा सकेगे?

दान को चार कोटियो मे विभाजित किया गया है- आहार, औषधि उपकरण (शास्त्रादि) एव आवास (अभयदानादि)। चारो का अपने- अपने स्थान पर अपना- अपना महत्व है। औषधि विज्ञान पर कल्याणकारक नामक ग्रथ लिखा गया है। उसमे चारो दानो का महत्व इस प्रकार प्ररूपित किया

है। आहार दान - जब तक पेट मे भोजन रहता है अथवा जब तक पात्र पुन क्षुधातुर नही होता तब तक अपना प्रभाव दिखलाता है अर्थात दाता उतने समय तक ही प्रीति पात्र होता है चूंकि आहार दान से उसकी सयम साधना होती है, वह अध्ययन मे सहायक होता है। जिसने रत्नत्रयधारी को आहार दिया उसने उसे रत्नत्रय प्रदान किया ऐसा समझिए। औषधदान तब तक प्रभावकारी है जब तक पुन रोगोत्पत्ति न हो। अभयदान प्राणी जब तक पुन भयभीत न हो अथवा जीवन पर्यन्त अपना प्रभाव दिखलाता है किन्तु ज्ञानदान ही एक ऐसा दान है जो जीव को भव भवान्तर तक साथ देता, कैवल्योपब्धि मे भी सहायक होता है। आप गृहस्थ है, कमाते है तो दान भी दे। दान और त्याग समाजवाद के सूत्र है। इसी सूत्र पर समाज व्यवस्था सतुलित रहती है।

जल सग्रह से मेघ श्यामल हो जाते है किन्तु जब वे जल दान कर देने है तो शुभ्र - स्वच्छ हो जाते है। धन सग्रही श्यामल और दान करने वाला शुभ्र मेघवत् होता है। दान का साक्षात्फल तो यह है कि दान आदमी को इस लायक बना देता है कि उसे दान न लेना पडे। दान वशीकरण मत्र है इससे धन की श्रीवृद्धि होती है। परन्तु दान देते समय सत्पात्र, अपात्र, कुपात्र का विवेक करना नितान आवश्यक है। सत्पात्र मे गया दान वटवृक्ष के बीज की भांति विशाल छाया और अगणित फलो का दाता होता है। एक कुए का जल गन्ना मे गया मीठा हो गया, गाय के स्तनो मे गया दुग्ध बन गया, सर्प के मुख मे गया तो प्राण घातक जहर बन गया। सुपात्र दान का फल दर्शाते हुए कहा गया है -

'सुपात्र दानेन भवेत् धनाढ्यो, धन प्रकर्षेण करोति पुण्य।
पुण्याधिकारी दिवि देवराज, पुनरेव भोगी पुनरेव दानी'।।

सुपात्र दान से दानी धनाढ्य होता है। धन की प्रकर्षता से पुन दानादि पुण्य कार्य करता है। पुण्याधिकारी स्वर्ग का इद्र हो कर वहा भोगो का उपभोग कर पुन मनुष्य - भव मे भोग करता हुआ पुन दानी होता है क्योंकि ठीक ही है बादलो का जल सीप मे ही मोती बनता है। कुपात्र को दान देने से दारिद्रय घर मे डेरा डाल देता है। दरिद्रता के दोष से दूषित प्राणी पापाचरण

करता हुआ पापाधिकारी बन नरक मे महाप्रयाण करता है। वहा से निकलकर पुन दरिद्री होता हुआ पुन भोगी होता है।

अपात्र मे गया दान भस्म मे हवनवत् व्यर्थ है अथवा यू कहिए ऊसर भूमि मे वपित बीज के समान निष्फल है। पाप बध का ही प्रबल कारण है। अपात्र का दान श्रावक के सम्यग्दर्शनादि गुणो को उसी प्रकार दूषित करता है जिस प्रकार स्वच्छ नीर विषैले पात्र का सयोग पा विषैला हो जाता है। अत श्रावक के लिए यह विचारणीय प्रश्न है कि किसे, क्या, कब और कैसे दान दे, उस पर पूर्वापर सम्यक विचार करे। विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता से ही दान मे विशेषता आती है। जिससे स्व, पर का अनुग्रह हो वही दान दे। जिस गृहस्थाश्रम मे अतिथियो को दान नही दिया जाता वह गृह नही पाषाण नौका है जो स्वय डूबती है तथा आश्रित लोगो को भी डुबा ले जाती है। पद्मनंदि पच विशतिकाकार कहते है-

'सूनोर्मृतेरपि दिन न सतस्तथा स्याद्,
बाधाकर वत यथा मुनिदान शून्य।'

सज्जन पुरूष के लिए अपने पुत्र की मृत्यु का भी दिन उतना बाधक, दुखप्रद नही होता जितना कि मुनिदान से रहित दिन। अत प्रत्येक श्रावक का श्रावकोचित कर्तव्य है कि वह गृह विमुक्त अतिथि को श्रद्धा, भक्ति, सतोष, विवेक, क्षमा, सत्य और अलुब्धता इन सप्त गुणो से युक्त नवधा भक्ति अर्थात प्रतिग्रहण, उच्चासन, पाद प्रक्षालन, पूजन, प्रणाम, मन, वचन, काय एव एषणा शुद्धि पूर्वक आहार दान दे।

पाचवा फल - गुणानुराग

गुण यानि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र एव अनुराग का अर्थ है राग, वात्सल्य, पुरस्कार। सद् गृहस्थ का पुरस्कार ही गुणानुराग कहलाता है क्योकि वह शिवपथ गामी है, सतत् साधना निरत है, विश्वकल्याण से सदा उसका घट छलकता रहता है। गुणानुरागी बुलबुल की तरह है जो केवल बसत की बात कहता है और बुरी बात उल्लू दुर्जन के लिए छोड देता है। गुणीजनो को देखकर उसके हृदय मे प्रेम की बदलिया उमड आती है। यह एक ऐसा मित्र है जिसका आश्रय लेकर जीवन शान्ति से बिताया

जा सकता है। इससे नित - नवीन बाते सीखने का सुयोग मिलता है, क्षितिज पर प्राणियो का प्यार मिलता है और पारलौकिक क्षेत्र मे सुख सुविधाओ का प्रबन्ध होता है। गुणानुराग से आप्लावित हृदय केवल गुणो की ओर दृष्टि रखता है, दोष उसकी दृष्टि से ओझल रहते है। वह उपगूहन एव वात्सल्य पूर्वक दूसरो के जीवन को सभालता है। इस प्रसग मे श्रेष्ठि जिनदत्त का गुणानुराग प्रशसनीय,श्लाघनीय है।

प्रसग इस प्रकार है - बिहार प्रान्त के पाटलिपुत्र का युवराज सुवीर कुसगति वश सप्त व्यसनाभिभूत हो गया। ऐसे ही व्यसन व्यस्त चोर पुरूष उसके सेवक थे। उसी समय ताम्रलिप्त नगर मे उदार महामना जिनेद्र भक्त श्रेष्ठि जिनदत्त रहता था। नामानुसार उसकी यश - कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी। धर्म और धर्मी मे उनका निश्छल अनुराग था, उन्होने सतमजिले कक्ष पर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के ऊपर एक विशेष प्रकार का वैडूर्यमणि खचित छत्र लगा रखा था। कानो कान यह बात सुवीर तक पहुच गई। उसने अपने मित्र मडल से कहा - क्या कोई सेठ जिनदत्त के जिनालय से उस मूर्ति को लाने मे समर्थ है ? सूर्यनाम का चोर मेघ गर्जन करता हुआ बोला - यह मणि तो क्या, मै इन्द्र का मुकुट मणि भी ला सकता हू। बस फिर क्या था ? बीडा उठाते ही उसने कपट का अवलबन लिया और एक देश रत्नत्रयधारी क्षुल्लक का वेश बनाकर कायक्लेश तप से काया को कृश कर अपनी यश - पताका दिगन्त मे फहराता हुआ ताम्रलिप्त नगर आ पहुचा।

जिन धर्मी व गुणानुरागी जिनदत्त का हृदय रत्नत्रय गुण समन्वित क्षुल्लक को देखकर श्रद्धा से भर उठा। ठीक ही है, गुण से अनुराग रखने वाला गुणी गुणो से भिन्न नही होता जैसे नीलत्व से भिन्न नीलोत्पल। यही हेतु था कि गुणानुराग वश उस क्षुल्लक को जिनदत्त श्रेष्ठि ने अपने गृह चैत्यालय मे स्थान दे दिया। अब तो क्षुल्लक की दसो अगुलिया घी मे थी। रोज सेठ के साथ तत्वचर्चा होती जिससे सेठ के मन मे श्रद्धा क्रमश दृढीभूत होती गई। एक दिन क्षुल्लक से आज्ञा लेकर सेठ समुद्र यात्रा पर चल पडा। नगर के बाहर ही प्रथम पडाव था। अवसर के खोजी क्षुल्लक ने अवसर का लाभ उठाया। वह मध्य रात्रि मे वैडूर्यमणि को छत्र से निकाल वस्त्र मे आच्छादित

कर भाग खडा हुआ, लेकिन मणि का तेज वस्त्र से छुप ना सका। क्या कभी रूई मे आग लपेटी जा सकती है?

कोतवाल और सिपाहियो ने उसका पीछा किया। अपने आपको बचाने मे असमर्थ जानकर नगर के बाहर सेठ के चरणो मे गिरकर गिडगिडाते हुए प्राणो की भीख मागने लगा। कोतवाल और सिपाहियो के शोरगुल से यद्यपि सेठ ने निर्णय कर लिया था कि यह चोर है परन्तु इस वेशधारी क्षुल्लक का उपहास न हो जाए अन्यथा लोगो का गुणवान अर्थात रत्नत्रय गुणधारक पुरूषो पर से विश्वास उठ जाएगा, ऐसा सोचकर गुणानुराग वश बोले - अरे सिपाहियो! इन क्षुल्लक को परेशान क्यो कर रहे हो? मेरे कहने से यह मणिरत्न ला रहा था और तुम लोग उसे चोर समझ बैठे। सेठ के वचन श्रवणकर सभी शात व लज्जित हो गए क्षुल्लक और सेठ को प्रणाम कर क्षमा याचना पूर्वक घर वापिस लौट गए। पश्चात एकात मे सेठ ने चोर को बहुत समझाया। पुन इस प्रकार की पुनरावृत्ति न हो ऐसी प्रतिज्ञा दिलाकर उसे छोड दिया। यह कहलाता है - गुणानुराग।

गुणानुरागी केवल गुण प्रशसक होता है। वह गुणानुराग के रथ पर सवार हो शीघ्र शिव पत्तन को प्राप्त करता है। गुणानुरागी दरिद्र होते हुए भी सुशोभित होता है। किन्तु गुण - द्वेषी अनेक रत्न युक्त होता हुआ भी बेरूप है। जीर्ण - शीर्ण वस्त्र भी नेत्रवान की शोभा बढाते है, लेकिन नेत्रहीन अधे को स्वर्ग के अनुपम सौदर्य शाली दिव्यालकार भी सुशोभित करने मे असमर्थ होते है। अत श्रेष्ठि जिनदत्त जैसा गुणानुराग प्रत्येक मानव को प्राणिमात्र के प्रति रखना चाहिए, यही मानवीय कर्त्तव्य है। इससे सम्यग्दर्शन निर्मल और पुष्ट होता है।

शास्त्रश्रवण - मानव जीवन के वृक्ष पर लगा हुआ अंतिम फल

मन भावो के उतार - चढाव की परेशानियो से उद्वेलित न हो, सदा सतुलित रहे इसके लिए तत्वज्ञान की महती आवश्यकता है। पर ध्यान रहे! उसमे सदेह को अवकाश न हो, क्योंकि सदेह - ज्ञान अनिर्णयात्मकता का प्रतीक है। सदेह होने पर व्यक्ति फिसल सकता है। इसलिए सोमदेव सूरि 'नीतिवाक्यामृत' मे रेखाकित करते है कि 'वरमज्ञान नाशिष्ट जन सेवया

विद्या।' ज्ञान, विद्या लाभ गुरू-मुख से ही श्रेष्ठ है। दुष्ट सगति से ज्ञान प्राप्त करने से तो अज्ञानी रहना श्रेष्ठ है। क्योंकि 'अल तेनाकृतेन यत्रास्ति विषससर्ग ?' उस अमृत से क्या लाभ जो विष मिश्रित हो? समीर जिस सुरभित-दुरभित देश को स्पर्श करती है तदनुकूल सुगंधित-दुर्गंधित हो जाती है, ज्ञान भी जैसी सगति पाता है वैसा ही रग लाता है। जैसा लोकप्रसिद्ध है कि खानि से उत्पन्न मणि सस्कार से अत्यत उज्जवल हो जाती है वैसे ही गुरूमुख से निसृत शास्त्र रूपी अग्नि से अशुद्ध मानव मणि दैदीप्यमान हो उठती है। अत शास्त्र श्रवण एक ऐसा विस्तृत वितान है जिसकी शीतल छत्र-छाया मे अनेकानेक भव्य आत्माए अपने अज्ञान ताप को शात कर सुखपूर्वक विश्राम करती है।

मनुष्य जीवन रूपी वृक्ष उक्त षट्फलो से सहित है। उस पर विवेक, दया, क्षमा, सतोष, सत्य, सदाचार, ज्ञान,शुभदान, निरहकारता, पवित्रता, मित्रता, ऋजुता, कृतज्ञता , सुशीलता, शूरता, धैर्य, त्याग आदि गुण रूपी विहग सदा चहकते रहते है। किन्तु इन फलो से रहित जीवन वृक्ष पर कोई भी गुण रूपी पक्षी आना नही चाहता। जैसे विद्या मनुष्य को विभूषित करती है वैसे ये षट्फल मानव जीवन को सनाथ करने है। गुणो से मनुष्य गौरव को प्राप्त होता है।

भक्ति के उठते हुए सरगम

भक्ति के उठते हुए सरगम भक्त की चेतना को ऊर्ध्वमुखी बना, जीवन वीणा को स्वर-ताल दे सब ओर से सुरभिन, आनदित कर जीवन मे नित-नवीन ज्योति प्रदान करते है। भगवत् पद की ओर अग्रसर कर शाश्वत सत्ता से मिलाते है, जो कहलाती है शुद्ध अरहन भक्ति।

अर्हद् भक्ति साता वेदनीय का प्रबध कर जन-जीवन मे सुख-शाति का वातावरण स्थापित करती है तथा आयु, विद्या, यश, बल और सम्मान की वृद्धि करती है। जगत प्रसिद्ध हनुमान की रामभक्ति उन्हे हर स्थिति, हर घडी मे वरदान सिद्ध हुई एव धरती पर एक उत्तम आदर्श बन गई, जिसे आज सारा विश्व आचरण मे ला रहा है। सचमुच ही अहकार रहित भक्ति भक्त को भगवान बना देती है।

भक्ति के लिए कोई खास स्थान और तिथि की आवश्यकता नही

होती, क्योंकि भक्ति श्रद्धा का शुद्ध रूप है निर्ग्रन्थ सत हमारी श्रद्धा के जीवत केद्र हैं। जहा मानव अपने विकारो को विसर्जित कर बुराईयो से बचता है। जिनके श्रीचरणो की स्मृति मात्र से विघ्न, बाधाए पलायन कर जाती है। डाकिनी - शाकिनी, भूत आदि बहिरग दैहिक समस्त भय दिन रहते असत् हो जाते है। सर्पो द्वारा सताया गया प्राणी स्वस्थ, निर्विष हो जाता है।

महाकवि सेठ धनञ्जय जब भगवत् भक्ति मे लीन थे, उस वक्त उनके इकलौते बेटे को सर्प ने दश कर दिया, वह मूर्च्छित हो गिर पडा। परिणामस्वरूप परिवार मे कोहराम मच गया। सेठ भक्ति मे तल्लीन थे और इतने तल्लीन कि उन्हे इस बात का जरा भी अहसास नही हुआ उनकी अर्द्धांगिनी ने कुपित - दुखित हो मृतप्राय पुत्र को मदिर मे ही भगवत् भक्ति करते सेठ के पैरो पर रख दिया किन्तु धनञ्जय सेठ जरा भी विचलित नही हुए, और दुगुने उत्साह से भक्ति मे तल्लीन हो गए। उन की निष्काम भक्ति ने पुत्र के विष को निर्विष कर दिया। सेठ की पत्नि अत्यत प्रभावित हुई। अपने स्वामी द्वारा नि काक्ष भक्ति का प्रभाव देख और अपने पति की आरती उतारने लगी।

महानुभाव ! भक्ति सदा निष्काक्ष ही होना चाहिए। निष्काक्ष भक्ति भक्त को सदा वरदायिनी हुआ करती है। आचार्य मानतुग 48 तालो के भीतर राजा भोज द्वारा बद किए गए थे किन्तु वे अपने प्रभु मे लीन हो गए और समस्त ताले तड - तड करते हुए टूट गए। भक्ति का माहात्म्य देख राजा भोज ने वीतराग धर्म को स्वीकार कर किया। अत आप भी भगवत् भक्ति कीजिए किन्तु बिना किसी अपेक्षा के, तो जीवन धन्य हो जाएगा। आ० समन्तभद्र जैसे तार्किक उद्भट्टाचार्य, आप्त की स्तुति रूपी सागर मे अवगाहन करते हुए अपने पाप मल प्रक्षालित करते रहे। यदि मनुष्य अपने जीवन रूपी वृक्ष पर लगे देवार्चना, गुरोपासना, जीवदया, सुपात्रदान, गुणानुराग एव स्वाध्याय (शास्त्र श्रवण) जैसे षट् महान मधुर फलो को भक्ति पूर्वक यावज्जीवन चखता रहे तो उसे किसी दु ख, सकट, विपत्ति की भयावनी छाया छू नही सकती। ऐसा प्राणी ही सदा सर्वदा शान्ति मय सुखद जीवन का पात्र होता है।

■■

नारी : तरुवर की सघन छांव

क्षीर समुद्र की लहरो मे अमृत और विष दोनो पाये जाते है। समीर के मृदु झोके से उत्पन्न लहर मृदुस्पर्शी एव सुखावह होती है, किन्तु वे ही लहरे अनिल के तीखे झौके एव प्रचण्ड पवन अथवा चक्रवात जैसी सवर्तक वायु के सम्मिश्रण से विषतुल्य अर्थात् जीवनघाती हो जाती है। तद्वत् नारियो मे भी अमृत यानि सुख देना एव विष अर्थात् दुख देना, दोनो तत्व विद्यमान है। एतावता नारी मृदुता और क्रूरता का कुल जोड है।

नारी का हर्ष . मगल का कारण

जनश्रुति है देवता भी उसी गृह को अपने आवास से मगलमय करते है, जहाँ भारतीय गौरव का प्रतीक नारी को कमल पत्र के अग्रभाग जैसे कोमल हृदय से अपनी हृदयस्थ मृदुता को लुटाने का पूर्ण अवसर मिलता है। देवोपभुक्त अमृत प्रसाद भी वही बरसता है जहॉ नारी को सम्माननीय दृष्टि से देखा जाता है। जहॉ एक ओर नारी के नेत्रो और अधरो की मृदु मुस्कान पर ही घर की सारी खुशियॉ निर्भर है। उसके चरण - क्रम मे सारा स्वर्गी वैभव लुण्ठित है। अप्सराए छाया की तरह किकरी है, सम्पदाएँ दासवन् कार्य करती है। वही दूसरी ओर नारी के नेत्रो एव अधरो की क्रूरता पर गृह महारौरव नरक का दल - दल, तम - तम तमकता अधकार एव प्रेतो की ताण्डवी लीला - स्थली मात्र बनकर शेष रह जाता है। परिवार का उत्कर्ष - अपकर्ष नारियो की मुष्टि मे है। जहॉ जिस कुल मे नारियॉ शोकमग्न रहती है, उस कुल का त्वरित विनाश हो जाता है एव जिस कुल मे नारियॉ हर्ष मय रहती है, उस कुल मे सदा उत्कर्ष एव मगल ही मगल घटता है।

नारी को पुरुष समाज ने स्त्री, महिला, अबला, कुमारी, सुता, दुहिता, वधु, पत्नी, भार्या, कामुकी वल्लभा, दैवी, प्रिया, अगना, जाया, माता इत्यादि अपनी सुविधानुसार अनेक नामो से पुकारा है और पुरुष के कर्मठ पौरुष ने सदा उसके हृदय पर शासन किया है। उसकी इच्छाओ को स्वेच्छाओ मे केन्द्रित किया है। नारी को 'मत्री' कहने वाले लोगो ने कभी उसे मत्रणा का खुला

अवसर नही दिया। उसे सदा पति आज्ञा की चाबी भरी गुडिया समझा गया है, जबकि नारी के अभाव मे नर अधूरा है।

'नर' शब्द के चरित्र मे दीर्घत्व,वृद्धि अर्थात् 'आ' एव शक्ति बीज 'ई' कार अनुपस्थित है। किन्तु नारी शब्द की ध्वनि कहती है मेरे साथ 'अ' जो अव्यय शक्ति और बुद्धि का परिचायक है, सारस्वत बीज का जनक, माया बीज के साथ-साथ कीर्ति, धन एव आशा का पूरक 'अ' की वृद्धि रूप 'आ' कार जुडा हुआ है, वह बडा वैज्ञानिक है। मत्र शास्त्रानुसार इसे वायु तत्व बीज सज्ञक भी कहा है। 'आ' मेरा अभिन्नावयव है तथा शिवत्व प्रतीक, शक्ति बीज, अमृत बीज की मूल कार्य साधिका, स्तम्भक, मोहक, जृम्भक, गुण बीज एव तेजो बीज रूप 'ईकार' मेरे पीछे मुझे सभाले खडी है। जब 'नर' शब्द अपने मूल स्वरूप मे, अपने अस्तित्व मे किसी और के अस्तित्व को स्वीकारता है तभी उपर्युक्त 'आ' और 'ई' गुण सपन्न बीज मत्रो के सयोग से 'नर' ह्रस्व,हलका नही होता प्रत्युत उसकी अस्मिता अपना पृथक् अस्तित्व रखती है।

नारी का हाथ, नारी का हृदय, एव अमृत-प्लावित मृदुता उसके साथ है, जो अपनी मृदु मुस्कान के साथ अपने स्वरूप का उद्घोष करती है। 'न अरि यस्या सा नारी', 'अथवा या न अरि यस्य कस्यापि सा नारी'। जैसे वायु की अपनी कोई सुगध नही होती, वह जैसा सम्पर्क पाती है वैसी ही सुरभित-दुरभित होकर बहती है। उसी प्रकार नारी की स्थिति है। वह कभी स्वत कुपथ पर नही चली उस ने भी पुरुषो से बाध्य होकर कुपथ पर चलना सीखा है। उसके स्वय के पाद-निक्षेपो ने तो सदा सुपथ पर ही गमन शील हो प्रतिष्ठार्जित की है। परतत्र होकर ही उसमे प्रतिपल पापभीरुता पलती है। वह पलभर भी पाप पालडी भारी नही होने देती यदि ऐसा न होता तो आप ही बतलाइए उसका नाम भीरु क्यो पडा?

नारी की आखे करूणा की कटोरी

नारी की आखे करुणा की कटोरी है, जो शत्रुता से अनछुई है। इन धृति धारिणी जननियो ने जिदगी के प्रति उदासीन पुरुष के बुझते शौर्य दीप

मे सदा ही साहस और उत्साह की घृताहुतियॉ दी है। आधार के भूखो को आधार देती हुई उनमे अपूर्व आस्था जागृत करती है एव गन्तव्य के सम्यग्दिग्दर्शन मे अनूठी पथप्रदर्शिका का कार्यवहन स्वय करती है। परिग्रह, आग्रह और विग्रह पीडा से जिनकी सयम की जठराग्नि मद पडी है, ऐसे लोगो को 'इच्छा निरोध' (जिसमे से स्नेह,राग निकाल दिया है ऐसी) औषधि पिलाती है। पक्ष मे (जिसमे से नवनीत निकाल दिया गया है) ऐसी मठ्ठा महेरी निर्विकृति रूप औषधि पिलाकर उसकी सयमाग्नि को उद्दीप्त करती हैं, इसलिए वे महिला कहलाती है। महिला के पास 'इ' और 'आ' क्रमश अग्नि और वायु तत्व सज्ञक बीज विद्यमान है। महि की 'इ' से वह सयम-अग्नि को उद्दीप्त करती है तथा 'ला' के 'आ' से उसमे प्राण वायु का सचार कर ध्यान की ओर अग्रसर करती है।

भोगो मे आकण्ठ लिप्त पुरूषो को नारी समाज ने सदा सावधान कर पतन की राह से बचाया है। कटी पतग की तरह निराशाओ से टूटे- पुरुषो को नारियो ने आशाओ की गाठ बाधकर उत्तुग ऊचाईयो का दर्शन कराया है। सुधाहार तुल्य, विशुद्ध शीला, धर्म कल्पवृक्ष रूप धर्म निष्ठा नारियो ने पुरुषो की चित्तवृत्ति को विगत की दशाओ, अनागत की आशाओ से पूर्णत हटाकर आगत मे लाकर खडा किया है। राजा श्रेणिक के 'सम्यक्त्व लाभ' एव तीर्थकर प्रकृति के बध मे रानी चेलना की भूमिका को ही प्रथम श्रेय जाता है।

वृद्ध परम्परा ने अनुभूत सच ही कहा है कि जो कुछ सयम की छाया, प्रतिच्छाया पुरुषो मे दृष्टिगोचर हो रही है, वह सब धर्मशीला नारी के धार्मिक सस्कारो की फलश्रुति है।

श्रुतियाँ सदेश देती है। 'नारी गुणवती धत्ते स्त्री सृष्टेरग्रिम पदम्- अर्थात् गुणवती स्त्री नारी जाति मे अग्रगण्यनीया है। विपद्ग्रस्त पुरुष नारी का हाथ छोड सकता है, छोड देता है, किन्तु नारी कभी पुरूष का साथ नही छोडती। नारी मे यदि एक छोटा सा भी दुर्गुण पुरुष की दृष्टि का विषय बन जाता है तो पुरुष उसे या तो जगल मे छुडवा देता है, या घर से निकाल तलाक दे देता है, किन्तु दमयन्ती ने द्यूत मे सर्वस्व हारे महाराज नल का साथ नही

छोडा। बन्धुमती ने वेश्यासक्त चारूदत्त का घर लौटने पर पूर्ववत् सत्कार सुरक्षित रक्खा।

नारी सा चरित्र क्या किसी पुरुष मे देखा!

युद्ध के लिए प्रस्थान करते हुए पवनजय के 'अमगलमुखी! कुलटे! मगल बेला मे अमगल मुख क्यो दिखाती है, वाक् - वाण एव पाद प्रहार को अजना यह सोचकर सहन कर गई आखिर मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ जो बारह वर्ष से पतिदर्शन से वंचित मुझे पाद प्रहार के बहाने पति का चरण स्पर्श तो हुआ एव मेरे तरसते कर्ण पुटो मे अमृत तुल्य कुछ शब्द तो पडे। मानसरोवर तट से रात्रि मे मित्र सहित छुपकर आये पवनजय का उसने स्वागत ही किया। पवन से प्रश्न नही किया, न ही व्यग किया कि प्रभात मे अमगलमुखी कहनेवाले रात्रि मे अमगला का मुख देखने क्यो आ गए?

पवनजय की इच्छा पूरी करने के बाद अजना ने पवनजय के चरणो मे सिर रखकर सिर्फ इतना ही कहा- हे आर्यपुत्र! मेरे किस अपराध ने आपको मुझे परित्यक्ता घोषित करने के लिए बाध्य किया? क्रूर कर्म को अभी इतने से सतोष नही हुआ। अपने पति द्वारा आरोपित बीज को उसने सतर्कता पूर्वक सुरक्षित रखा। पति एव पुत्र की शुभ दर्शनेच्छा से कठोरतम यातनाए सहती हुई जगल मे जीवन धारण किये रही, किन्तु कभी स्वप्न मे भी पति के प्रति ग्लानि का भाव उसके हृदय मे नही जन्मा। क्या ऐसा चरित किसी पुरुष नायक मे देखा है? पति के लिए शील, सन्तान के लिए ममता समाज के लिए नैनिक सदाचार पूर्ण गौरव, विश्व के लिए, दया और जीव मात्र के लिए अपने लक्ष्य मे करूणा सजोकर रखने वाले प्राणी का नाम ही नारी है।

यदि हम यह कहे कि सूर्य जैसा तेज, चन्द्रमा जैसी शीतलता, समुद्र जैसा गाम्भीर्य, पर्वत जैसी दृढता, पृथ्वी जैसी क्षमा, आकाश जैसी विशालता और वृक्षो जैसा त्याग यदि ये समस्त गुण एक ही स्थान पर देखना है, तो नारी के हृदय को देखिए! तो कोई अत्युक्ति न होगी अर्थात नारी मे वे समस्त गुण विद्यमान है, जो अन्य प्राणियो मे दुर्लभ ही नही वरन् मुश्किल है।

सच ही किसी ने कहा है-

नारी मे अति उज्जवल सतीत्व,
उज्जवल सतीत्व मे महातेज।
उस महा तेज के दीपक मे,
नारी रखती है रवि सहेज।।
उस औरो को स्वजन बना लेती,
देखो स्वजनो का सघ छोड।
औरो का सदन बसा देती,
प्रिय जन्म सदन सबध तोड।।

'नु नरस्य वा धर्म्या नारी' नर का धर्म ही नारी है अर्थात् नारी की सुरक्षा पुरुष का धर्म है।

'स्थानभृष्टा न शोभन्ते दन्ता केशा नखा नरा ।
इति विज्ञाय मतिमान्स्वस्थान न परित्यजेत्।।'

दॉत, केश, नख और मनुष्य यदि अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाते है तो वे शोभा नही देते, अस्तु इस तत्व को भली भाति समझकर बुद्धिमान पुरुष को अपना स्थान, कर्तव्य, धर्म नही छोडना चाहिए। किन्तु आज अर्थप्रिय पुरुष के सामने नारी धर्म की रक्षा के प्रति च्युताच्युत का प्रश्न कोई महत्व नही रखता। इसलिए सम्प्रति मे घर-घर मे गृह युद्ध छिडा हुआ है। गृहस्थ-धर्म धर्मसकट मे पडा कराह रहा है। लोग भले ही अपने को सद्गृहस्थ माने किन्तु यह उनका भ्रम मात्र है चूकि वे स्वस्थ सद्गृहस्थ धर्म की परिभाषा नही जानते। आचार्यो ने गृहस्थ धर्म निम्न प्रकार निरुपित किया है।

सानन्द सदन सुताश्च सुधिय कान्ता प्रियालापिनी।
इच्छापूर्तिधन स्वयोषिति रति स्वाज्ञापरा सेवका ।।
आतिथ्य सुरपूजन प्रतिदिन मिष्ठान्न पान-गृहे।
साधो सगमुपासते च सतत धन्यो गृहस्थाश्रम ।।

जिस गृहस्थाश्रम मे आनदपूर्ण गृह, बुद्धिमान पुत्र, प्रियवदा स्त्री, इच्छापूर्ति के लिए पर्याप्त धन, अपनी पत्नी से प्रीति, आज्ञाकारी सेवक, अतिथि-सत्कार, देव-पूजन, प्रतिदिन मधुर भोजन तथा सत्पुरुषो के सग-सत्सग का सुअवसर सदा सुलभ होता है वह धन्य है।

भार्याहीन गृह वनम्

पद्मपुराणकार रविषेणाचार्य ने गृहस्थाश्रम को परम पवित्र एव गृह को सदा तीर्थ के समान कहा है-

'गृहस्थाश्रम पुण्यतम सर्वदा तीर्थवद्गृहम्'।

वृहत्पराशर सहिताकार भी कहते है-

न गृहेण गृहस्थ स्याद् भार्याया कथ्यते गृही।
यत्र भार्या गृह तत्र भार्याहीन गृह वनम्।।

केवल घर मे रहने से कोई गृहस्थ नही होता, पत्नी के साथ रहने से मनुष्य गृहस्थ कहलाता है। जहॉ भार्या है वही घर है, भार्याहीन गृह तो वन तुल्य है। मध्यकालीन कवि ने तो यहॉ तक कह डाला है 'बिन गृहिणी घर भूतो का डेरा'। जिस कुल मे स्त्री-पुरुष परस्पर एक दूसरे से सतुष्ट रहते है उसका अवश्य कल्याण होता है। क्योंकि जब पुरुष नारी को अर्द्धांगिनी के रूप मे स्वीकारता है और अपने आधे अग जैसी सुरक्षा करता है तब वह अर्द्धांगिनी नारी अपने पुरुष का सर्वांग क्षेम चाहती है। उसके जीवन रथ का उत्तम सारथ्य करती है। ससार मे जिसका कोई सहायक नही उसकी पत्नी उसको जीवन यात्रा मे साथ देती है। ***'असहायस्य लोकेऽस्मिन् लोक यात्रा सहायिनी।'***

नर क्यो शक्तिमान है?

दुर्भाग्य है देश का, कि ये नीतिया न जाने किस अन्ध गुहा-गह्वरो मे खोती चली जा रही है। आज नारी-पुरुष के बीच की आत्मीयता-सवेदना कहॉ विलुप्त होती जा रही है। क्यो आज आदमी आदमी नही, उसका अपभ्रश मात्र शेष रह गया है। गृहस्थाश्रम मे रहते हुए जिस पति-पुरुष को जीवन सगिनी की ओर से सहयोग नही मिलता वास्तव मे वे अभागे है। नारी, भावना के राज्य की दुर्बल प्रजा नही है वह भावना के साम्राज्य की साम्राज्ञी है। वह विधाता का वैभव है, मानवता का मानदण्ड है। स्त्री सौन्दर्य का आकर, कोमलता की पराकाष्ठा है, और है प्रेम का पर्वत। स्वर्ग के समीरण का नृत्य उसके नूपूरो की झकारो मे सन्निहित है। नारी महान शिव का मनोहर रूप है। महाशक्ति रूप नारी की शक्ति, उसका खून, दूध एव मास पाकर ही मनुष्य शक्तिमान

है। 'कहना नही, करना' उसका मूलमत्र है। यदि वह कार्य न करे तो ससार अचल हो जायेगा।

जग जीवन पीछे रह जाये,
यदि नारी न दे पाये स्फूर्ति।
इतिहास अधूरे रह जावे,
यदि नारी कर न पाये पूर्ति
ससार महा सागर अपार
नारी सागर मे बनी नाव
जीवन की उष्ण दुपहरी मे
नारी तरुवर की घनी छांव।।

महानुभाव! जैसे चिडिया एक परव से नही उड सकती वैसे ही नारी के अभाव मे नर जीवन नही चल सकता। नारी कहती है मैं पढती हूँ सतान को शिक्षित करने एव पति के क्लान्त मन की शांति के लिए। मैं गाना - बजाना सीरवती हूँ शौकीनो की शान, लालसा पूर्ति के लिए नही, प्रत्युत हृदय को कोमल बना उसमे पूर्णता भरने के लिए। मै नृत्य सीरवती हूँ, लोक रजन के लिए नही, अपितु जग को नचाने के लिए। ध्यान रखना मैं अपत्य जनती हूँ, आदर्श महामानव बनाने के लिए। मै गुलाम पैदा नही करती हूँ। मै आपत् - विपद सब कुछ सहन करती हूँ कारण मै सहना जानती हूँ। मैं मनुष्य को अपने अक मे दुलार कर मनु बनाती हूँ, क्योंकि मैं आदर्श सृजन जानती हूँ। लोगो ने मुझे 'कामुकता की काल कोठरी' कह कर पुकारा है, यह मुझे अस्वीकार है, तथापि मै उन पर क्रोध नही करती हूँ, क्योंकि मै जानती हूँ यह उनका क्रोध है। पुरुषो के पास विध्वसक क्रोध को शालीन कर्तृत्व मे परिणत करने की क्षमता का अभाव है। मै यह भी सम्यक् प्रकारेण जानती हूँ कि उनका यह कथन अहेतुक है यह उनके भावो की भावुकता के अतिरिक्त और कुछ भी नही है।

हजार पिताओ से श्रेष्ठ · एक माँ

नारी कहती है, मैं अपने सबध मे अब और कुछ कहना उचित नही समझती। अन्यथा पुरुष समाज इसे आत्म - शसा समझकर मेरा मजाक उडा

देगे। तो लीजिए, अब मै आपके समक्ष इतिहासकार ही प्रस्तुत करती हूँ। इतिहासकारो ने माता, पिता, समाज, लौकिक विद्या गुरु एव लोकोत्तर शिक्षा प्रदाता लोकोत्तर गुरु। इस प्रकार पाच गुरु माने है। इन पच गुरुओ की गणना मे सर्व प्रथम माता का नाम स्मरण किया गया है-

'गुरुगण गणनारभे प्रथमैव पतति कठिनी सभ्रमा मातुश्च।'

ऐसा ही भाव मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय मे भी दृष्टव्य है-

'उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणा शत पिता।
सहस्र तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते।।'

अर्थात् बडप्पन की दृष्टि से दश उपाध्यायो से बढकर एक आचार्य होता है। सौ आचार्यो से बढकर एक पिता है एव हजारो पिताओ से बढकर एक 'माता' होती है। मान्टेसरी का मन्तव्य भी यही है ।

A good mother is better then hundred teachers

नारी कामुकता की काल कोठरी नही

नारी समाज की रीढ है। उसके विविधायाम हैं कन्या, कुमारिका जो आचार्यो द्वारा मगल रूप मे स्वीकृत है कण्णा मगला' - कन्यकाश्च मगला'। जो माता-पिता व पारिवारिक सदस्यो द्वारा सस्नेह पालनीया है। स्वसा के रूप मे भ्राता द्वारा रक्षणीया है। भार्या के रूप मे कामुकता की काल कोठरी नही किन्तु अभिनन्दनीया (सब ओर से आनदनीय अर्थात् आनन्द पात्र) एव माता के रूप मे सदा-सदा से पूज्या अभिवदनीया रही है। अस्तु नारी किसी भी रूप मे हेय अथवा उपेक्षणीय नही है। इन तमाम तथ्यो से आईना की तरह जाहिर है कि उसके हाथो को सबल बनाये बिना मानव जाति का उत्कर्ष असभव है? यहा महाराज मनु का एक बोध वाक्य ज्ञातव्य है, 'जिस दुष्ट के व्यवहार से नारी की आखो मे से सग्रहणीय दुर्लभ अश्रु बहते है वह देवता के दावानल से भस्म हो जाता है। एतदर्थ नारी की अस्मिता को अखण्डित, सुरक्षित रखते हुए उसके रिक्त अचल को मान-सम्मान से आपूरित कर स्वय के, नारी एव देश के मस्तक को स्वाभिमान से समुन्नत बनाने की अविचल चेष्टा देश के प्रत्येक नागरिक को करना चाहिए।

■■

किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया

श्रमण सस्कृति के अमर गायक, विशुद्ध सौन्दर्य- वादी आचार्य प्रवर श्री कुन्दकुन्द ने हमारी उस कहानी को कहा है जो न केवल हम सबके जीवन की कहानी मात्र है, प्रत्युत सत्य तथ्य भी है- वे कहते है-

"सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।"

जगत्त्रयवर्ति शरीरधारियो के द्वारा ये काम-भोग, बधविषयक कथाये कर्णगत हुई है, परिचय भी हुआ है, एव अनुभूत भी हुई हैं, एतदर्थ सुलभ है किन्तु आत्म-वैभव,एकत्व-विभक्त की कथा न कभी श्रवण की है, न ही उनसे परिचय, साक्षात्कार हुआ है, एव न ही वे अनुभव का विषय बनी है, अत वह दुर्लभ है। ससार वर्धिनी-सहभागिनी ऐसी कौन सी वस्तु इस सृष्टि पर अवशिष्ट है, जिसका आपने स्वाद न लिया हो।

सुनते थे जगत्गुरु भारत के त्रिवर्गी उत्तम जाति के लोग नियमत आजन्म शाकाहारी होते थे, किन्तु वे आर्य ही आज आर्य वृत्ति को छोड आसुरी, राक्षसी वृत्ति अपनाने मे तत्पर नजर आने लगे हैं आसुरी वृत्ति की जघन्यतम स्थिति मे पहुच आज वे उच्चवर्गीय लोग 'नर मास' का भी स्वाद लेने लगे हैं।

मै समझता हूँ ऐसा कोई जीव नही जिसने सासारिक एव ससार-सवर्धक सभी भोगो को न भोगा हो, अनुभव न किया हो। अथवा तमाम पदार्थों के बाह्य स्वरूप का व्यवहार-नीति से साक्षात्कार न किया हो। आज सभी के लिए एक बात समझना अत्यावश्यक है, वह यह कि हमारे इस दुर्लभ नर देह मे जो इन्द्रिय और अनिन्द्रिय के षट् द्वार खुले हैं, उनका सदुपयोग हो रहा है अथवा दुरुपयोग। सम्प्रति मे उनकी स्थिति किमात्मक है। षट् द्वारो से प्रविष्ट पदार्थ हमारे भीतर सगतियॉ पैदा कर रहे हैं, अथवा विसगितया निर्मित कर जीव की दुर्गति कर रहे है। इन द्वारो से क्या गदगी मात्र अन्त आयात हो रही है या कि अन्तर्प्रविष्ट गदगी, दुर्गन्ध बाहर भी निर्यात हो रही है। क्या हमारे 'सोच' ने, मन और इन्द्रिय रूपी खिडकियो पर 'एग्झास्ट फेन' लगा रखे हैं अथवा नही, इत्यादि अनेकानेक प्रश्न रूपी दैत्य हर ससारी

प्राणी के समक्ष प्रश्नचिन्ह बनकर खडे है।

अनिवार्यता है इन प्रश्नो का समाधान देने की, इनके चरित्र को जानने की, एव जानकर आचरणात्मक रूचि पैदा करने की। विचार मात्र कार्यकारी नही है, क्योंकि आचरण विहीन विचार तो केवल गर्भपात जैसे है। आप जैसा Interest पैदा करेगे, वैसा ही वातावरण निर्मित होगा। किसी दिन जहा हम बैठे है वहा पर गदगी का ढेर रहता होगा लेकिन जब से धर्म देशना का समारभ हुआ, गन्दगी नजर नही आ रही है। गन्दगी होती तो शायद आप बैठ भी न पाते, न सुन समझ भी पाते। लेकिन आपकी शुचिता की द्वैधता मुझे आश्चर्य मे डाले हुए है, आखिर इतना गभीर मौलिक विरोध क्यो ? बाह्य स्थल स्वच्छ चाहिए, लेकिन जहा धर्म का श्रवण, चिन्तन, मनन, ग्रहण, अनुभवन एव आचरण होना है, वहा वासनाओ, इच्छाओ, कामनाओ और विकारो की गन्दगी के असख्य ढेर सड रहे है।

जैसे आपने इस प्राङ्गण को स्वच्छ, शुचिमय बना लिया है। काश! वैसे ही भीतरी हृदयागन को स्वच्छ - शुचिमय कर ले तो आपकी अतरात्मा रामलीला मैदान बन जायेगी। जहा नित्य की आत्मराम एव शाति - सुमति सीता रानी की लीलाये होती रहेगी। यदि आपके मन मे कोई आना चाहे तो वह तभी उपस्थित हो सकेगा, जब तुम्हारा दिल विराट हो। आपके 'दिल की विराटता' कामेन्द्रिय एव भोगेन्द्रिय द्वय ने छीन ली है।

ये हैं कामेन्द्रिय की वीभत्स कथाएँ

आचार्य जयसेन ने स्पर्श और रसना को कामेन्द्रिय एव घ्राण, चक्षु और श्रोत्र को भोगेन्द्रिय मे परिगणित किया है। इन दोनो के पीछे सारी दुनिया दौड रही है। भोगेन्द्रियो से कामेन्द्रिया अधिक खतरनाक है। विश्व के समग्र कलहो एव विध्वसो मे इसी की मूल, अह भूमिका होती है। 'काम' के कारण सर्व विनाश जैसी असख्य घटनाए इतिहास के गवाक्ष से झाक रही है। इसके पीछे पति - पत्नी को, पत्नी - पति को भी मरवा डालने मे नही हिचकिचाते।

एक मार्मिक रूपक प्रस्तुत है, जो काम का परिणाम उद्घाटित करता है। रानी अमृता कुबडे गीतकार पर आकृष्ट हो गई। प्रतिदिन राजा को सुला देने के पश्चात् अन्त पुर के निजी शयनकक्ष के गवाक्ष से गज शुण्डा द्वारा

उतरकर अश्वशाल मे कूबड से मिलने जाया करती थी। किसी प्रकार राजा के ज्ञात हो जाने पर उसे अपनी मीठी - मीठी बातो मे फसाकर नौका - विहार के लिए ले गई। शुगर कोटेड कुछ मिष्ठान खिला दिया, जिससे शनै - शनै राजा के आगोपाग गलने लगे और आखिर एक दिन उस कुलटा ने राजा को सरिता मे धक्का देकर गिरा दिया।

ऐसे भी प्रसग कथा ग्रन्थो मे उल्लिखित है। एक राजा दुर्मेधष अत्यन्त शूरवीर था, रण - कौशल, कला - विज्ञ, न्याय - नीतिज्ञ पराक्रम मे उसके शासन मे उस जैसा अन्य कोई शूरवीर नही था। न्यायप्रिय नृप ने राज्य की सुरक्षा हेतु अभेद्य दुर्ग, कोट, खातिकाये बनवा रखी थी। शत्रु तो क्या उसकी श्वासोच्छवास भी दुर्ग के भीतर नही पहुच सकती थी। दुर्ग प्रवेश का मार्ग राजा ने अपनी रानी को स्नेहवशात् बता दिया था। समीपवर्ती रुपसुन्दर राजा की प्रशसा उसने अपनी दासियो से जैसे ही सुनी। वह उसके लिए व्याकुल हो उठी। रानी की दयनीय स्थिति से राजा चिन्तित थे, लेकिन लाख प्रयत्न के बावजूद भी बीमारी का पता न लगा सके। अन्तत रानी ने अपनी चतुरा दूती को राजा रूपसुन्दर के पास भेजा। अपनी मनोव्यथा कहलवाई और आक्रमण के लिए प्रेरित किया। पन्द्रह दिन तक सेना दुर्ग मे प्रवेश नही कर सकी। रानी ने जैसे ही सुना अपनी गुप्तचरी को कटक मे भेजकर रूपसुन्दर राजा को दुर्ग प्रवेश का गुप्तमार्ग, भेद बतला कर अपने पति राजा दुर्मेधष को मरवा डाला, एव स्वय खुशी - खुशी रूपसुन्दर की पट्टमहिषि बन गई।

ये है कामेन्द्रिय की वीभत्स कथाए। जिन्होने सदा दु ख, आपदाओ का आह्वान किया है। इन्ही द्वयेन्द्रियो की अर्चिष मे सारा जमाना जल रहा है।

अष्टागुलाओ ने पराजित कर दी चतुरंगिनी सेनाएँ

आचार्य श्री कुन्दकुन्द कहते है, सारे अनर्थो की जड अष्टागुलाए है। चतुरागुला स्पर्शा, चतुरागुला रसना। यथा -

"चदुरगुला च जिब्भा असुहा चदुरगो उवत्थो वि।
अट्ठगुल दोसेण दु जीवो दुक्ख खु पप्पोदि।।"

चार अगुल की कामेन्द्रिय के कारण आयरन, स्टील मेन कहलाने वाला फौलादी पुरुष चार टके की छोकरी के सामने घुटने टेक देता है। हथियार

डाल देता है। चतुरगुला के पीछे मुक्ति प्रदायिनी चतुरंगिनी सेना, अरिहत, सिद्ध, साधु एव केवलि प्रणीत धर्म को भूल जाता है। महाराज दुष्यन्त की शकुन्तला से कौन अपरिचित है? राजर्षि विश्वामित्र जैसे तपस्वी मेनका के समक्ष तप च्युत हो गये उनकी साधना की बुनियादी जडे हिल गई। इन्ही दोनो के जघन्य कृत्य का परिणाम थी शकुन्तला।

स्पर्शा को बल देने वाली है रसना। इसके पीछे दुनिया मे भागमभाग मची हुई है। चतुरागुला रसनेन्द्रिय के कारण चतुरंगिणी महा सेना दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को भूलकर प्राणी चारो महा दिशाओ मे अहर्निश ठोकरे खा रहा है। इसलिए कहा है जो काम का गुलाम है वह पैर की जूती है और जो रसना का गुलाम है वह सबका गुलाम है। यह रसनेन्द्रिय द्विकर्मिक है। खाकर कामेन्द्रिय विकृत करती है तो कृपाण की तरह कटु बोलकर कलह - क्लेशो को जन्म देती है। 'अतिभुक्तिरतीवोक्ति सद्य प्राणापहारिणी।' इस सर्वभक्षी राक्षसी रसना को जिसने जीत लिया वह सर्वेन्द्रिय जेता क्या ससार जित् हो जायेगा। रसेन्द्रिय देश है, शेषेन्द्रियॉ प्रान्त। किसी देश को जीत लेने पर शेष प्रात बिना जीते विजित हो जायेगे।

विवेक वारिधि का दिव्य रत्न, सतोष

आचार्य कहते है, जिस प्रकार नीरस, शुष्क वृक्ष पर विहग नही बैठते, उसे दूर से ही छोड देते है उसी प्रकार रसना विजयी को काम - पक्षी नही सताता, कारण रसत्याग से तन - तरू शुष्क एव इन्द्रिया शिथिल हो जाती है। कृषक जानते है खेत मे हल चलाते समय कही कोई गड्ढा भरना हो तो आसपास की मिट्टी सरकाकर गर्त पूरण कर काम निकाल लेते है, जर्मन - जापान से मिट्टी नही मगाते। आप चाहे तो 'सहज यथालब्ध' से उदरपूर्ति का काम निकाल सकते है। लेकिन आज आम आदमी भी विदेशी वस्तुए पसन्द करता है एव दूर - दराज के सभी देशो से वस्तुएँ आयात कर रहा है। स्पष्ट है इन्सान सहज प्राप्त से अतृप्त है और अप्राप्त के पीछे भाग रहा है, इसीलिए दुखी है।

सतोष जीवन का श्रृगार है। यह वह ताज है जिसे सिर पर नही हृदय पर धारण किया जाता है। अशेष कामनाओ के दोहन मे सतोष से बढकर

अन्य कोई कारगर समर्थ-साधन नही है। मुक्ति मार्ग की प्रेरणा देने वाला इसके अतिरिक्त कोई उपकारी मित्र नही है। पुण्य प्रसाधक परिणामो का कल्पद्रुम सतोष ही है, विवेक-वारिधि से समुत्पन्न दिव्य रत्न है। आत्म वैभव के अधिपति बनने का प्रमाण पत्र है। कारण सतोष की ऊर्मिया जिसके हृदय सागर मे अनवरत आन्दोलित होती रहती हैं उस पुण्यात्मा को पाप-पक स्पर्श नही कर पाता। उसकी दृष्टि मे सारे धन-वैभवधूलि समान है। उसे दुर्घटना होने का अब कोई खतरा नही है, क्योंकि वह अब न स्वार्थ को जियेगा न ही स्वाद को। अब वह जियेगा केवल स्वास्थ्य .. परम स्वास्थ्य के लिए। चूँकि अब वह जानने लगा है-

यतो न किञ्चित् ततो न किञ्चित्,
यतो यतो यामि ततो न किञ्चित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्,
स्वात्माऽवबोधादधिक न किञ्चित्।।

इसका अर्थ है, न यहा कुछ है, न वहा कुछ है। जहा-जहा भी मै जाता हूँ, देखता हूँ, वहा कुछ भी नही है, विचार कर देखता हूँ, तो जगत मे कुछ भी सारभूत नही है। वास्तव मे आत्मानुभव से बढकर अन्य कुछ भी नही है।

स्वास्थ्य के लिए जो अनिवार्य है, स्वच्छ-शुद्ध, निर्मल सात्त्विक आहार वह तो सहज मिल जायेगा, जो जीवन-यापन के लिए पर्याप्त है। लेकिन जो असतोषी है, जिह्वा लम्पट है, वे स्वादेन्द्रिय की आज्ञा पर तन-मन दोनो से दौड पडते है एव उन्ही की पूर्ति सम्पूर्ति मे जिन्दगी की सुख-शान्ति शून्य हो जाती है। यही है कामेन्द्रिय ससर्ग जन्य दु खो की कहानी।

तोड दी मर्यादाओ की रीढ 'केबल' ने

अब जरा भोगेन्द्रियो की पर्तो को उद्घाटित कर देखिए। वहॉ कितने नट-नर्तन कर रहे है। घ्राण, चक्षु और श्रोत्रेन्द्रिय रूपी दीमक दिमाग को ही नही अनुदिन तन-मन को भी खोखला कर रहे है। घ्राण की भूमिका भिन्न किस्म की है। चक्षु और श्रोत्र इन इन्द्रिय द्वय ने सारी मर्यादाओ की रीढ ही तोड दी है। तरह-तरह की मेट्रो टी०वी०, स्टार टी०वी०, जी०टी०वी०,

मल्टी टी०वी० ने नो मूल भारतीय सस्कृति का ढाचा ही बदल दिया है। आज घर-घर मे ही नही कमरे-कमरे मे 'केबल टी०वी०' आ गई है। जिन-जिन परिवारो ने टी०वी० से रिश्ता जोडा है उन-उन परिवारो मे अशान्ति एव आपसी मन-मुटाव ने जन्म लिया है। वैमनस्यताए जन्मी एव पनपी है। मर्यादाए भग हुई है। कारण स्वच्छन्द वृत्ति के प्रसारक दूरदर्शन ने सभी को स्वच्छद बनने के लिए बल एव प्रेरणा दी है। केबल न केवल समय बर्बाद करता है, प्रत्युत पारस्परिक कुशल वार्ता, मेल-जोल सहानुभूति तथा एक साथ बैठकर सुख-दुख के आख्यानो के आदान-प्रदान करने वाले सुख को भी छीन लिया है।

ज्ञात रहे! ये इडीयट बाक्स आप के इर्द-गिर्द चक्कर डाल रहे है, सो इनके दुष्चक्र से अपने आपको बचाना होगा। दूरदर्शन के माध्यम से धन कमाना एक व्यापारिक चाल है। शासन के सामने आज धन ही प्रयोजन भूत तत्त्व रह गया है। धर्म या धर्म नीति से उसे कोई सरोकार नही। मानवो का दुर्भाग्य ही समझिए कि कौन हमे अपने स्वार्थ की ढाल बनाये हुए है यह समझने की सामर्थ्य, प्रज्ञा उनके पास अवशेष नही है। मनुष्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य धनोपार्जन नही धर्मार्जन है, जो है सर्व सुखो का स्रोत। ये न्याय है कि धर्मशील की सन्निधि मे, धनसमृद्धि उसी प्रकार दौडी-भागी जाती है जैसे सिन्धु के समीप सरिताए।

'छाया मध्याह्निकी श्री' धन सपदा मध्यान्ह की छाया सदृश है। लक्ष्मी चचल न होती नो राजसिहविष्ठर पर बैठने वाले नरेशो को पथ-भिखारी क्यो होना पडता। जैसे गुणो मे कृतज्ञता दुर्लभ है तद्वत् त्रसत्व और उसमे भी नासिका एव चक्षु का प्राप्त होना और भी दुर्लभ है। पचेन्द्रियत्त्व प्राप्त होना नो चतुष्पथ पर पडी रत्नराशि वत् दुर्लभतम है। सुरदुर्लभ मनुष्यत्व तथा इन्द्रिय सम्पदा (सयम साधिका) पाकर 'श्री एव भोगो' मे गवाना अमृत कुभ से पाद प्रक्षालन जैसा मूर्खता पूर्ण कृत्य है।

आवश्यकता है सुसस्कारो की

शक्रेन्द्र को देखिए, तीर्थङ्कर बालक के जन्मोत्सव के समय अभिषेकोपरान्त 'आनन्द नाटक प्रसग पर ताडव नृत्य करते हुए बालक का रूपपान दो नयनाजलियो से करते हुए तृप्त नही हो सकने से अपने सर्वांग

मे सहस्र नेत्रो की रचना करता है, फिर भी अलौकिक रूप से तृप्त नही हो पाता। सहस्राक्ष अन्वर्थ सज्ञावान् देवेन्द्र अपने नेत्रो सहित जीवन सफल कर लेता है, किन्तु आप दूर दर्शन के करीब बैठकर दुनिया भर की मार- काट, खून- खराबा, सोसाइट जैसे शालीन दिखने वाले कुटिलताओ के रगीन विचित्र चित्र देखकर धन, स्वास्थ्य, समय, और न जाने क्या क्या गवाकर नेत्र ज्योति भी खो बैठते है। आचार्य कहते है यदि इन नेत्रो से प्रभु दर्शन किया होता तो नेत्रो के पावन द्वारो से पहुचकर वह प्रभु दर्शन आत्म दर्शन का प्रबल प्रेरक निमित्त बन जाता और जीवन सफल हो जाता।

'अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव त्वदीय चरणाम्बुज वीक्षणेन'।

दो वर्ष के नन्हे बालक से पूछो- बेटे! णमोकार मत्र आता है तो फिल्मी गुडिया की तरह नकारात्मक सिर हिला देता है। कहता है, नही, मुझे तो फिल्मी गीत आते है। सुना दू। कभी- कभार मै सुकुमार मनि बालको से पूछ लेता हूँ बेटे! क्या आपको चतुर्विशति तीर्थङ्करो के नाम याद है। तो बालक कहता है 'ममा- महाराज जी, किसके नाम पूछ रहे है? क्या अकल अमिताभ वगैरह के। वह चौबीस तीर्थङ्करो को नही जानता, न ही उनके नाम। देखिए! यह है आपकी भावी पीढी की स्थिति, एव आप का दूषित चित्त वृत्ति का परिचायक प्रमाण पत्र।

महानुभाव! आपने इन्हे किस जाति के सस्कार दिये। ये काम- भोग बध की गाथाए तो सस्कार गत उसे सुलभ थी। आवश्यकता थी मदालसा की तरह शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरजनोऽसि ससार माया परिवर्जितोऽसि जैसी एकत्व- विभक्त कथा के सस्कार दान की। क्या कहू और किस- किस से कहूँ, सारा जमाना इन कामादिक कथाओ मे उलझ कर इस प्रकार अस्वस्थ हो गया है कि धर्मामृत जैसा अनुत्तर पदार्थ उसे वैसा ही अरुचिकर हो गया है, जैसे पित्तज्वर वाले को शर्करा मिश्रित दुग्ध। जैसे- जैसे आदमी की उम्र बढती जाती है वैसे- वैसे इन्द्रिया शिथिल होती चली जाती है। किन्तु खेद है, उसकी वासनाए इन्द्रिय लिप्साएँ अम्लिका (इमली) के खट्टेपन की तरह बढती चली जाती है। आश्चर्य तो देखो इन्द्रिया जरा से जीर्ण हो रही है और मन यौवन पूर्ण हो रहा है। जब आपके श्रवण और नेत्र काम नही करते तब

सासारिक कथाए सुनने - देखने आप श्रवण यत्र एव नयन पर उपनयन लगाते चले जाते। एक व्यक्ति के पास चार प्रकार के उपनयन देखने को मिले। पूछने पर बताया, एक पास का है, दूसरा दूर का, तीसरा इन दोनो के ढूँढने का और चौथा 'शो' का, मैने सिर पकड लिया, वाह रे महामानव! श्रवण स्वाद और शो के लिए कृत्रिम श्रवण यत्र लगवा लेते हो। असली दतपंक्ति गिर जाने पर नकली दतपक्ति फिट करवा लेते हो एव चार - चार उपनयन का परिग्रह सग्रह कर आनद लेते हो। ये सब क्या है?

कब तक स्वीकारोगे गुलामी?

आचार्य जिनसेन स्वामी कहते है - सज्जनानन्द दायिनी, मनोहारिणी, उभय लोक सुख प्रदात्री सत्पुरुषो की सत्कथा श्रवण करने वाले श्रवण ही वास्तविक श्रवण है, अन्य श्रोत्र तो विदूषक के कानो के समान केवल श्रवणाकार मात्र है। जिनके मस्तक मे सत्पुरुषो की पवित्र कथा करने वाले वर्णाक्षर घूमते है वह मस्तक है 'अन्य मूर्द्धा न तु नारिकेल करक वत्' अन्य मस्तक तो नारियल के करक, कठोर - आवरण समान है। विशद चारित्र के कीर्तन रूप - शब्दावलियो के निसृत होने मे सहयोगी दत पक्ति ही पवित्र है, शेष दन्तावलिया तो कफ निकलने वाले द्वार को रोकने वाले मानो कठोर कपाट ही है।

'चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निज पद वेइये।'

इन्द्रियो की गुलामी कब तक स्वीकारोगे? जनश्रुति है, मन बडा खतरनाक है, लेकिन मै कहता हूँ मन नही, मन के माध्यम मे आप जो सोचते है। वह आपका सोच खतरनाक है। वही मन एव इन्द्रिय रूपी अश्वो की बल्गा ढीली कर उन्हे खतरनाक, भयावह मोड पर ले जाता है। जिन्होने अपने चिन्तन को सभाल लिया उनका मन - इन्द्रियाँ मुष्टिगत हो जाती है। तृष्णा का ताप बर्फ की तरह विगलित हो जाता है। जैसे अग्नि और तकार का कोई रिश्ता नही वैसे ही तृष्णा और तृप्ति का कोई रिश्ता नही। तृष्णा का चरित्र कभी तृप्ति नही हुआ। तृष्णा पूरी करने वाला स्वय पूरा हो गया, किन्तु वे अद्यदिन भी अपूर्ण है, 'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्ण।' इन अमरेच्छाओ ने अमरेन्द्रो को भी मारा है। जीव की सदा चतुर्गतियो द्वारा दुर्गति की है। सकृदपि सद्गति पाने हेतु काम - भोग - बध की कथाओ को विराम दो।

आचार्य गुणभद्र जी कहते हैं-

शरीर की अपेक्षाओ की पूर्ति सभव है पर मन की अनन्त आकाक्षाओ का गडढा सुमेरू पर्वत जितने विशाल स्वर्ण और रजत के पर्वतो से भी नही भरा जा मकता। मनुष्य की आकाक्षाएँ बडी है, सपने बडे है। बडे-बडे साधक आकाक्षा मे फॅसकर अपनी साधना को धूमिल कर देते है। सग्रह की तीव्र आकाक्षा व्यक्ति को मृत्यु के कगार पर खडा कर देती है। छलनी को पानी से भरा जा सकता है पर अभिलाषाओ, इच्छाओ की पूर्ति कभी भी सभव नही हो सकती। व्यक्ति की आकाक्षा रहती है कि वह रातो-रात धनाढ्य बन जाए। उसके लिए वह आकाश मे सीढिया लगाने की बात सोचता है और समुद्र मे सुरग बनाने की कल्पना करता है। सच है आकाक्षा का जगत बहुत बडा है, किन्तु आसक्ति की ग्रन्थि खुलने पर सग्रह का इलाज आपो-आप हो जाता है। पचेन्द्रिय व्यापार से हाथ खीच लो, एक बार अपने चित को स्थिर कर लो।

महत्वपूर्ण कौन ?

महत्व वस्तुओ का नही है, वे दूसरो को भी मिली है। सर्प के मस्तक मे मणि है। सीप के उदर मे मोती है, भू-गर्भ मे स्वर्ण-रौप्य का अक्षय भण्डार भरा पडा है। धन का स्वामित्व किसी के गौरव का चिन्ह नही है। कला दृष्टि से मयूर की सर्वांगीण काया चित्रकला से भरपूर है। नृत्य भी उसे कितना सुन्दर आता है। भ्रमर-गुजन एव कोकिला-कूज कवियो के मन प्राणो मे प्राणो की तरह बसी है, परन्तु इनका कोई सदुपयोग नही। आपके परित समग्र-ऐन्द्रिय सम्पदा एव तद् पुष्टि कारक अन्य सामग्रियॉ चरणो मे नित्य नृत्यार्चन कर रही है, किन्तु महत्व इनका नही है।महत्व है भोक्ता और भोक्ता के उच्च विचारो का। जिन्होने अपने उच्च विचारो से इन्हे हासिल कर अनेकश उच्छिष्ट कर वमन, विरेचन कर दिया है। क्या कभी किसी ने वमन का महत्व देखा-सुना है, उसे सभाला है, यदि नही तो उनका महत्व कैसा ? अपने ख्याल मे विवेक का दीपक जलाओ कि महत्वपूर्ण कौन है भोक्ता या भोग्य पदार्थ ? भीतर खोजेगे उत्तर मिलेगा। महत्वपूर्ण है एकत्व विभक्त की कथा जो सहज-सुलभ नही है, जो अविसवादिनी एव लोकोत्तर सुन्दर है। जो है जीव से आज तक अजानी, अननुभूत है। ■■

धर्म वृक्ष पर फलते हैं सर्वेन्द्रिय सुख

धर्म की परिभाषा समझने मे अनेक बार हमारे सामने कठिनाइयॉ आ जाती है। धर्म क्या है? आज के युग मे उसकी परिभाषा सीमित शब्दो मे नही की जा सकती। दर्शन की भाषा मे धर्म की परिभाषा है- आत्मा की शुद्धि। साहित्य की भाषा मे-जिसके द्वारा ज्ञान, आनन्द और शक्ति का विकास हो, वही धर्म है, तो मनोविज्ञान की भाषा मे धर्म का अर्थ है- समता।

मूल तत्त्व है कषाय मुक्ति। जो व्यक्ति इससे मुक्त होता है, वही सही अर्थ मे धार्मिक है। क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, घृणा, हीन भावना की मनोवृत्ति आदि अधर्म है। धर्म उनके मन मे टिकता है, जो शक्तिशाली है, पवित्र है भय रहित है। अभय, समता और क्षमाशीलता धर्म है। दूसरो की उन्नति देखकर सबके विकास की इच्छा करना धर्म है। मित्रता की भावना का विकास करना धर्म है। क्रोध नही करना ऋजुता, सरलता, सतोष धर्म है। दुनिया मे कौन समर्थन नही करेगा इस परिभाषा का?

धर्म का विश्लेषण सही दृष्टिकोण से किया जाये तो निश्चित रूप से स्वस्थ व सुखी जीवन बिताने का साधन मिल जाएगा। आइये धर्म के व्यापक स्वरूप पर विवेचनात्मक दृष्टिपात करे।

धर्ममय जीवन की कला

धर्म जीवन जीने की कला है- स्वय सुख से जीने तथा औरो को सुख से जीने देने की। जो विकारो से मुक्त रहना सिखाती है, वही जीवन जीने की सही कला है। वही शुद्ध धर्म है। शुद्ध धर्म का स्वरूप बडा ही मगलमय और कल्याणप्रद है। हम जब विकार विमुक्त होकर निर्मल चित्त से आचरण करते है तब स्वय तो सुख-शान्ति भोगते ही है औरो की सुख-शान्ति का भी कारण बनते है। इसके विपरीत विकारग्रस्त होकर मलिन चित्तजन्य आचरण से स्वय तो सतापित होते ही है, अन्य के सताप का कारण बनने के साथ-साथ समाज की शान्ति भी भग करते है। मनो विकारो के बिना कोई भी शारीरिक या वाचिक दुष्कर्म सपन्न हो ही नही सकता। जब-जब हमारा मन विकार-विमुक्त और निर्मल होता है, तब-तब स्वाभाविक ही वह स्नेह और सद्भाव से मैत्री और करुणा से भर उठता है। उस समय न केवल स्वय सुख-शान्ति का अनुभव करते है, अपितु परोक्षत औरो की भी सुख-शान्ति का कारण बनते है। हमारे निर्मल

चित्त की तरगे आस-पास के वातावरण को प्रभावित कर उसे यथाशक्ति निर्मल बनाती है।

सच पूछिये तो जीवन-मूल्यो के लिये ही तो धर्म साधना है। यदि धर्म के अभ्यास से जीवन-मूल्य ऊँचे नही उठते, हमारा लोक व्यवहार नही सुधरता, हम अपने लिये तथा औरो के लिये मगलमय जीवन नही जी सकते तो ऐसा धर्म हमारे किस काम का? धर्म इसलिये है कि हमारे पारस्परिक सबध सुधरे। हममे व्यवहार-कौशल्य आवे और बढे। अत शुद्ध धर्म यही है कि प्रत्येक व्यक्ति यही, इसी जीवन मे औरो के साथ अपना व्यवहार-सम्बन्ध सुधारे।

धर्म सार्वजनीन है, इसलिये शुद्ध धर्म का सम्प्रदाय से कोई सबन्ध नही है, कोई लेन-देन नही है। शुद्ध धर्म का अभ्यासी अपने जीवन को सुखी और स्वस्थ बनाने के लिये ही धर्म का पालन करता है। धार्मिक जीवन जीने के लिये धर्म को भलीभॉति समझकर उसे आत्मकल्याण और परकल्याण का कारण मानकर ही उसका पालन करता है। धर्म का पालन दूषणो का दमन करने के लिए ही नही, बल्कि प्रज्ञापूर्वक उनका पूर्ण शमन और रेचन करने के लिये करता है। बहुजन के हित-सुख, मगल कल्याण और स्वस्ति-मुक्ति के लिये करता है।

धर्म तभी तक शुद्ध है, जब तक वह सार्वजनीन, सार्वदेशिक व सार्वकालिक है। धर्म का पालन यही समझकर करना चाहिये कि वह सार्वजनीन, सर्वहितकारी है। किसी सप्रदाय-विशेष, वर्ग-विशेष या जाति-विशेष से बधा हुआ नही है। यदि ऐसा हो तो उसकी शुद्धता नष्ट हो जाती है। धर्म की इस शुद्धता को समझे और धारण करे। निस्सार का अवमूल्यन हो, उन्मूलन हो तथा धर्म के शुद्ध सार का सही मूल्याकन हो, प्रतिष्ठान हो।

धर्म के सार को समझे

धर्म के सार को समझे बिना धर्म का ठीक से पालन नही किया जा सकता है। सार को समझेगे तभी उसे ग्रहण कर पायेगे अन्यथा अदर के सार तत्त्व को छोडकर छिलको मे ही उलझे रह जाऍगे। सार मे सदा समानता रहती है। अनेक रूप-रूपाय भिन्न-भिन्न बाह्याडम्बर, वेश-भूषा, आकार-प्रकार, बनावट-सजावट खान-पान जो भिन्न-भिन्न सप्रदायो के प्रतीक मात्र थे, वे आज भिन्न-भिन्न धर्म बनकर पारस्परिक विरोध का कारण बन गये है। इन बाह्याचार और बाह्याडम्बर रूपी स्थूल छिलको

मे बुरी तरह उलझ गया है सारा मानव समाज। हमे जब तक धर्म की वास्तविक मणि प्राप्त नही होती, तब तक हम कगाल हैं। हमारा जीवन निस्सार दिखावो, निरर्थक कर्मकाण्डो और निकम्मे बुद्धि-किलोलो से भरा रहता है। धर्म का सार तो चित्त की शुद्धता मे है, राग-द्वेष मोह के बधनो से मुक्त होने मे है, विषम स्थितियो मे भी चित्त की समता बनाये रखने मे है, मैत्री, करूणा, मुदिता मे है और साथ-साथ जो यह भी समझते हो कि ये गुण हममे नही है, तो देर-सवेर वे धर्म के सार को प्राप्त कर ही लेते है। लेकिन जब हम बाह्याडम्बर के निस्सार छिलको को ही धर्म मानने लगते है, तो शुद्ध धर्म प्राप्त कर सकने की सारी सभावनाओ को खो देते है। हम यह जॉच कभी करते ही नही कि जिसे धर्म माने जा रहे है, उसकी वजह से हमारे मन-मानस मे क्या सुधार हो रहा है? हमारे जीवन-व्यवहार मे क्या सुधार हो रहा है? अत धर्म की शुद्धता को जानना समझना, जॉचना, परखना पहला आवश्यक चरण है।

शुद्ध धर्म सदा स्पष्ट और सुबोध होता है। उसमे रहस्यमयी गुत्थियॉ नही होती। शुद्ध धर्म मे कपोल-कल्पनाएँ नही होती। जो कुछ होता है, यथार्थ ही होता है। धर्म कोरा सिद्धात निरूपण के लिए नही प्रत्युत स्वय का साक्षात्कार करने के लिये होता है। धर्म राजमार्ग की तरह ऋजु होता है, उसमे भूल- भुलैया नही होती। धर्म आदि, मध्य और अन्त हर अवस्था मे कल्याणकारी ही होता है मिश्री की तरह, जहा से चखो, मुँह मीठा ही करेगा। यदि ऐसा हो तो धर्म यथार्थ है, शुक्ल है शुद्ध है, अन्यथा धर्म के नाम पर कोई धोखा हो सकता है। अतएव शुद्ध धर्म का सार नही ग्रहण करेगे तो द्वेष द्रोह, दौर्मनस्य, दुराग्रह अभिनिवेश, हठधर्मी पक्षपात सकीर्णता, कट्टरता भय, आशका अविश्वास, प्रमाद कठमुल्लेपन से भरा हुआ जीवन निस्तेज, निष्प्राण, निरुत्साही ही होगा। कुत्सित, कलुषित, कुटिल ही होगा व्याकुल-व्यथित और व्यग्र ही होगा। शुद्ध धर्म का सार ग्रहण कर लेगे तो प्यार, करुणा, स्नेह, सद्भाव त्याग बलिदान सहयोग सहकार, श्रद्धा विश्वास, अभ्युदय और विकास से भरा हुआ जीवन ओजस्वी वर्चस्वी ही होगा। शुद्ध धर्म के यही प्रत्यक्ष लाभ है। प्रत्यक्ष लाभ ही शुद्ध धर्म के सार ही कसौटी है।

केवल बुद्धि विलास धर्म नही

धर्म का सही मूल्याकन किया जाना चाहिये। मूल्याकन करते समय यदि दृष्टि सम्यक् रहेगी तो नीर-क्षीर विभाजन-विवेक बना रहेगा तथा

धर्मपथ पर सतुलन बनाए रख सकेगे। सम्यक् दृष्टि यही है कि जिसका जितना मूल्य है उसको उतना ही महत्व दे-न अधिक, न कम। ककर-पत्थर, कॉच-हीरा सबका अपना-अपना, अलग-अलग महत्व है। जितना महत्व है, उसका उतना ही मूल्य है। लौकिक क्षेत्र मे कॉच और हीरे का, मिट्टी और सोने का एक जैसा मूल्याकन नही किया जाता। इसी प्रकार धर्म के क्षेत्र मे भी सबका मूल्याकन समान नही होता। कोरा वाणी-विलास और बुद्धि विलास धर्म नही है। जीवन मे उतरा हुआ शील-सदाचार ही धर्म है।

सत्य/सम्यक् धर्म

सत्य ही धर्म है। सत्य के अतिरिक्त धर्म की और क्या व्याख्या हो सकती है? सत्य का अर्थ केवल वाणी की सच्चाई नही, बल्कि धर्म शब्द की भॉति इसका भी वही व्यापक अर्थ है-यानि स्वभाव, गुण, नियम व विधान। प्रकृति के अपने गुण स्वभाव है, नियम-विधान है। इनमे चराचर विश्व बधा हुआ है। इस व्यापक अर्थ मे सत्य और धर्म पर्यायवाची हैं।

सम्यक् याने ठीक, सही, यथार्थ, सत्य। अत सम्यक् धर्म माने सत्य धर्म, सत् धर्म, सद्धर्म-ऐसा धर्म जिसमे मिथ्यात्व को कही स्थान नही। जिसका कल्पना से कोई वास्ता नही। सम्यक् याने शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल, निर्दोष, निष्कलुष। धर्म निर्मल होना है तो सहज स्वीकार्य होता है। सम्यक् धर्म अर्थात् परिपूर्ण, परिपक्व धर्म। सत्य, स्वच्छ धर्म जीवन मे उतरना ही चाहिये। काया वाणी और चित्त के सभी कर्मो मे धर्म समा जाये तो ही सम्यक् होगा अर्थात् हमारी वाणी, शारीरिक कर्म, आजीविका, प्रयत्न, जागरूकता, दर्शन और सकल्प सभी सम्यक् हो जाएँ तो पूरी सफलता मिल जायेगी। सम्यक् धर्म को जीवन मे उतारने का प्रयास करते रहने मे ही मगल समाया हुआ है, क्योंकि धर्म महज शास्त्रीय ज्ञान मे नही, आचरण मे है। धर्म सैद्धानिक मान्यता मे नही, सिद्धातो का जीवन जीने मे है। धर्म आचरण मे उतरे तो ही परिपूर्ण होता है, सम्यक् होता है, अन्यथा मिथ्या-ही-मिथ्या रहता है।

समता का सतुलन

सुखद से प्रफुल्लित हो उठना और दुखद से मुरझा जाना ही वैषम्य है। दोनो के रहते सतुलित-समरस रहना समता है। समतावान सोचता है।

सुख दुख दोनो धूप-छाव है हर्ष-विषाद क्या करना।
फिल्म हाल मे बैठ के पगले क्या हँसना क्या रोना ।।

समता धर्म है। विषमता अधर्म। समता अनासक्ति है, विषमता आसक्ति। समता धर्म जीवन-जगत से दूर भागना नही है पलायन नही है, जीवन विमुख होना नही है। समता-धर्म जीवन अभिमुख होकर जीना है। समता आती है तो मन, वाणी और शरीर के कार्यो मे शुद्धता आती है। उनमे सामजस्य आता है। परिणामत जीवन मे स्वस्थता आती है। समता ही स्वस्थता है। मन की समता नष्ट होती है तो अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं-मानसिक भी और परिणामत शारीरिक भी। समतापूर्ण जीवन जीने वाला कलावत व्यक्ति ही स्वस्थ जीवन जीता है। समतामय जीवन जीने वाले का अहभाव, आत्मभाव नष्ट होता है। समता पुष्ट होती है तो सामजस्य आता है, समन्वय आता है, स्नेह सौहार्द्र आता है, सहिष्णुता आती है। सहयोग, सद्भाव, सहकारिता सहज भाव से ही आ जाते है। समता के सधने से औरो के हित साधन होते है- सहजभाव से-जैसे चदन की लकडी स्वय कटती है पर बदले मे कुल्हाडी का मुख भी सुरभित करती है और सबके लिये सुरभि ही बिखेरती है।

सरलता का सोपान

समता की साधना के लिये सरलता के सोपान पर चढना आवश्यक है। सरलता बिना समता को पाना कठिनतम है। सरलता तो चित्त की विशुद्धि है। नैसर्गिक स्वच्छ मन स्वभाव से ही सरल होता है। सरलता सर्वहितकारिणी है, सर्वार्थ साधिनी है। मन जब पानी की तरह सहज सरल-तरल होता है तो अपने आपको सच्चाई के पात्र के अनुकूल ढाल लेता है और अपनी सरलता भी नही गॅवाता, क्योकि सरलता मृदुता है, कुटिलता कठोरता है। सरलता ग्रन्थि विमोचन है, कुटिलता ग्रन्थिबधन है। सच्चा सुख तो ग्रन्थि विमोचन मे ही है, विमुक्ति मे ही है। सरलता को छोडकर कुटिलता को अपनाने पर मानसिक सतुलन गडबडा जाता है। आतरिक व्याकुलता चिडचिडाहट के रूप मे बाहर प्रकट होती है, जबकि इसके विपरीत मन जब सरल-सहज रहता है तो मृदु, सौम्य और शात रहता है। इसलिये आत्महित, परहित और सर्वहित के लिये सरलता को अपनाना अत्यत आवश्यक है।

गगा हिमालय से जुडी न हो तो उसका प्रवाह निर्बाध कैसे बहेगा? विद्युत्केन्द्र के तारो से सम्बन्धित हुए बिना विद्युत् कहाॅ से जलेगी? वादक की अगुलियो का स्पर्श हुए बिना वीणा के तार कैसे झनझनायेगे? उसी

प्रकार धर्म वृक्ष के बिना सर्वेन्द्रिय सुख एव आत्मिक सुख रूपी फल कहाँ फलेगे? धर्म मित्र है, अधर्म शत्रु है। अधर्म की शक्ति प्रबल है तो धर्म शक्ति उससे भी अधिक प्रबल है। एक रूपक है।

दैत्य का मर्दन करने वाले, कस को मौत का रास्ता दिखलाने वाले, पाण्डवो के सन्धि प्रस्तापिक शान्ति दूत श्री कृष्ण की अति प्राण वल्लभा पट्टरानी रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न जब छह दिन का था, तब पाप शक्ति से प्रेरित धूमशिखी नामक दैत्य ने उसका अपहरण कर महाखदिर नामक भीषण अटवी मे शिला के नीचे दबा दिया। कारण प्रद्युम्न के जीव ने पूर्व पर्याय मे जब 'दैत्य मधु राजा के रूप मे था' कि पत्नी का बलात् हरण किया था। अधर्म का फल फला स्वय प्रद्युम्न का अपहरण हुआ, परन्तु धर्म का बीज साथ मे था। उसका अकुरण हुआ। देखिए छह दिन का बालक शिला तल के नीचे दबा पडा है। उसकी श्वास से हिला ऐसे हिल रही थी मानो महीन रेशमी वस्त्र हिल रहा हो। बालक शिला के नीचे किलकारियॉ भर रहा था। धर्म का फल उसे अतिशीघ्र मिल गया। विद्याधरो का स्वामी कालसवर राजा जैसे ही आकाश मार्ग से उसके ऊपर से निकला, प्रद्युम्न के पुण्य ने विमान को रोक दिया। विद्याधर नीचे उतरा, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा उसने बालक की प्रदक्षिणाए दी और उसे सहर्ष गोद मे उठाकर अपनी प्रियतमा को सौप दिया। बालक का न केवल उनके द्वारा पालन-पोषण हुआ अपितु सोलह विद्याओ का अद्भुत लाभ भी हुआ। सच है धर्माराधना सकट, विपत्तियॉ दूर करती है, क्योकि दीपक से प्रकाशित क्षेत्र मे अन्धकार की सत्ता नही रह सकती।

धर्म का फल तत्काल मिलता है। अगूर की तरह। अगूर को चखते ही उसी क्षण मुह मीठा हो जाता है। ऐसा नही कि आज अगूर खाओ, कल फल मिले। धर्म आते ही जीवन मे शान्ति एव सन्तोष रूप फल तुरन्त प्राप्त होने लगते है। धर्म का पथ आदि से इति तक बिल्कुल सीधा-सरल हो। सकीर्ण विचारो की पौध पर धर्म के फूल कभी नही खिल सकते। धर्म मित्र है और मित्रता जैसे पवित्र रिश्ते के लिए निश्चल और विराट हृदय की सौ फीसदी आवश्यकता है। धर्म का सम्बन्ध आत्मीय गुणो से है, स्वर्गिक-सम्पदाएँ तो ऐसी हैं जैसे रोते हुए नन्हे मुन्ने को चुप कराने के लिए झुनझुना। ■■

मन : विचारों का विश्व विद्यालय

मन शब्द से हर कोई परिचित है। मन का साम्राज्य विशाल है। योग की एक प्रसिद्ध सूक्ति है- 'यत्र पवनस्तत्र मन ' अर्थात् जहॉ पवन है वहाँ मन है। वर्तमान युग मानसिक समस्याओ का युग है। हर व्यक्ति मन की समस्या है और वह उससे मुक्ति होना चाहता है। मानसिक समस्या से मुक्ति पाने के लिये मन को समझना जरूरी है।

मन क्या है? यह प्रश्न सहज ही मन मे उठता है। सामान्य शब्दो मे कहे तो-जो चेतना बाहर जाती है, उसका प्रवाहात्मक अस्तित्व ही मन है।

मन के मायने- मन का अर्थ है-सकल्प-विकल्प। मन का अर्थ स्मृति और चिन्तन के इर्द-गिर्द घूमता है। मन का अर्थ समय की परिधि मे तीनो कालो मे बॅटा हुआ है। मन अतीत की स्मृति करता है, भविष्य की कल्पना करता है तथा वर्तमान का चिन्तन करता है। मन की प्रकृति चचल है। इसीलिये मन कभी व्यग्र होता है तो कभी एकाग्र।

मन के स्थान के सबध मे पृथक-पृथक धारणाऍ प्रचलित हैं। कोई इसे हृदय के नीचे, कोई हृदय के बीच तो कोई समूचे शरीर मे व्याप्त बताता है। शरीर शास्त्र के अनुसार मन का स्थान मस्तिष्क है। वस्तुत मन का शासन सर्वत्र व्याप्त है।

मन का स्वरूप

मन के स्वरूप को जानना इसलिये आवश्यक है कि वह हमारी साधना का मुख्य आधार है। उसी के आधार पर ध्यान, उपलब्धियो, अनुपलब्धियो का लेखा-जोखा होता है। मन के साथ चेतना का योग न हो तो ध्यान की कोई आवश्यकता नही है। मन का स्वरूप चेतना की धारा से निर्मित होता है। न चचल न स्थिर। जैसा उत्पादन होता है, वैसा ही वह निर्मित हो जाता है।

हमारे मन मे हजारो अवस्थाएँ अनुदिन घटित होती है। जब मन बाह्य के साक्षात्कार मे लगता है तब मन मे हजारो घटनाऍ घटित होती हैं। अकारण प्रेम, शत्रुता व भय के भाव आ जाते है। बाह्य साक्षात्कार

मे बडी परेशानियाँ होती है। मन मे जितने विकल्प उठते हैं, उतना ही मन अशात होता है। थकान व बेचैनी से आदमी परेशान हो जाता है, तब आदमी सोचता है कि दूसरे रास्ते से चलना चाहिये। वह आत्म-साक्षात्कार का रास्ता है।

इसी से विरोधी विचार आदमी के मन मे पैदा होते रहते है। एक मन कहता है- यह करूँ और दूसरा मन कहता है- यह न करूँ। तब विचार आता है कि आदमी के कितने मन हैं। वस्तुत मन तो एक ही है। हमारे चित्त अनेक होते है। हमारे चित्त की वृत्तियाँ अनेक होती हैं। इससे मन अनेक बन जाते है। एक मन भी अनेक जैसा प्रतिभासित होने लगता है। मन के दो स्तर है- चेतन मन का स्तर और अचेतन मन का स्तर। हमारे जितने आचरण है उन सबका स्रोत है-अचेतन मन।

चेतना प्राणी का स्वरूपगत लक्षण है, और इच्छा उसका व्यावहारिक रूप । चेतना अभिव्यक्त होती है इच्छा के माधयम से। गति और प्रवृत्ति इच्छापूर्वक ही हो सकती है, इसलिये जीव का व्यावहारिक लक्षण है-इच्छा।

इच्छा और अभिलाषा की अभिव्यक्ति है-कल्पना। कल्पना मे कोई नया ज्ञान नही होता, केवल ज्ञान का सयोजन होता है। ज्ञात बातो का विभिन्न प्रकार से सयोजन होता है। इस प्रकार दो या अनेक ज्ञात तत्त्वो का सयोजन कर देना कल्पना है।

कल्पना का उपयोग बहुत बडा है। आदमी कल्पना करता है। वह कल्पना प्रेरक बनती है। कल्पना के आधार पर ही आदमी पुरूषार्थ करता है और इस कल्पना को साकार बनाता है। विश्व मे जितने आविष्कार होते है, पहले उन सबकी कल्पना की जाती है। कल्पना को आकार तक पहुँचने मे लम्बी प्रक्रिया से गुजरना होता है। कल्पना जब क्रियान्वित होती है, आकार लेती है, तब नया तथ्य ससार के सामने आ जाता है।

कल्पना का दूसरा रूप है-विकल्प। यह मान लेना कि मैं सुखी हूँ-यह कल्पना ही तो है। वास्तव मे सुख-दु ख अनुभव के साथ जुडता है। कल्पना के साथ तो सुख और दु ख की तीव्रता आती है। जिस प्रकार की विकल्पना होती है उसी प्रकार की अनुभूति होने लग जाती है।

तीसरा तत्त्व है-विचार। आदमी निरन्तर चिन्तन करता रहता है, सोचता रहता है। शब्द का व्यवहरण तो उसका माधयम है। शब्द भी विचार है। विचार का अर्थ है-विचरण करना, गतिशील होना। हमारे भीतर जो सस्कार, वृत्तियाँ और इच्छाएँ है, उनका सयोजन, नियोजन, विनियोजन करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान के सबध मे जानना, सपर्क स्थापित करना, ये सारी मानसिक क्रियाएँ विचार कहलाती हैं।

मन की अवस्थाओ पर यदि हम विचार करे तो पायेगे कि मन की मुख्यत तीन अवस्थाएँ है- विक्षेप, एकाग्रता और अमन। विक्षेप अर्थात् स्मृतियो, कल्पनाओ और विचारो का सतत विचरण, जबकि एकाग्रता का अर्थ है-एक स्मृति पर टिके रहना। तीसरी अवस्था है-अमन। अमन का अर्थ है-मन को उत्पन्न ही नही होने देना। स्थिरता की मान्यता भ्रात है क्योंकि मन की प्रकृति ही 'चचलता' है। चूँकि मन स्थाई तत्त्व नही है, अत वह उत्पन्न और न्ष्ट होता रहता है। निर्विकल्प और निर्विचार की अवस्था 'अमन' कहलाती है।

शब्दशक्ति

समाज के लिये भाषा अनिवार्य अग है। मनुष्य ने भाषा का बहुत विकास किया है। शब्दो का बहुत निर्माण किया है। भाषा के साथ ही सभ्यता और सस्कृति का विकास होता है। भाषा हमारे विचार सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है। शब्द भावो के ढोने का एक वाहन मात्र है। मन की गुहा से निकल हुआ शब्द जब जिह्वा के वाहन पर चढकर आता है तभी वैचारिक जगत की यात्रा सभव होती है। शब्द ज्ञान ज्योति का महत्वपूर्ण साधन है। यह सारा ससार अन्धकार मय हो जाता, यदि लोकत्रय मे शब्द ज्योति प्रदीपित न होती। इसलिए प्राणी का प्रत्येक कार्य भाषा के द्वारा सपादित होता है। उसके प्रत्येक कार्य मे भाषा का योगदान है। इस दृष्टि से मन और भाषा गहरे जुडे हुए हैं।

ध्वनि दो प्रकार की होती है-शब्द ध्वनि और श्रवणातीत ध्वनि। हम शब्द को सुनते है-यह है शब्द ध्वनि। एक सेकेण्ड मे न्यूनतम बीस प्रकम्पन होते हैं और अधिकतम बीस हजार। शब्द ध्वनि को सुनने का

माध्यम है-कान। वे एक सेकेण्ड मे बीस प्रकपन सुन सकते है। इससे अधिक प्रकम्पन कोलाहल की श्रेणी मे आता है, जिसे सहन न कर पाने पर आदमी विक्षिप्त भी हो जाता है।

श्रवणातीत ध्वनि को हम सुन नही पाते है, परतु इसका भी प्रभाव पडता है। सारा प्रभाव होता है प्रकपनो का। जैन दर्शन मे प्रकपन पर बहुत चर्चा हुई है। इसी के अनुसार हम शब्द को नही सुन पाते, शब्द की प्रतिध्वनि को सुनते है। जैसे ही शब्द उच्चरित होते हैं। भाषा की तरगे पूरे आकाश मे फैल जाती है। उन तरगो के प्रकपन आते है, तब हम उनको सुन पाते हैं।

इसी आधार पर महान वैयाकरण भर्तृहरि ने शब्द को 'ब्रह्म' कहा है-शब्द ब्रह्म। भारतीय दर्शन मे शब्द पर सूक्ष्म मीमासा हुई है महर्षि पतजलि के अनुसार-शब्द और आकाश दोनो पर सयम करने से स्वर की शक्ति बढती है।

अच्छे शब्दो का चुनाव अच्छा प्रभाव पैदा करता है, और बुरा शब्द बुरा प्रभाव पैदा करता है। यदि वाचक के अक्षरो की सयोजना उपयुक्त होती है, तो वह शक्ति वरदान बन जाती है और यदि सयोजना गलत होती है तो वही शक्ति अभिशाप बन जाती है। इसीलिये कहा गया है-

अमत्रमक्षर नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्य पुरूषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभ ।।

अर्थात्- ऐसा कोई अक्षर नही है जो मत्र न हो। ऐसा कोई मूल (जड) नही है जो औषधि न हो। ऐसा कोई मनुष्य नही है, जो योग्य न हो। प्रत्येक आदमी मे योग्यता होती है। योजना करने वाला दुर्लभ है।

हमारे जीवन पर और मन पर शब्दो का बहुत असर होता है। शब्द मे शक्ति होती है। शब्द का सूक्ष्म प्रभाव होता है। एक बार स्वामी विवेकानद से एक व्यक्ति ने कहा-शब्द निरर्थक है। उनका प्रभाव या अप्रभाव कुछ भी नही होना। विवेकानद जी ने सुना, कुछ देर मौन रहने के बाद बोले-'बेवकूफ हो तुम। बैठ जाओ।' इतना कहते ही, वह व्यक्ति आग बबूला हो गया। उसकी आकृति बदल गई। ऑखे लाल हो गई। उसने कहा-'आप इतने बडे सत है कल्पना भी नही की थी मैने कि आप गाली भी दे सकते है। कितनी नासमझी है जो शब्दो का ध्यान ही नही रहा

आपको।' विवेकानद जी ने मुस्कुराते हुए कहा-'अभी तो तुम कह रहे थे, कि शब्दो का कोई प्रभाव नही होता और स्वय बेवकूफ' शब्द से इतने प्रभावित हो गये, क्रोध मे आ गए।'

अत शब्द की शक्ति को, उसके अर्थ को और उच्चारण को समझना चाहिये। व्यक्ति को उन शब्दो का चुनाव करना चाहिये जिनसे बुरे विकल्प रूक जाएँ। जो शब्द जीवन यात्रा को विकासशील और कल्याणमय बनाए, उसे विघ्नो से बचाए ऐसे शब्दो का चुनाव आवश्यक है। ऐसे शब्द चुने जाएँ जिनसे जीवन की दुर्गन्ध मिटे, सुरभि फैले।

रग और मन

शब्दो की तरह रगो का भी शरीर, मन और भावना के स्तर पर प्रभाव पडता है। रगो का भी अपना चमत्कार होता है। हम स्वय अनुभव करते है। - जिस दिन आकाश बादलो से घिरा रहता है, अग्नि मद हो जाती है, शरीर सुम्त होने लगता है। धूप होनी है नो आदमी मे स्फूर्ति होती है।

रग, शब्द, उच्चारण और मन- ये चार मुख्य बाते है। रग का हमारे चिनन और जीवन के साथ बहुत गहरा सबध है। रग हमारे शरीर ओर मन को प्रभाविन करता है। आचार्यों ने रग के आधार पर ही द्रव्य लेश्याओ का विभाजन किया है। वर्तमान मे 'रग चिकित्सा' प्रयोग मे है। इसकी एक विधि है- दिव्य किरण चिकित्सा। रग और सूर्य की किरण दोनो के साथ इसका सबध है। शारीरिक और मानसिक रोगो के निवारण मे रगो का अपना विशिष्ट स्थान है। रग थोडा सा विकृत हुआ, आदमी विक्षिप्त हो जाता है। रग की पूर्ति हुई, आदमी स्वस्थ हो जाता है। शरीर मे रग की कमी के कारण अनेक बीमारियॉ उत्पन्न होती है।

हमारे चितन के साथ भी रगो का सबध है। जब मन मे खराब चिनन आता है, अनिष्ट बात उभरती है। अशुभ विचार आते है तब चितन के पुद्गल काले वर्ण के होते है। उनके ग्रहण होते ही मुखाकृति मुरझाने लगती है जिसे लोग अपनी भाषा मे कहते है इसका मुँह फीका/काला पड गया। जब हित चितन करते है शुभ विचार आते है तब चितन के पुद्गल पीतवर्ण के होते है। श्वेत वर्ण के भी हो सकते है। तब मुरझाया मुख कमल की तरह खिलने लगता है। बुरे चिनन के पुद्गलो का वर्ण काला और

अच्छे चितन के पुद्गलो का वर्ण- पीला, लाल या सफेद होता है। रग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव ही नही होता, उसका रासायनिक प्रभाव भी होता है। मत्रशास्त्र मे भी रगो पर गहराई से विचार किया गया है- यथा- शान्ति और पवित्रता के लिये श्वेत रग, सक्रियता और स्फूर्ति के लिये लाल रग, बौद्धिक विकास के लिये पीला रग। हरा रग विषापहारी होता है एव नीला रग अध्यात्म विकास का प्रेरक होता है।

मनोबल की कमी

रोगग्रस्तता के लिये कीटाणु या विषाणु ही जिम्मेदार नही होते है, बल्कि मनोविज्ञान के मुताबिक मानसिक विकृतियॉ और मनोबल की कमी भी इसका कारण होते है। प्रत्येक घटना के साथ मानसिक प्रभाव का होना सहज है। कष्ट मे भी यही होता है। रोग, कष्ट से नही होता। कष्ट होता है रोग के सवेदन से। दर्द होता है सवेदन से, स्थान या रोग से नही। इसके अलावा अतीत के भाव भी बीमारी उत्पादन मे अपनी अह भूमिका रखते हैं।

जो व्यक्ति अपने मनोभावो का शिकार होता है, वह बीमारियो को निमत्रित करता है। बीमारी को मिटाने के लिये चिकित्सक के पास जाने से पूर्व अपना आत्मालोचन कर लेना चाहिये।

भाव चिकित्सा का महत्वपूर्ण सूत्र है- बीमारी का स्वय निरीक्षण करना। ज्ञातव्य है कि क्रोध, भय, चुगली व निन्दा से बीमारियॉ पैदा होनी हैं। अठारह पापो के सेवन से बीमारियॉ होनी है। ये सावद्यरोग बीमारियो के उत्पादक है। सब अनुभव करते है कि जब डर लगता है तो हृदय की धडकन बढ जाती है, रक्तचाप बढ जाता है। बीमारी किसने पैदा की? कीटाणुओ ने या मनोभावो ने? क्रोध के तीव्र आवेश से हृदय की बीमारी हो जाती है। यहॉ तक कि जुगुप्सा, ग्लानि भाव से क्षय रोग तक हो जाता है।

इसी प्रकार घृणा, कपट आदि मनोभाव भी मन के साथ- साथ शरीर को प्रभावित करते हैं। आजकल तनाव शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। औद्योगीकरण के साथ- साथ तनाव भी उतना भी तेजी से बढ रहा है। शारीरिक श्रम से उतना तनाव नही बढता जितना मानसिक उलझनो से। जो अतत शरीर की अस्वस्थता का कारण बनता है। मानसिक तनाव के और भी कारण हो सकते है, परन्तु उसके प्रतिकार का प्रमुख साधन है

कायोत्सर्ग, मन को सरल बनाना स्नायविक तनाव से मुक्ति पाने का प्रथम सोपान है।

मन की शक्ति

ससार मे सर्वाधिक प्राथमिक आवश्यकता है- शक्ति की। शारीरिक शक्ति के लिये भी मन की शक्ति का होना जरूरी है। मन का बल टूटते ही शरीर का बल टूट जाता है। मन मजबूत होता है तो शरीर भी साथ देता है, मन दुर्बल हुआ तो शारीरिक शक्तियाँ भी क्षीण होने लग जाती है। शक्ति का सचय और सुरक्षा का उपाय है- तनाव से बचना। मानसिक तनाव मन की शक्ति को और भावनात्मक तनाव आत्मा की शक्ति को क्षीण करता है।

शक्ति का सबसे बडा रहस्य है- शरीर और मन दोनो का एक साथ रहना। जिसने दूसरो को जीता और अपने आपको नही जीता वह दुर्बल है। मन और इच्छाओ को जीतना बहुत बडी लडाई है। प्रत्येक व्यक्ति का मन इन शक्तियो को सजोए हुए है। हम मन की शक्तियो से परिचित नही है। उसमे असीम शक्तियाँ है। यदि हम मन की शक्तियो से परिचित हो जाएँ, उन्हे विकसित कर ले, तो क्या नही हो सकता। आवश्यकता है मन को पटु, कुशल और सहिष्णु बनाने की, उसे इस तरह प्रशिक्षित करने की जिससे कि हम शारीरिक और मानसिक शक्तियो का सतुलन बनाए रख सके। कहा भी गया है कि- मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। मन किसी भी अप्रिय घटना से ऐसा तडप जाता है जैसे चारो ओर से लाल चीटियो द्वारा डसा जाता हुआ घायल सर्प तडपता है। बदला और प्रतिशोध तो चचल मन की क्षुद्र कल्पनाएँ है।

प्रतिशोध से भरा मन यदि अवरूद्ध भावनाओ की खदबदाती दल-दल है तो प्रेम से भरा मन का हिमालय, गगा के हिमालय पर्वत से भी ऊँचा है। मन की ऊँचाई के आगे हिमालय भी बौना है। इसलिए मन सुदृढ और प्रशिक्षित अश्व की भाँति होना चाहिए। सुदृढ मन प्रशिक्षित इन्द्रिय और सयमित शरीर मे ही टिक सकता है। मन को आकाश-पाताल के **कुलावे मत मिलाने दो**। मानव मन विचारो का विश्व विद्यालय है यहा उसे सम्यक् विचारो का अभ्यास कराओ। अभ्यास की किसी भी मन्जिल पर निराश मन होओ। सच्चा मन ही तुम्हारा, हमारा, सबका साथी है।■■

अहिंसा: आख्यान नहीं आचरण है

कल्पना के चोगे को उतारो

हम सब एक ही पृथ्वी पर जी रहे है, एक ही सौर मण्डल से श्वास ले रहे है, अतर्नक्षत्रीय विकिरण हम सबको प्रभावित कर रहा है। प्रकृति ने ही हमे एक साथ रहना और जीना सिखलाया है, किन्तु मनुष्य के अवचेतन मन से अहकार जुडा हुआ है और उसी से उसे मिल रहा है रस। हमने बहुत सारी धारणाए - मान्यताए पाल रखी है। इन्ही कल्पनाओ - मान्यताओ के ताने - बाने से बुनी चादर को ओढकर हम घूम रहे है। वास्तविकता से हमारा वास्तव मे कोई वास्ता नही है। आज मानव की भोगवादी वृत्ति से जाने - अनजाने हिसा को प्रोत्साहन मिल रहा है। चारो ओर अशाति के घोर बादल छाये हुए है। यदि व्यक्ति शाति से जीना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम अहिसा और त्याग के महत्व को समझना होगा। मात्र समझना ही नही स्वीकारना भी होगा और करना होगा आचरण की चेतना का विकास। यदि अहिसा आचरण मे न लाये तो वैसा ही हुआ जैसे हजारो जीवो को मारकर गो - दान करना। हमारे मन मे, हमारे विचारो मे घनघोर अशाति व्याप्त हो और हम विश्व शाति की बात करे तो आप ही बतलाइए शाति हमारे मन, परिवार, समाज, राष्ट्र, देश मे किस द्वार से भीतर प्रवेश करेगी। कल्पना के चोगे को उतारे बिना विश्व शाति का स्वप्न साकार नही हो सकता, क्योंकि कल्पना का चीर इतना पतला है कि तुम उसमे से देख तो सकते हो किन्तु वास्तविकता से अनभिज्ञ, सूने ही रह जाते हो।

लौटो वही से जहाँ से चले थे

आश्चर्य होता है मानव के दो तरफा विचारो पर। वह शाति का इच्छुक है उसे शाति पाने की गहरी तडप है फिर भी अशाति से क्यो घिर जाता है। जब - जब इस पर विचार करता हू, इसका एक ही समाधान पाता हू कि शाति का अमोघ शस्त्र है अहिसा, जिसे हमने खो दिया है। विचारो की अहिसा, आचरण की अहिसा से हमने अपने आपको मोड लिया है, हिसा

के एक ऐसे खतरनाक मोड पर जहा भूल भुलैया है, घुमाव है साथ ही दलदल भरी सुहावनी फिसलन एव अधकार। आप क्या सोच रहे है? आप इन दुर्घटनाओ से बच जाएगे। ध्यान रखिए! बच न सकोगे। हम बहुत आगे बढ चुके है हमे जरूरत है पीछे बहुत पीछे लौटने की जहा से हमने चलना शुरू किया था।

तोडो धागा ममत्व का

अहिसा का प्रारभिक रूप हमे समझना होगा। उसकी कोई लबी - चौडी परिभाषा नही है। अहिसा कोई नारा नही है, कोई धर्मान्धता, कोई पन्थ, कोई वाद नही है। महज वह एक स्वस्थ विचार है। अहिसा तो जीवन है। मानव मात्र के जीवन की तर्ज है, जो केवल 'जी कर' पहचानी जा सकती है। अहिसा की जन्मभूमि है मनोवृत्ति। सिर्फ हमे भीतर झाकने की आवश्यकता है। जब इसान भीतर झाक लेता है तब ममत्व का धागा टूट जाता है और तब आदमी अनजाने अहिसा मे जुडने लगता है लेकिन इससे विपरीत जब आदमी आदमी के प्रति जागता है अपने प्रति सो जाता है तब ममत्व का धागा रबर की तरह फैलता चला जाता है और वह सिमट कर केवल अपने तक सीमित रह जाता है। परिणाम - स्वरूप स्वार्थपूर्ति से हिसा बढ जाती है। पुन हिसा से हिसा वैसी ही बढती चली जाती है जैसे बैर - से - बैर। इस शाश्वत सत्य से हजारो वर्षो से मनुष्य परिचित है फिर भी हिसा एव बैर की पुनरावृत्ति क्यो हो रही है? यह प्रश्न रहस्यमय है, गाभीर्य है, पर अजेय नही। इसका समाधान खोजा जा सकता है। हिसा के आगे अहिसा हतप्रभ नही हो सकती।

अहिसा के वस्त्र बदल दिए

आज हिसा को मनुष्य ने मान्यता दे दी है और इसकी पुष्टि भी सरलता से की जा रही है। आज सहारक अस्त्रो के अनुसधान मे हजारो वैज्ञानिक समर्पित है। उसने हिसा के वस्त्रो को बदल लिया है जैसे कुरूपता की देवी ने सौन्दर्य की देवी के कपडो को बदल कर पहिन लिया था।

एक प्रसग है, एक बार सौदर्य और कुरूपता दोनो देविया झील के किनारे वस्त्र रखकर झील मे नहाने उतर गई। स्वभावत सौन्दर्य की देवी

को पता भी न था कि उसके वस्त्र बदले जा सकते है। असल मे सौन्दर्य को न वस्त्रो का भान रहता है न ही देह का। सौदर्य को बाह्य सौदर्य की आवश्यकता भी क्या है? कुरूपता को अपना देह-बोध होता है। उसे वस्त्रो की आवश्यकता अपनी कुरूपता छिपाने के लिए पडती है। उसे छिपाने का उपाय खोजती है। कुरूपता की देवी उस दिन उपाय खोज ही बैठी। जब सौन्दर्य की देवी झील मे बहुत दूर स्नान करते निकल गई। कुरूपता की देवी ने मौका पाया, सौन्दर्य की देवी के वस्त्र पहने और चलती बनी। जब सौन्दर्य की देवी बाहर आई तो हैरान हो उठी, क्योंकि उसके वस्त्र नही थे, सुबह हो चुकी थी। मजबूरी मे उसे कुरूपता के वस्त्र पहनने पडे।

'जोर पकडते प्रयोग'

ठीक वैसे ही वैज्ञानिको ने अहिसा का चोला बदल दिया है। उनकी प्रयोग-शालाओ मे जाओ तो हैरान हो जाओगे, कितने चूहे मारे जाते है, कितने मेढक काटे जाते है, कितने जानवर उल्टे-सीधे लटकाये जाते है, कितने मूर्च्छित पडे है, कितनो की चीर-फाड की जा रही है? यह सब होते हुए भी उनका पक्का ख्याल है कि वे हिसा नही कर रहे वरन् आदमी के लिए अनुसधान के लिए सब कुछ कर रहे है। एक-एक देश के पास आज विनाशकारी सामग्री है। विज्ञान उसे अपना अविष्कार कहती है, भविष्य की सुरक्षा कहती है। उसी सामग्री मे से जिस दिन किसी का दिल-दिमाग काबू मे न हो और एक ही बम का विस्फोट कर दे तो सारा विश्व, जो विनाश के कगार पर खडा है, पता नही चलेगा। एक पल मे ही विनाश के गर्भ मे खो जाएगा।

हिसा के अनुसधान, प्रशिक्षण और प्रयोग प्रतिदिन जोर पकडते जा रहे है और हमारा अहिसा-देवता किसी कोने मे बैठा सिसक रहा है। हिसा के विकास को रोकने के लिए हमारे पास अहिसा का कोई शक्तिशाली मच नही है। इसलिए अहिसा निस्तेज होती जा रही है। हम केवल अहिसा के कोरे सिद्धातो की वाचनिक चर्चा द्वारा, आख्यान द्वारा हिसा के विराट मुह फाडे खडे साम्राज्य से लोहा नही ले सकते। आज देश को अहिसा के आचरण की नितात आवश्कता है? इसके बिना वैसी ही धूर्तता की पराकाष्ठा होगी

जैसे चम्पक पुष्प गुलाब बनने की कोशिश करे या गेदा का फूल सूरजमुखी बनने की व्यर्थ नादान कोशिश करे।

आवाज हृदय से नही उठी

हिसा के विरोध मे कुछ लोग आवाज तो उठाते है, परन्तु हिसा के नगाडो की आवाज मे अहिसा की बासुरी की आवाज सुनाई नही देती। कुछ अहिसक लोगो मे अहिसा के प्रति ईमानदारी की कमी भी स्पष्ट दिखलाई देती है। वे अहिसा का जयघोष तो करते है, परन्तु वह उनकी आवाज कण्ठ से उठी आवाज होती है, हृदय से उठी हुई नही। अहिसावादियो से अनुरोध है कि वे अपना कर्त्तव्य समझे। अहिसा को निर्वीर्य न बनने दे। हताश न हो। अधकार था, है, और रहेगा। इसे दूर करने के लिए आदमी ने दीपक जलाया था जलाता है और भविष्य मे भी जलायेगा। अधकार और प्रकाश दोनो की सत्ता त्रैकालिक है। ऐसा सभव नही है कि अधकार हो और प्रकाश का उपाय न हो। इसी प्रकार हिसा का त्रैकालिक अस्तित्व होने पर भी अहिसा उसका उपाय है। उसकी आधार शिला बैक-बोन भी है।

अहिसा की अतल गहराई मे उतरकर महावीर ने एक अद्भुत रत्न खोज निकाला था - अपरिग्रहवाद। स्मरण रखो अपरिग्रह की साधना के अभाव मे अहिसा टिक नही सकेगी। अपरिग्रह तत्व हमारी आखो से ओझल है जिसे महावीर ने भीतरी हिसा से लडने के लिए मनुष्य के हाथ मे थमाया था। बाहर की हिसा रोकने के लिए प्रेम का तत्व दिया था, क्योकि वे समझते थे कि सहृदयता का अभाव ऊच-नीच का दर्प घृणा और आतक ये हिसा के बीज है जब तक दर्प, घृणा और आतक ये हिसा के बीज है, तब तक मानवीय एकता समानता और प्रेम के मूल्यो का विकास नही होगा। ये बीज फलते-फूलते रहेगे। उनके विष फलो को चखकर जीव-जगत स्वय मरता रहेगा और दूसरो को भी मारने से नही चूकेगा। शक्ति, शस्त्र सज्जा मे ही नही अभय मे भी है।

'अहिसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ बैरत्याग

जहाँ अहिसा की प्रतिष्ठा होती है, वहाँ पर जन्मजात बैर-विरोधी जीव अपने बैर का त्याग कर देते है सर्प-नेवला एक साथ खेलने लगते

है, बिल्ली-चूहे को प्रेम से दुलारती है एव सिह-गाय एक घाट पर पानी पीते हैं। पुरूदेव चम्पू मे बड़ा सुन्दर रूपक है- जब ऋषभदेव वन मे विराजमान थे, तब उन्ही के निकट से जिसके कोमल-कोमल बाल थे ऐसी एक चमरी गाय गुजर रही थी। उसके केश झाडी के काटो मे उलझ गए। गाय सोचती है यदि झटका दूगी तो बाल टूट जायेगे। वह वही खडी हुई थी कि एक सिह उसके समीप पहुच गया और अपने तीखे-पैने नखो से कौतुक पूर्वक बालो को सुलझाने लगा, यह है अहिसा की पराकाष्ठा। जीव मात्र के प्रति वात्सल्य भावना का प्रभाव। जिनकी सन्निधि मात्र बैर-त्याग का निमित बन गई।

क्या कमल आग से प्रसूत हुआ है

वस्तुत अहिसा धर्म की आत्मा है। उसके बिना धर्म की वही स्थिति है जो सूर्य बिना दिवस की, तैल बिना दीपक की एव चैतन्य बिना देह की। दूसरो के अधिकारो को कुचलना, दूसरो पर अनुशासन करना, धोखा देना, कष्ट पहुचाना, दास बनाना इत्यादि प्रवृत्तियॉ हिसा के रूपान्तरण है। अहिसा न डरना सिखलाती है न डराना। अहिसा का स्थूल लक्षण है-दूसरे के अस्तित्व का स्वीकरण, राग-द्वेष का सूक्ष्म-स्थूल निराकरण। अहिसा प्रेम का पर्याय है। जीसस कहता है- love is god प्रेम परमात्मा है। पर वह प्रेम जो असीम हो जो 'सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद' का मधुर सगीत गुनगुनाता हो। **प्रेम घृणा से अछूता नही रहता** क्योंकि ससीम प्रेम के पीछे मिश्रित रूपेण घृणा की छाया चलती ही रहती है। जो कमल जल मे उत्पन्न होता है क्या वह आग से प्रसूत हो सकता है? अमृत से प्राप्त होने वाला अमरत्व क्या विष से मिल सकेगा? यदि नही, तो क्या सीमा युक्त प्रेम अथवा पक्ष व्यामोह से ग्रसित प्रेम अहिसा का रूप ले सकता है? नही, कदापि नही।

अहिसा आख्यान नही आचरण है

अहिसा हरीतकी के समान है। जैसे हरड उदरस्थ विकारो को दूर कर देती है, वैसे ही अहिसा भय-विरोध, उद्वेग-उत्तेजना, असहिष्णुता-असतुलन, चिन्ता-ईर्ष्या, क्रोध और द्वेषादि सभी विकारो को

नष्ट कर देती है। अहिसा अभय बनाती है क्योंकि अभय के बिना अहिसा का अवतरण हो ही नही पाता अहिसा और भय की कभी एक दिशा नही होती। जिसमे अहिसा का तेज विद्यमान है वह न स्वय का हनन करता है न ही दूसरो का। कारण हिसा जीवमात्र का स्व-धर्म नही विधर्म है और विधर्म मे प्रवेश की अपेक्षा मृत्यु श्रेष्ठ है। जैसे जीवो की आधार स्थली पृथ्वी है वैसे ही जीवन-दर्शन की अधिष्ठात्री अहिसा है। तीर्थङ्कर जैसा उच्च पद अहिसा के उत्कृष्ट परिपालन की फल श्रुति है। अहिसा एक कवच है, उस कवच के सरक्षण से छूटा व्यक्ति परित असुरक्षित हो जाता है।

अहिसा के आचरण से मनुष्य दीर्घायुष्क, भाग्य शाली, श्रीमान, सुन्दर रूपवान, कीर्तिमान, धी सम्पन्न एव कुलीन होता है। अहिसा की प्रतिष्ठा से पर्याप्त बल एव निरोग शरीर की प्राप्ति स्वत हो जाया करती है। जिसका हृदय प्रदेश अहिसा से प्रक्षालित है, उसके कर तल मे सुगति नामक रत्न विद्यमान है अर्थात उसकी सद्गति सुनिश्चित ही है। इससे विपरीत 'पतन्ति नरके जीवा लोह पिण्डवदम्भसि' प्राणियो के प्राण विघात से प्राणी कर्मभार से इतने वजनदार हो जाते है कि वे जल मे लौह पिण्ड की तरह सीधे नरक बिल मे जा पडते है।

शक्ति शस्त्र सज्जा मे ही नही प्रत्युत अभय मे भी है। 'है' मात्र नही अपितु हिसा से अधिक तेजस्वी शक्ति है अहिसा एव अहिसा धर्मी मे। जहॉ चरम अहिसक पहुच जाते है, वहॉ उनकी परिणामो की निर्मलता के फलस्वरूप षड् ऋतु के फल-फूल एक साथ असमय मे फलित हो जाते है। उनके शरीर से स्पर्शित वायु भयकर रोगो को नष्ट कर देती है। उनका मल-मूत्र भी औषधि से अधिक प्रभाव शाली कार्य करता है। क्या ऐसी शक्ति किसी हिसक या हिसा के उपकरणो मे विद्यमान है। पराक्रम केवल शरीर और शस्त्र मे नही वरन् मन मे होता है। अहिसा मात्र नीति नही, आत्म धर्म भी है। इसे छोडकर अन्य बाते सोची ही नही जा सकती है। मै भारतीय नागरिक को यही परामर्श, आदेश, आशीर्वाद दूगा कि हिसा के प्रतिकार एव अहिसा सवर्धन के लिए शक्ति का सचयन करे और विनाश के कगार पर खडे विश्व के सामने आदर्श प्रस्तुत करे। ■■

सत्य का सर्वश्रेष्ठ अभिनदन - 'सत्य - आचरण'

सत्य नकारात्मक है और होना भी चाहिए, क्योकि उसमे कुछ खोना ही है, उपलब्धि पाजेटिव होगी, विधायक होगी, जो मिलेगा वह वस्तुत होगा और जो हमे खोना है वही खोना है, जो वस्तुत हमारा नही है। अधकार खोना, प्रकाश पाना है, असत्य खोना है, सत्य पाना है। इससे एक बात और ख्याल मे लेनी जरूरी है कि नकारात्मक शब्द इस बात की खबर देते है कि सत्य हमारा स्वभाव है। उसे पाया नही जा सकता, वह है ही। असत्य अर्जित है, स्वभाव नही, असत्य आचरण के लिए कुछ करना पडता है। मनुष्य झूठ के साथ समझौता करके जीवन की कितनी बडी सम्पदा नष्ट कर देता है, जो उसे भी ज्ञात नही है।

असत्य एक्सीडेट है, सयौगिक है। वह हमारे जीवन का प्रवाह नही हो सकता है। जैसे सूरज की धूप शाम आते - आते मुरझा जाती है वैसे ही असत्य के तिरोहित होते ही हमारे सारे भ्रम खुलने लगते है और उस सच्चाई से परिचय होने लगता है, जिससे हम आज तक अपरिचित थे। सत्यभाषी तो जीवन - भर सत्य भाषण कर सकता है, करता ही है, परन्तु असत्यभाषी जीवन भर क्या, चौबीस घटे भी असत्य नही बोल सकता। उसे शीघ्र ही किसी वर्तुल के भीतर आ सत्यभाषी बनना ही पडता है। जल की तरह, जल कितना भी गर्म क्यो न किया जाए लेकिन वह अपने समय की सीमा रेखा के भीतर नियमत अपने शीतल स्वभाव मे परिणत हो ही जाता है।

सचमुच ही ''सच्च हि लोयम्मि सारभूय'' लोक मे सत्य ही सारभूत, श्रेयस्कर है। सत्य मन को परिशुद्ध करता है। सत्य के सामर्थ्य से सत्यवादी मनुष्य वाक् सिद्धि को प्राप्त करता है। उसके मुख से निकला वचन व्यर्थ नही जाता। आगम शास्त्रो मे उल्लेख है कि सत्य की ज्योति, प्रकाशमय, शुभ्र होती है और असत्य का रूप अधकार मय श्यामल होता है। इसलिए जो सत्य बोलता है उसके मुख से आभा निकलती है, जिससे सत्यवादी का मुख आभावान हो जाता है एव झूठ बोलने वाले के मुख से अधकार निकलता

है, जिससे उनका मुख म्लान हो जाता है। मुख का तेज और गुण की म्लानता को देखकर आज भी सत्यासत्य की मीमासा की जाती है। थोडा-सा झूठ उसी प्रकार आघात करता है, जैसे दूध मे जहर की एक बूद।

असत्य तलवार के घाव के समान है, घाव तो भर जाता है, परन्तु दाग कभी नही छूटता। अत सिद्ध है कि झूठ-असत्य दागदार है, सत्य है बेदाग। महत्व की बात तो यह है कि सच्चाई वह गुलजार है, जिसमे कोई काटा नही। ऐ दिल! अगर तू सच्चाई को अख्तियार कर ले तो दौलत तेरी दोस्त और भाग्य मददगार बन जाएगा, क्योंकि सत्य से ज्ञान, विद्या, विवेक, उत्तम स्वर, वचन-चातुर्य, वादित्व एव उत्तम कवित्व प्राप्त होता है।

शायद आप नही जानते होगे कि सत्य, विद्या के लिए कामधेनु, शत्रुता की सर्वप्रसिद्ध औषध, कीर्ति रूप भागीरथी के लिए हिमालय का उन्नत तट है। सरस्वती का तो अनुपम क्रीडा स्थल ही है। लक्ष्मी उसकी सर्वप्रिय आज्ञानुवर्तिनी सुकन्या है और प्रतिष्ठा है उसकी ज्येष्ठा तनुजा।

आज परिस्थितियो ने सत्य पर प्राणघातक हमला कर दिया है। सत्य, सत्य ही रहेगा। उस पर असत्य की छाव भले ही पडे पर उसे झुठलाया नही जा सकता। कोहरा चाहे जितने बडे समारोह के साथ प्रकाश को ढँक भी दे फिर भी कोहरा-कोहरा ही रहेगा। असत्य साबित हो जाएगा। ध्रुव सत्य का सूर्य तो अपनी प्रखर प्रभा-पुज से सदा चमकता रहेगा। क्या रवि-रश्मियो को किसी बाह्य स्पर्श से मलिन करना सभव है? श्रेष्ठ तो यही होगा कि समय रहते इसान सुबह की तरह सच्चाई की श्वास लेने लगे तो वह अज्ञान अधेरे के घेरे से निकलकर ज्ञान के विशाल उजाले के प्रभामडल मे आ जाएगा।

मनुष्य ने जीवन के हर क्रिया-कलाप मे दोहरी नीतिया अपना ली हैं। सत्य जो सर्वोत्तम नीति थी, उसे छोड कथनी और करनी मे वैसे ही भेद रेखाए खीच ली है, जैसे दो समानान्तर रेखाए कितनी ही लबी क्यो न बढती जाए परन्तु आपस मे कभी नही मिलती। मेरे समक्ष इन **ज्वलत प्रश्नो का पिशाच खडा है कि क्या कथन और आचरण कभी आपस मे मिलेगे या नही?**

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे चितनधारा ही पलट गई है। सम्यक विचारो

की नौका पता नही किस तूफानी समुद्र मे विलीन हो गई है। "**मन मैला तन उजला**" की सभ्यता दिल दिमाग पर शैतानी प्रेत की तरह अपना प्रभुत्व जमा रही है। सारे सिद्धात, सारे आदर्श उलट - पलट कर दिए है। सतोषप्रिय को प्रमादी और निकम्मा, सरल और ईमानदार को मूर्ख तथा पिछडेपन का प्रमाण पत्र दिया जा रहा है। जितना आडम्बरी, कुटिल और चालाक होता है, समाज मे उतना प्रतिष्ठित माना जाता है, विद्वान की उपाधि दी जाती है। चापलूस को योग्य लोगो की परिगणना मे गिना जा रहा हैं, जो जितना अधिक बकवादी होगा वह उतना ही श्रेष्ठ वाचस्पति, वक्ता, भाषण - केशरी, ज्ञानी कहलाएगा। किन्तु लोग यह नही जानते कि सत्य के आधार बिना झूठ नही चल सकता।

स्थिति का आकलन तो कीजिए ढोगी को नीतिज्ञ, हसी - म जाक करने वाले को शालीन, व्यवहार कुशल और अधिकारो का दुरूपयोग करने वालो को समर्थ समझा जाता है। किन्तु स्मरण रखना झूठ की उम्र अि क लम्बी नही होती। झूठ फानी है, सच अफानी है। सत्य को यदि झूठ की जिल्द से मढ दिया जाए तो इससे न केवल सच्चाई की प्रताडना होगी वरन् वह झूठ एक वजनदार पत्थर की तरह दुगुने वेग से आघात करेगा। कभी - कभी देखकर आश्चर्य होता है कि विख्यात प्रसिद्धि प्राप्त विद्वान भी स्वार्थ - मोह को प्रधानता दे, बुनियादी सुदृढ सत्य को भी फूक से उडाने का विनोदपूर्ण दुस्साहस कर बैठते है। उनका आधा सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होता है।

बधुओ! सत्य को सजाने की आवश्यकता नही है। सजाने से तो उसकी सुन्दरता कम होती है। सत्य तो वस्तु का नग्न रूप है। वह अपने आप मे इतना स्पष्ट और अनावृत है कि उसका यथार्थ रूप जब कभी पहचाना जा सकता है। जगत् मे सत्य से सुदर दूसरी वस्तु नही है। "सत्य शिव सुन्दरम्" का अर्थ यह नही कि वे तीनो अलग - अलग है वरन् इसका अर्थ है सत्य शिव और सुन्दर है। सत्य है जहा, ईश्वर है वहा। सत्य ही शिव, ईश्वर है, तब उस शिव से सुदर और कौन होगा? सत्य बहुत विराट है, उस विराटता को शब्दो मे बाधना एक साहसिक प्रयत्न है। आदमी अनत - आकाश को

बाधकर अपना घर बना लेता है, सूर्य किरणो का केद्रीकरण कर प्रकाश एव आग उत्पन्न कर लेता है। तब हम क्यो न सत्य के आचल को पकड उसका स्पर्श कर उसकी विराटता को जानने की कोशिश करे। क्योंकि सत्य कोई नियम, उपनियम नही अपितु जीवन की मूर्त साधना है। श्रुत और सयम का आस्पद है, विद्या, विनय एव वाणी का आभूषण है, चारित्र तथा ज्ञान का बीज है। सत्य 'शान्ति' से भी अधिक - अनर्घ है। उसे शान्ति की कीमत पर नही बेचा जा सकता, कारण जहाँ सत्य सुरक्षित है, वहा शान्ति स्वय सुरक्षित है। यदि सत्य प्रतिपल हमारे साथ है तो हम कभी आत्म बल नही खो सकते, चूंकि सत्य मे सदाचार का अखण्ड रूप समाया हुआ है। उसमे से कुटिलता नही हृदय की सरलता बोलती है। यह सच्चाई है कि सत्य जीव मात्र की नैसर्गिक प्रकृति है। बालक के जीवन मे सत्य का का सहज अवतरण होता है जबकि बडा होने पर उसे सत्य की शिक्षा देनी पडती।

सत्य वह तथ्य है इसके बिना व्यक्ति अपने प्रति किसी का भी विश्वास उत्पन्न नही कर सकता। सत्य की यात्रा वही कर सकता है जो नई लकीरे खीचने का उद्दाम साहस रखता हो, कारण सत्य के प्रयोगो मे अपनी प्रशसामय महत्वाकाक्षाए स्थान नही पाती है। कुण्ठित चेतना सत्य का साक्षात्कार नही कर सकती। सत्य का पौधा दीखने मे भले ही लघु हो किन्तु उसमे जो सौन्दर्य है वह असत्य के दिखावटी - बनावटी विशाल वट वृक्ष मे भी नही है। सत्य एक निर्धूम अग्नि ज्वाला है जो किसी भी झोके से नही बुझ सकती। बशर्ते वह सत्य मुख और जबान से नही, हृदय और आचरण से निकला हो। सत्य की शोभा आचरण मे है वचन मे नही। अत सत्य का सर्वश्रेष्ठ अभिनदन यही होगा कि हम उसको आचरण मे लाये। सत्य मे सदाचार का अखण्ड रूप समाया हुआ है। जिसने एक सत्य पा लिया वह हजारो - लाखो पण्डित - विद्वानो से भी महान है। जब तक आपके सिर पर कलियुग का भूत सवार रहेगा, तब तक आप सत्य का वास्तविक रूप ग्रहण नही कर सकेगे। इसलिए आप यह सोचकर चले कि अभी सतयुग चल रहा है और हमे सतयुग मे सत्य की साधना रखी है। सत्य काल के आगोश मे नही समाता वह तो कमल की तरह सदा निर्लिप्त रहता है। ■■

जीवन का दीप स्तम्भ - अचौर्य

निहित वा पतित वा सुविस्मृत वा परस्वमविसृष्ट।
न हरित यन्न च दत्ते तदकृश चौर्यादुपारमणम्।।

किसी की निहित, रखी हुई, पडी हुई अथवा अतिशय रूप से विस्मृत जिसकी उसे किसी प्रकार की तनिक सी भी स्मृति न हो ऐसी वस्तु का अग्रहण अचौर्य है। अविसृष्ट यानि अदत्त किसी के धन को न स्वय लेना, न ही अन्य किसी को देना। यह अचौर्य महाव्रत नही, वह तो न कृश इति अकृश अर्थात स्थूल चोरी का परित्याग रूप अचौर्याणुव्रत है। इन्ही वस्तुओ का कृश - अकृश, स्थूल, सूक्ष्म त्याग कहलाता है अचौर्य महाव्रत।

चोरी का आध्यात्मिक अर्थ है जो अपना नही उसे अपना घोषित करना। हर व्यक्ति जीवन भर अचौर्यव्रती भले बना रहे, कभी किसी की चोरी न करे, फिर भी वस्तुओ को जो उसकी अपनी नही है उसे अपना अवश्य घोषित करता है। श्रीमद् भागवत गीता मे कहा है -

भ्रियते यावज्जठर, तावस्वत्व हि देहिना,
अधिकोयोभि मन्येत, स स्तेनो दण्डमर्हति।।

जितना पेट भरने के लिए आवश्यक है वही व्यक्ति का अपना है और उसे उतना ही सग्रह करने का अधिकार है, जो इससे अधिक सग्रह करता है वह चोर है। दण्ड भाक् है।

ईश्वरवादी कहते है। ईश्वर ने मनुष्य को मेहनत करके खाने के लिए बनाया है और जो मेहनत किए बगैर खाता है वह चोर है ।

हिसा का एक आयाम है परिग्रह कारण इसे सचयन करने के लिए हिसक बनना प्रथम शर्त है। सब जानते है हिसक हुए बिना परिग्रही होना वैसा ही असभव है, जैसा काजल की कोठी से बेदाग लौटना। अब तय ये कीजिए आखिर अचौर्य का गल भजन कर चोरी कब और क्यो जन्म ले लेती है ? तब आप सीधा साफ उत्तर पायेगे जब आपकी परिग्रह व्यवस्था विक्षिप्त हो जाती है, तब जन्मती है आपके हृदय तल पर चोरी की भूमिका।

सक्षिप्त मे कह दू तो परिग्रह - विक्षिप्तता ही चोरी है क्योंकि अचौर्य है अपरिग्रह का स्वस्थ शरीर। यदि आपका परिग्रह स्वस्थ होगा तो धीरे - धीरे आप मे अपरिग्रह जन्म ले सकता है। परिग्रह सकलन मे केवल दो ही रूप जन्म लेते है। स्वस्थ परिग्रह शनै शनै दान मे परिवर्तित होने लगता है और अस्वस्थ परिग्रह चोरी के रूप मे। हा - हा चौकिए मत। आपको एक प्रसग से परिचय करा दू ताकि आप भली भाति समझ जायेगे कि परिग्रह से चोर कैसे जन्मता है।

चीन मे एक विचित्र किन्तु सम्यक विचारो का समर्थक विचारक हुआ। एक बार उसे राज्य का कानून मत्री बनाया गया। कानून मत्री होते ही पहले दिन अदालत की कुर्सी पर बैठा। इत्तफाक चोरी का एक मुकदमा आया। एक आदमी ने चोरी की थी। चोरी के माल सहित चोर पकडा गया। उसे प्रस्तुत किया उसने स्वीकार भी कर लिया हा मैने चोरी की है। उस विचारक ने चोर की बात को बडे ध्यान से सुना और कहा जरूर दण्ड दूगा। फैसला हुआ निर्णय लिखा गया। चोर और साहूकार दोनो को छह - छह माह की सजा। इतना सुनना था कि सबके दातो तले अगुली आ गई। ऐसा न्याय, ऐसा फैसला कभी किसी ने नही सुना था। साहूकार बोला - मत्रीजी, आपका दिमाग सही है ? आप कही पागल तो नही हो गए, आपने तो दुनिया का रिकार्ड ही तोडकर रख दिया। क्या कभी साहूकार को दण्ड मिला है ? विचारक ने कहा- नही मिला इसीलिए तो ये नौबते दिन - प्रतिदिन बढती चली जा रही है। जब तक सिर्फ चोरो को सजा मिलती रहेगी, तब तक दुनिया मे कभी चोरी बन्द नही होगी। तुमने गाव की सारी सम्पत्ति एक कोने मे इकट्ठी कर ली है। अब गाव मे चोरी नही होगी तो क्या होगा ? आदमी कितने दिन तक चुप रह सकेगे। चोरी नही वह उनकी मजबूरी होगी। मै दोनो को दण्ड दूगा क्योंकि चोर पीछे पैदा हुए है, शोषण पहले। 'शोषण' ही चौर्य कर्म और चोर का जनक है।

पूरा हिन्दुस्तान चोर होता जा रहा है और सारे नेता गला फाड - फाडकर चिल्लाते हैं, चोरी नही होनी चाहिए, भ्रष्टाचार नही पनपना चाहिए, यह तो वैसा ही असभव है जैसे सारे फटे आकाश मे थिगडा लगाना। भ्रष्टाचार

बढेगा, चोरिया होगी, बेइमानिया पनपेगी, क्योकि चोरी आदि का सबसे बड़ा मूल स्रोत शोषण और बेइमानी जारी है। क्या कभी ऐसा हुआ है कि सब ओर से आगमन के स्रोत खुले हो और पानी का टेक पानी से न भरे, जबकि पानी न रिसने की भी बडी सावधानी रखी गई हो। आज सारा वातावरण परिवर्तित हो गया है। यहा सब ओर नकली मिलावट ही मिलावट नजर आ रही है। किसी को भी दूसरे को धोखा देने का डर नही है। धोखे की कुरूपता गदगी और उसकी दुर्गन्ध का कोढ चारो तरफ दिखाई दे रहा है।

सारा वातास रूग्ण एव आग लगा हुआ सा ज्ञात हो रहा है। किसी के वस्त्र मे आग लग जाये तो तुरन्त उसी क्षण उतार फेकेगा। फेकने के लिए पल दो पल तो क्या एक मिनिट भी विचार नही करता कि कपडे नए है सुन्दर है। इन्हे कल उतारकर फेक दूगा, आज नही। जैसे शरीर सुरक्षा हेतु एक पल का विलम्ब बर्दाश्त नही, वैसे ही अपने धर्म, जाति, समाज, देश की सुरक्षा के लिए अपने विचारो को सुधारने मे विलम्ब क्यो? विचारो की कलुषता, अस्वस्थता एव विचारो की निर्मलता, स्वस्थता ही हमे कर्म बधन मे डालती है और उससे मुक्ति भी दिलाती है। सर्वत्र रिश्वत चल सकती है, चलती भी है पर कर्म सिद्धान किसी की रिश्वत स्वीकार नही करता।

एक स्थान पर एक घडी रखी है। एक व्यक्ति ने मन ही मन सोचा कितनी सुन्दर है। मन होता है इसे ले चलू। बस इतना सा भाव उसके अचौर्य धर्म को समाप्त कर देता है, जो आपकी पकड के बाहर है। यदि वह वचन प्रणाली का आश्रय ले यह कर दे भाई साहब! यह घडी कितनी सुन्दर है कब खरीदी थी? सपोज यदि उसे कोई और उठा ले जाए तब आप सोच सकते है, हो न हो कही ऐसा तो नही अमुक व्यक्ति उसकी प्रशसा कर रहा था वही तो नही ले भागा। आपकी दृष्टि मे वह चोर हो गया, हो सकता इस विषय मे आप उससे चर्चा भी करे। मन की चोरी सूक्ष्म थी। उसे किसी ने नही पकडा था, कर्म सिद्धात के अतिरिक्त। वाचनिक चोरी स्थूल चोरी थी क्योकि किसी की निगाह मे वह कदाचित् चोर, अपराधी सिद्ध हो चुका थी। भले ही प्रमाणाभाव मे हो सकता आप उसे दण्डित न कर सके, किन्तु जैसे ही आप कायिक चेष्टा देखते हैं कोई व्यक्ति ललचाई आखो से बार-बार

कनखियो से घडी की तरफ देख रहा हो तो आप उसे टोक सकते है "प्लीज डोन्ट लुक" वह झेप जाता है, क्योंकि उसने स्थूलतर चोरी की है। इससे एक कदम आगे बढकर कोई व्यक्ति घडी को टच कर लेता है, उठाकर छुपा लेता है तो आप उसे झट पकड लेते है, जैसे अग्नि को टच करते ही आग उसे जला देती है। विष को चखिए आपको मार देगा, तलवार की धार को टच कीजिए आपके हाथ को रक्त रजित कर देगी। वैसे ही ललचाई आखो से देखकर वस्तु को उठा लीजिए कि आप कानून कि दृष्टि से अपराधी सिद्ध हो जायेगे, सामाजिक, राजनैतिक दण्ड दिया जायेगा। यह है स्थूलतम चोरी का रूप। स्थूल, स्थूलतर, स्थूलतम चोरी चोर को दण्डित कर भी सकती है और रिश्वत लेकर छोड भी सकती है। चोर अपने आपको सबकी आखो मे धूल झौक, धोखा दे, अपने को साहूकार भी सिद्ध कर सकता है, किन्तु जो मन के माध्यम से सूक्ष्म चोरी हुई है उससे न आप बच सकते है न अन्य कोई भी व्यक्ति, जिसने चोरी का भाव पैदा किया है, क्योंकि कर्म सिद्धात सबसे बडा सूक्ष्म थर्मामीटर है। जो आपके भावानुसार आपको अचौर्यव्रती नही चोर धर्मी कहेगा। *जैन दर्शन का अचौर्य बडे ऊचे दर्जे का हे। उमा स्वामीजी तत्वार्थ सूत्र मे कहते है।।*

"शून्यागारविमोचितावास परोपरोधाकरणभैक्ष्य शुद्धि सद्धर्माविस वादा पच "। यदि अपने अचौर्य धर्म को सुरक्षित, निर्मल रखना चाहते हो तो शून्य आगारो मे अथवा किसी के द्वारा त्यक्त आवासो मे निवास कीजिए। कोई व्यक्ति, जीव जन्तु किसी स्थान पर बैठ गया हो तो उसे उस स्थान से मत उठाइए क्योंकि परोपरोधाकरण अचौर्य धर्म मे अतिचार लगाता है। भिक्षा शुद्धिपूर्वक भोजन कीजिए और वह भी अनीहित वृत्ति से क्योंकि "पेट भरे उतना ही तुम्हारा" है इससे अधिक नही। सहधर्मियो के साथ विसवाद करना चोरी के अन्तर्गत आता है, क्योंकि किसी से बलात् उसकी इच्छा के विरूद्ध अपनी बात मनवाना विचारो की चोरी है। इसलिए इन पाचो को अचौर्य का सुरक्षा कवच कहा है।

चोरी करना तो चोरी है ही, किन्तु दूसरो को चोरी के लिए प्रेरित करना, चोरी के उपाय बतलाना, चोरी का माल खरीदना, वस्तु क्रय - विक्रय के लिए

अधिक या कम तौल के मान - उन्मान रखना, राज्य के विरूद्ध अतिक्रमण करना अर्थात टैक्स चोरी, इन्कम टेक्स, सेलटेक्स, बिना टिकिट यात्रा, नाका कर आदि का भुगतान नही करना भी चोरी है। जैन दर्शन मे, देश की सुरक्षा के कितने सुन्दर, विराट सूत्र है जो अर्थ व्यवस्था की नीतिया अपने गर्भ मे सभाले रखे है। प्रतिरूपक व्यवहार अर्थात जिसकी जाति, वर्ण समान है उनमे उसे मिला देना। कम कीमत की वस्तु को मूल्यवान वस्तु मे मिलकर बेचना जैसे - दूध मे पानी, घी - तेल मे चर्बी, मेडिसनो मे समान बेअसरकारी केमिकल्स मिला देना। पता नही क्या - क्या मिक्शर का जमाना आ गया है। बच्चे भी आज मिक्शर, कलमी पैदा होने लगे।

हमारा देश हमारा धर्म जिन आदर्श - स्तम्भो को आधार बनाकर टिका है। उन आदर्शों को दीप स्तम्भ बनाकर उसकी रोशनी मे चले तो इन्सान सच्चे अर्थों मे इन्सान बन सकेगा। देश का समूचा ढाचा ही बदल जायेगा। चूंकि जैन दर्शन मात्र दर्शन नही, विचार नही, किन्तु आचरण प्रधान दर्शन है और जब आचरण से कोई विचार आता है तब उसकी सुगन्ध कुछ नया ही आकार लिए होती है, क्योंकि आचरण आत्मा से आता है विचार से नही। विचार को आचरण मे ढालना मुश्किल पडता है। हा यह बात अलग है कि बुरा विचार आचरण का स्थान अतिशीघ्र ले लेता है। यदि कोई अपने बुरे विचारो को मूल्य दे तो उसे कौन समझा सकता है। छोटी सी बालिका के नाक, कान छिदवाने मे उसे बडी तकलीफ उठानी पडती है, किन्तु स्वर्ण के आभूषणो की आकाक्षा उसे सहर्ष तैयार कर देती है। हम अपने चोर विचारो को जो घुस पैठिए की तरह हमारे भीतर बैठे है उन्हे निकालने की सशक्त कोशिश करे। दूसरे पर थोपने की चेष्टा न करे अन्यथा चोरी जारी रहेगी। अचौर्य आपको उपलब्ध न हो सकेगा। चोरी उपार्जित धन की अपेक्षा दीर्घ - काल तक दरिद्र रहना श्रेयस्कर है। चूंकि मे बिष सहिन दूध पीने की अपेक्षा मै छाछ पीना श्रेष्ठ समझता हूॅ। चोर कर्म द्वारा शान्ति की कल्पना व्यर्थ है। फूल मे काटा, दीपक मे धुआ, विद्या मे उच्छृखलता, चाद मे कलक, सत्ता मे अहकार, रूप मे अभिमान जब अखरता है, तब धन सग्रह मे चोरी जैसा जघन्य और निकृष्ट कार्य क्यो नही अखरता जरा विचार करो। ■■

जीवन का वास्तविक आनद ब्रह्मचर्य

मन्दिर के शिखर पर चढे हुए कलश की भाति ब्रह्मचर्य मानव की अन्तिम ऊँचाई है, जिसका अर्थ है समस्त इद्रियो पर पूर्ण नियत्रण। मन, वचन कायिक लोलुपता से पूर्णत मुक्ति।

दूसरा है स्वदार सतोष रूप ब्रह्मचर्य यानि पाप के भय से पर-स्त्रियो के प्रति न स्वय आचरण करना, न ही दूसरो को गमन कराना। इस महान व्रत की रक्षा से मनुष्य, स्त्री के लिए प्रिय, सुदर शरीर का धारक, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वीर्य और सुख का अद्वितीय सागर तथा मुक्ति रूपी वधु के मुख के लिए रत्नमय दर्पण स्वरूप होता है। लोक मे राजा इसी ब्रह्मचर्य के तेज से प्रजा की रक्षा करता है।

आचार्य अकलक देव ने कहा है ब्रह्मचर्य मानव की स्वच्छद वृत्तियो पर अकुश है। जहा यह है वहा जीवन है, निरकुश व्यक्ति का विकास 'खरविषाण-वत्' है।

आचार्य पूज्यपाद ने व्रत की हिफाजत के लिए कहा है कि विषय राग बढाने वाली स्त्रियो की कथा श्रवण से बचे, उनके मनोहर अगो का अवलोकन छोडे, पूर्व मे भोगे हुए भोगो को स्मृति पटल से उतार फेके, गरिष्ठ और कामोत्तेजक पदार्थों का परित्याग करे तथा श्रृगार से मुक्ति ले। और जमाने की हरेक नारी से मा, बहिन, बेटी की तरह व्यवहार करे तो निश्चित ही आत्म हित, शील, स्वभाव की बात होगी। यह शील मनुष्य ही नही जीव मात्र का स्वभाव है। इसे पालन करने के लिए सारी पृथ्वी एव नभमण्डल जीव स्वतत्र है।

सुनिए, बारह मार्च 1931 मौण्टगुमरी जेल की बात है। प्रसग है एक पतिव्रता चिडिया का। अयोध्या प्रसाद गोयलीय का आखो देखा चित्रण। अनुमानत प्रात आठ बजे होगे कि एक चिडिया से एक चिडा अकस्मात् लडता हुआ देखा गया। चिडा उससे बलात्कार करना चाहता था, किन्तु चिडिया जान पर खेलकर अपने को बचा रही थी। सफल मनोरथ न होने के कारण क्रोधावेश मे चिडा ने चिडिया की गर्दन झकझोर डाली, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड गए। मरने पर चिडिया ऊची दीवार से जमीन पर आ गिरी। एक-दो

मिनट मे ही एक और चिडा वहा आया और जमीन पर पडी चिडिया को बडी आतुरता और बेकरारी के साथ सूघने लगा। वह हटाये से भी नही हटता था। उसकी वह तडप कठोर हृदयो को भी तडपा देने वाली थी। मालूम होता था कि यह चिडा ही उस चिडिया का वास्तविक पति था, क्योकि वह इतना शोकाकुल था कि उसे सामने उपस्थित जनसमूह का तनिक भी भय नही था। थोडी देर मे जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट और जेलर साहब भी वहा तशरीफ ले आए। उन्होने सुना तो उनके नेत्र भी सजल हो गए। मरी हुई चिडिया को देख-देखकर चिडा कही प्राण न दे बैठे, इस ख्याल से चिडिया को उठाकर उसकी नजरो से ओझल कर दिया गया। यह दृश्य दूसरा कामातुर घातक चिडा दीवार पर बैठा भयभीत हुआ सा देख रहा था, किन्तु मरी हुई चिडिया के पास आने की हिम्मत न कर सका। धन्य है भारतीय सस्कृति मे जन्मी चिडिया का जीवन जो मरकर भी अमर हो गई।

दूसरी तरफ देश मे फैल रही पाशविक वृत्ति, महिलाओ के प्रति अत्याचार के सबध मे गृह राज्यमत्री श्री एम.एम जैकब द्वारा दिए गए आकडो को देखकर मध्यप्रदेशवासियो का सिर शर्म से झुक जाना चाहिए। पिछले तीन वर्षो के आकडो के अनुसार महिलाओ पर होने वाले अत्याचारो के मामले मे मध्यप्रदेश का स्थान तीन वर्षो से लगातार सबसे ऊपर रहा है। उसके बाद उत्तरप्रदेश व महाराष्ट्र का नम्बर रहा है। स्मरणीय है कि आदिवासी व हरिजनो पर अत्याचारो के सबध मे भी मध्यप्रदेश ने सबसे ऊपर रहकर अपनी स्थिति बनाए रखी। वर्ष 1990 मे मध्यप्रदेश मे महिलाओ के प्रति अत्याचार की कुल 11939 घटनाए दर्ज हुई थी, जो 1991 मे बढकर 13174 हो गई और जनवरी से जुलाई 92 के दौरान यह सख्या 7991 थी।

एक दुखद तथ्य यह है कि मध्यप्रदेश की घटनाए तेजी के साथ बढ रही है और अन्य राज्यो की जनसख्या के अनुपात मे यह चिताजनक है। वर्ष 90 मे मध्यप्रदेश मे 2302 बलात्कार की घटनाए दर्ज हुई थी, जो वर्ष 91 मे बढकर 2532 हो गई। जनवरी से जुलाई 92 की अवधि मे यह सख्या 1657 थी। वर्ष 91 मे मध्यप्रदेश दूसरे स्थान पर रहा, जहा बलात्कार की 1400 घटनाए दर्ज की गई।

बडा खेद होता है इन घटनाओ को पढ सुनकर। ये घटनाए एक ऐसे पवित्र देश मे हो रही है, जहा चिडिया जैसी पतिव्रता पक्षिणी हुई और रामकृष्ण परमहम जैसे विवेकी महापुरूष इस धरती की धूल को पावन कर गए। उनके जीवनवृत्त का एक प्रसग है। उनका विवाह सबध अल्पायु मे ही हो गया था। उनकी भावी पत्नी कन्या अवयस्क थी। दोनो का शास्त्रोक्त विधि से विवाह सम्पन्न हुआ। वर पक्ष अपने घर लौट आए। वधू अपने पीहर मे ही रही। कुछ समय पश्चात रामकृष्ण परमहस विदेश गए। उनकी पत्नि शारदा अपनी मा और पति की आज्ञा पर चारो - धाम की यात्रा हेतु निकल गई। आठ वर्ष के बाद लौटकर वे अपने पति रामकृष्ण परमहस के सम्मुख आई, उन्हे प्रणाम किया और चुपचाप उनकी ओर निहारने लगी। परमहसजी बोले - देवी! मुझे क्षमा करना, मै नारी मात्र को मा - बहिन की दृष्टि मे देखता हू। फिर भी यदि तुम कहो तो तुम्हारे सुख हेतु गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करू, परन्तु मेरी इच्छा नही है। शारदा उनके चरणो मे गिर पडी, बोली - हे देव! मै इतना बडा पाप नही कर सकती हू। जिस ओर से आपने वैराग्य ले लिया है उसी काटो भरी राह मे, दु ख भरे गृहस्थ मार्ग मे मै आपको नही घसीटना चाहती। मेरी एकमात्र प्रार्थना है कि ससार से वैराग्य की दीक्षा देकर गुरूत्व के गुरूतर भार से मुझे अनुगृहीत कीजिए। रामकृष्ण परमहस ने शारदा को दीक्षित कर शिष्य के रूप मे जीवन - यात्रा मे सहगामिनी बना लिया। धन्य है उनका जीवन जहा यथोचित कानूनानुकूल, धर्मानुकूल वैवाहिक सबध हो जाने पर भी अपने देह और आत्मा को विकार कालिमा से सदा - सदा के लिए अछूता रखा। भर यौवन मे जिन्होने एक - दूसरे को गुरू - शिष्य जैसे पवित्र नेत्रो से देखा। उसी भारत की आज यह शर्मनाक स्थिति। यह आर्य सस्कृति पर असुर सस्कृति का आक्रमण नही तो और क्या है?

स्वदार - सतोष ब्रह्मचर्य की सीमा रखने वाला गृहस्थ भी ब्रह्मचारी माना गया है, किन्तु स्वदार के अतिरिक्त अन्य मे कामुक सबध रखना ब्रह्मचर्य की मर्यादा के विपरीत है। भारतीय सभ्यता की आचार सहिता के अनुसार पाप कर्म है, निषिद्ध कर्म है और है सामाजिक दृष्टि से असामाजिक कुकृत्य। शारीरिक दृष्टि से भी स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद कर्म है।

महर्षि चरक ने संहिता मे उल्लेख किया है- 'ब्रह्मचर्यमायुष्कराणा श्रेष्ठम्' ब्रह्मचर्य को आयु वृद्धि करने वाले तत्वो मे श्रेष्ठतम कहा है।

अष्टाग हृदय सूत्र मे भी इसी बात पर प्रकाश डाला गया है।

'स्मृति मेधायुरारोग्य, पुष्टीन्द्रिय यशोबलै ।
अधिकामन्द जरसो, भवन्ति स्त्रीषु सयता ।।'

स्त्री ससर्ग के विषय मे सयमी रहने वाले पुरूष की स्मरण शक्ति, मेधा, आयु, आरोग्यता, पुष्टि, इंद्रिय शक्ति, शुक्र, कीर्ति और शक्ति सभी बढी हुई रहती है तथा उनको बुढापा भी देर से आता है। ब्रह्मचर्य और स्मरणशक्ति का बहुत निकट का सबध है, यदि इन्हे जुडवा भ्राता-भगिनि कहा जाए तो अन्योक्ति नही होगी। प्राय लोगो के मुख से सुनने मे आता है कि आयु वृद्धि के साथ-साथ स्मरण शक्ति क्षीण होती जाती है, परन्तु ब्रह्मचर्य के साथ की गई विद्याराधना आयु की वृद्धि के साथ क्षीण न होते हुए अंतिमावस्था तक एक-सी पाई गई है। स्वामी विवेकानद जैसे महापुरूष इसकी मिसाल है।

एक बार स्वामी विवेकानदजी के समक्ष पुस्तकालय के लिए 'ब्रिटेनिका विश्व कोष' खरीदने का भी प्रश्न आया। उस समय वे सयोग से बीमारी का आतिथ्य स्वीकार कर रहे थे। उपचार के समाधान मे मन पुष्ट किन्तु शरीर दुर्बल हो गया था। पुस्तके खरीदी गई, उन्होने उसी स्थिति मे उनका अवलोकन प्रारभ कर दिया। कुछ समय पश्चात एक सज्जन स्वामीजी के पास आए। स्वामीजी के सम्मुख बहुत-सी सुदर-सुदर पुस्तको का ढेर देखा तो, व्यगात्मक भाषा के लहजे मे बोले- स्वामीजी, जीवन मे इतनी पुस्तके पढ लेना तो दुष्कर है। पूछने को तो उसने पूछ लिया। इस बात का अनुमान लगा लेना कि जिन पुस्तको के सबध मे वे पूछ रहे है, उनका वे अध्ययन कर चुके है, इसकी कल्पना उसकी अल्पबुद्धि से परे थी। वैसे ही जैसे कूप मण्डूक को विशाल सागर की कल्पना करना बुद्धि से बाहर होती है।

स्वामीजी ने सज्जन की बात सुनी और धैर्य से मुस्कुराते हुए बोले- आप यहा रखी प्रत्येक पुस्तक से जहा से चाहे प्रश्न पूछ सकते है। वह खोखली हसी हसता हुआ बोला ठीक है। महाशय ने एक-एक कई पुस्तको से

सबंधित प्रश्न किए। स्वामीजी ने प्रत्येक प्रश्न का सटीक उत्तर दिया। यहा तक कि उस ग्रन्थ की भाषा एव लिपि भी सुना दी। वह व्यक्ति इतनी विशाल स्मरण शक्ति देखकर आश्चर्य मे पड गया। स्वामीजी बोले - महानुभाव! आश्चर्यचकित क्यो होते हो? शायद आप राज जानना चाहते हैं? तो जानिए! 'केवल एक ब्रह्मचर्य पालन करने से ही सर्व विद्याए स्मरण हो जाती है।' ब्रह्मचर्य जैसेउदात्त, अनुशासन पर्व की अवहेलना के परिणाम - स्वरूप देश समस्याओ से जूझ रहा है।

विचारो का पतन ही देश के पतन की अह भूमिका है, क्योंकि जो व्यक्ति जिसके अग नही ऐसे अनग को नही जीत सकता वह देश की समस्या का समाधान क्या करेगा? देश के अगभूत पजाब, आसाम, कश्मीर आदि - आदि भयावह ज्वलत समस्याओ का निदान क्या निकालेगा? ऐसा नाकाम, कायर प्रकृति - पुरूष अज्ञात, अविद्या, राग, द्वेष मद, इद्रिय चपलता, स्वार्थवृत्ति आदि - आदि भीतरी समस्याओ से कैसे उभर सकेगा? जिनके पीछे वह पागल हो रहा है यह उसकी नासमझी है। जब इद्रिया अपना समाधान नही ढूढ सकी तब वे तेरा समाधान क्या ढूढेगी? अतएव स्वय के समाधान के लिए आत्मिक शक्तियो को बलवान् बनाना नितात आवश्यक है और उसके लिए पूरक है - ब्रह्मचर्य ज्ञान मनोबल। जिस प्रकार सयुक्त मत्र - बल से विषधर वश मे किए जाते है उसी प्रकार ज्ञान भावना से नित्य अभ्यासपूर्वक मन रूपी हस्ती को वश मे किया जा सकता है। तभी ब्रह्मचर्य जीवन प्राप्त होगा, क्योंकि ब्रह्मचर्य जीवन परम पुरुषार्थ मय जीवन है। परमात्मा के राज्य मे प्रिय बनने का एव जीवन का वास्तविक आनद उठाने का राज है। ब्रह्मचर्य अन्तर्ज्योति है, जीवन का सौन्दर्य है। 'सर्वव्रतशिरोरत्न ब्रह्मचर्यमुदीरित, ब्रह्मचर्य को सभी व्रतो का चूडामणि रत्न कहा है। ब्रह्मचर्य अहिसा के प्रासाद का सिहद्वार है। स्वस्थ जीवन और दीर्घ जीविता के लिए ब्रह्मचर्य सजीवन है क्योंकि ब्रह्म के रस से जीवन मे ओज और तेज बना रहता है। जिस समाज मे जितने अधिक ब्रह्मचारी होगे वह समाज उतना ही स्वस्थ्य, ऊचा और गौरवान्वित होगा। ब्रह्मचारी मरकर भी अमर है और कामुक जीकर भी मुर्दा है, इसलिए ब्रह्मचर्य जीवन है, अब्रह्म ही मृत्यु है। ■■

मुक्ति का हिमायती - अपरिग्रहवाद

प्रकृति के कुछ विचित्र नियम भी हुआ करते है। जिस केद्र बिन्दु से यात्रा प्रारभ होती है कभी - कभी वही आकर यात्रा की पूर्णता, अतिम विश्राम होता है या यू कहिए करना पडता है। पचशील की यात्रा अहिसा से प्रारभ होकर एक ऐसे धरातल पर आकर ठिठक गई है, जो स्वय अहिसा का धरातल है। अहिसा की बैक बोन है - अपरिग्रहवाद के क्षेत्र मे मनुष्य ऊपरी बहुत ऊपरी सतह पर खडा है। वह कुछ समय धर्म के स्वर आलाप लेता है और शेष जीवन की रेल को शोषण की पटरियो पर बेधडक दौडा देता है। अपरिग्रह को समझने के लिए उसके दूसरे पहलू को समझना होगा, जिससे हम अपरिचित है। अथवा समझकर भी अनजाने बने हुए है।

परिग्रह का अर्थ

वस्तुओ पर मालकियत, पजेसिवनेस, स्वामित्व की आकाक्षा। जिसे आचार्य उमास्वामी ने मूर्च्छा, आसक्ति, परिग्रह कहा है। अब देखना होगा कि आपके पास कितनी वस्तुए है, एव वस्तुओ से किस दृष्टि से व्यवहार करते है, किस भाति आप उनसे सबधित है। यह सब नजरिए पर निर्भर है। आज आदमी वस्तुओ के ही नही बल्कि व्यक्तियो के भी पजेसिव होते है, जो पजेसिव होते है वे हिसक है चूंकि हिसा बिना परिग्रह के नही होती। हिसा कई रूप मे अवतरित होती है। जैसे परिग्रह के सरक्षण-सवर्धन से, असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प एव वाणिज्य से दूसरे नम्बर पर वे हिसाए आती है जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु या व्यक्ति पर मालकियत की घोषणा करता है, तब वह उसी क्षण गहरी हिसा मे उतर जाता है, क्योकि दूसरे का हनन, अनाधिकार चेष्टा हिसा है। 'प्रमत्तयोगात्प्राण व्यपरोपण हिसा - यह हिसा का स्थूलतम रूप है।

ईसाई सत पीटर का वाक्य है

'परिग्रह हमारी दृष्टि मे पाप रूप है।' जिस किसी भी प्रकार से जितना भी परिग्रह का पिण्ड छूटे उतना ही पाप का बोझ हल्का होगा। याद रखिए।

अणु मात्र परिग्रह से मोह की गाठ दृढ होती है। उससे धैर्य का विप्लव करने वाली परिग्रह की अधिष्ठात्री तृष्णादेवी पुरिपुष्ट हो कामपुत्र को जन्म देती है और काम, क्रोध को। क्रोध, हिसा नामक कन्या का जनक है। हिसा का तनुज, अशुभपाप अपनी जननी के अक मे सदा किलकारिया मारता रहता है।

जब जननी स्नेह से पाप की देह सघन भूत (पक्ष मे) मजबूत हो जाती है, तब वह नरकगति से अपना सबध स्थापित कर वचनागोचर दु ख की सततियो को जन्म देता है। इस प्रकार परिग्रह का विशाल परिवार प्राणी मात्र पर अपने साम्राज्यी पजे फैलाये हुए है, तृष्णालु की लचीली आखे या तो सतोष से भर सकती है, या कब्र कि मिट्टी से, धन दौलत से नही। आचार्यश्री विद्यासागरजी सुनीति शतक मे कहते है-

'परिग्रहो विग्रह मूल हेतु , परिग्रहो विग्रह भाव धाता।
परिग्रहो विग्रह राजमार्ग , परिग्रहोऽनेन विमुच्यते स ।।

यह परिग्रह प्रत्येक जिदगी मे नूतन देह का कारण है। बैर, कलह का जनक है। चतुर्गति मे प्रवेश पाने का राजमार्ग है। इस पर शनि देवता का विचरण होता है, जो इस परिग्रह को छोडते है, वे आत्मार्थी ही आत्मसाधना कर सकते है, परिग्रहवान् नही। परिग्रह रूप पक मे निमग्न होकर जो मुक्ति की चेष्टा करता है वह मूर्ख फूल के बाणो से सुमेरू को भेदना चाहता है। क्या कभी एक वृषभ दो बैलगाडियो मे एक साथ जुत सकता है? क्या परिग्रह की सकीर्ण गली एव मोक्ष के राजमार्ग पर एक साथ विचरण किया जा सकता है? गणितीय तरीको से उत्तर लाने पर उत्तर ऋणात्मक ही आयेगा। फिर भी अपने आपको ज्ञानी मानने वाले पुरूष परिग्रह - वस्तुओ मे सुख बतलाते है, तो वे विष मिश्रित दुग्ध पान को दीर्घकाल तक जीवित रहने का कारण क्यो नही कहते?

मैं ऐसे प्रतिपक्षियो के समक्ष घोषणा करता हू यदि मनुष्य के पास परिग्रह नही होता तो निश्चय से दु ख का अश भी उसके पास नही फटक पाता परन्तु खेद है तीन लोक का अधिपति वस्तुओ का गुलाम बन उसकी दासता की बेडियो से बाहर नही आ रहा है। दुनियादारी मे फसा व्यक्ति वस्तुओ पर

ही नही व्यक्तियो पर भी मालकियत जना रहा है। पति मालिक है पत्नी का, सेठ मालिक है नौकर का, पिता मालिक है पुत्र का, गुरू मालिक है शिष्य का। और मालिक शब्द का अर्थ है-स्वामी अर्थात्, स्वामित्व की आकाक्षा। जहा स्वामित्व है, वही तो है मालकियत। वही तो पनपता है परिग्रह। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इन सबको सचित्त परिग्रह की कोटि मे रखा है। 'परित गृहणाति आत्मानमिति परिग्रह' जो आत्मा को सब ओर से जकड ले वह है परिग्रह।

एकदा एक बदर कूद-फाद, उछल-कूद करता हुआ विपिन मे उस जगह पहुच गया, जहा एक घडा रखा था। उसे देख बदर बहुत खुश हुआ। वह घडे के पास गया। देखा घडे मे चने रखे है। बदर तो था, अपनी स्वाभाविक चपलता के कारण घडे मे हाथ डाला और मुट्ठी भर चने निकालने लगा। मुट्ठी घडे के मुख मे फस गई। वह घबराया, चिल्लाया। कुटुम्बियो को आवाज दी। मुझे बचाओ, ब चा ओ। प्राणो की रक्षा की भीख मागने लगा। घडे के अदर बैठे प्रेत ने मुझे पकड लिया है। मेरे परिजनो! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। परिवार के सदस्यो ने जब आर्तनाद सुना तो वे उल्टे पैरो भागे आए। सबने दृश्य देखा। उनमे एक अनुभवी वृद्ध बदर था-बोला बेटे! मुट्ठी खोल दो, हाथ आपो-आप बाहर आ जाएगा। घडे के अदर कुछ नही है। तुम्हे किसी और ने नही पकडा, स्वय तुम अदर चनो को पकड रखे हो। इसलिए हाथ बाहर नही निकल पा रहा है। बदर ने मुट्ठी खोल दी। चणक छूट गए। हाथ बाहर आ गया। वह खुशी से उछल पडा। इसी तरह सिकदर भी वस्तुओ को पकडे था, हिटलर भी और साथ ही साथ आप भी पकडे हुए है, पर मजे की बात ये है कि वे भी जानते थे और आप भी जानते हैं कि मै वस्तुओ का मालिक नही हू फिर भी अटके है वस्तुओ मे। यही है मूर्च्छा जिसे कहते है परिग्रह।

देखा आपने! मालिक और गुलाम मे फर्क। एक गुलामी दृश्य है, दूसरे की गुलामी अदृश्य है, लेकिन ध्यान देने की बात है। हम जिसे गुलाम बनाते है, वह हमे ही गुलाम बना लेता है (दि पजेसर बिकम्स दि पजेस्ड) परिग्रह खोज है, अनुसधान है इसका कि मै अब मालिक कैसे होऊ।

परिग्रह ने जीवन की बुनियादी रीढ ही तोड दी। पैसो मे दीवाना गाजर-मूली की तरह कट रहा है।

अमेरिका का एक प्रसग है। एक महाशयजी अपनी कार मे बैठकर मार्निंग वाक के लिए जा रहे थे। सामने से एक व्यक्ति रिवाल्वर लिए आया। बदूक की नोक गर्दन के ऊपर रखकर बोला- ऐ मिस्टर! दस हजार डालर दीजिए नही तो सिर उडा दिया जाएगा। कार मे बैठा सज्जन बोला- ओ.के मिस्टर! उडा दीजिए सिर। आज देश को सिर की नही डालर की जरूरत है, डालर की। वही रास्ते पर डालर पडा मुस्कुरा उठा। पूछा- क्यो मुस्कुरा रहे हो? तो बोला- देखो जो मुझे देखता है वही उठाने लगता है। इसी का तो ये द्वद चल रहा है आप दोनो के बीच, परन्तु मै हू कि जिसकी जेब मे जाता हर कोई मुझे अपना बनाने की कोशिश करता है। मजा तो यह है कि जिसकी कोशिश मे कसर रह जाती है वह मेरे लिए रो देता है, तडप जाता है, जबकि मै किसी का भी नही होता हू। मेरे पास किसी का लिहाज नही पलता। जो मुझे लेता है उसके पास बेखटके चला जाता हू। सच है धन किसी का नही होता, लेकिन आदमी धन का जरूर हो जाता है और इसी से बढता है मानसिक तनाव, हाइपर टेशन। फैलनी है बीमारिया। आज कीटाणु जन्य बीमारिया कम है, तनाव युक्त बीमारिया अधिक।

पाच-सात मिनट के अदर इन्सान एक माला मे एक सौ आठ दाने बदल लेता है, फेर लेता है। वैसे ही परिग्रह के सरक्षण-सवर्धन मे इन्सान चौबीस घटे मे उनचासो चेहरे बदल लेता है, क्योकि उसका प्रत्येक घटा रूपए की साकल से बधा है। जरा ठहरिए! सोचिए यह कोई अधिक लबी दूरी तक साथ देने वाला मार्ग है? हो सकता है, आप जिन्दगी भर इसी राह पर चलते रहे क्योकि आपकी पीढिया पीढी-दर-पीढी चली आ रही है। किन्तु जब आप चितन के मूड मे होगे तो पायेगे कि ये ढेर के ढेर पडे पदार्थ न मेरे लिए है, न मेरे थे, न हो सकेगे।

मुक्ति के हिमायती को, जिसे महावीर ने पहले ही अहिसा की पीठ पर लिखा दिया था, ऐसे अहिसा के अविभाज्य अग 'अपरिग्रह' का आचरण अनिवार्य है। परिग्रह पगु है। वह जीवन की ऊचाइयो को नही चढ सकता।

क्योंकि तराजू का भरा पलडा निम्नगामी होता है और खाली पलडा उर्ध्वगामी होता है। इसलिए उर्ध्वगामी होने के लिए अपरिग्रह की महत्ता को समझना आवश्यक ही नही अनिवार्य है। अन्यथा उससे अनजान बने रहने पर इन्सान आत्म - बोध की प्रथम सीढी पर ही खडा रह जाएगा।

महावीर ने जिन्हे पचशील के नाम से पुकारा, वे जीवन के दैनिक नियम है। क्या कोई चाहता है युद्ध हो, कलह हो, आगजनी हो, मनुष्य, मनुष्य को मारे, झूठ बोले, विश्वासघात करे, उसका माल छीने - लूटे, चलती राह उसकी बहू - बेटियो को छेडे। कोई मखमली गादियो पर सोए - आलीशान वैभव झाकते महलो मे ऐश करे और कोई फटेहाल फुटपाथो पर खानाबदोशी की तरह दाने - दाने को मोहताज हो ? यदि नही, तो ये है महावीर के पचशील, पचाणुव्रत, पच महाव्रत। स्थिति दयनीय है, हर मजहब के पास अपना मेटाफिजिक्स, अध्यात्म है, लेकिन उस अध्यात्म की रूह मे ये पचशील कैद है। मनुष्य की रूह मे उतर नही पा रहे है और आज केवल जो उतर रहे है वे है विस्फोटक अणुबम, जिन अणुबमो की देश को आवश्यकता नही है। आवश्यकता है - महावीर के पचाणुव्रतो की।

भाग्यवादी भगवान को ही देखने रहते है कि भगवान कब पानी बरसाएगा और हम खेती करेगे। कितु पुरुषार्थी नहरो से सबध जोड वर्ष मे तीन फसले ले निहाल हो जाना है तथा ऊपर देखने वाला आलसी कर्त्तव्य विमूढ हाथ मलना ही रह जाना। लक्ष्मी, उद्योग करने वाले श्रेष्ठ पुरूष को प्राप्त होती है। सो उद्योग करो, दैव - दृष्टि मे रखते हुए। क्योंकि उद्यम युक्त मनुष्य, सुन्दर मित्र और गजराज पर चलने वाले राजा की सम्पत्ति को पाता है। किन्तु उद्यम रहित मृत्यु को।

पुरुषार्थी के पैरो मे पद्म रेखा प्रस्फुटित होती है तथा भाग्यवादी के पैर की गज रेखा गृहस्थी के गदे वातावरण मे धूमिल हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि **पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण होता है**। और चाहे तो भाग्य को पुरुषार्थ से बदल भी सकते है, जिसे जैनसिद्धात ने कहा है कि कर्म सक्रमण। देखिए ! किसी व्यक्ति को 105 डिग्री बुखार है यदि वह सम्यक् पुरुषार्थ कर धर्मसभा मे धर्मो उपदेश सुनने आ जाता है और श्रवण की रूचि

से अपने बुखार की याद भी नही लाता है। परिणाम यह निकलता है उसकी असाता वेदनीय दु ख, पीड़ा, परेशानी कुछ ही क्षणो मे साता वेदनीय मे परिणत हो जाती है। यही है पुरुषार्थ का करिश्मा। यदि वही व्यक्ति पलग पर लेटा हाय-हाय करता रहता तो असाता वेदनीय कर्म का नूतन बध और होता तथा दु ख की परम्परा अविछिन्न रूप से चलती रहती। भाग्यवादी सोचता कि भाग्य होगा तो ज्वर ठीक हो जाएगा। परन्तु यह कैसी विचित्रता है अकर्मण्यपने की।

पुरुषार्थी के तमाम कर्म फलते है और पुरुषार्थ विहीन के कुछ भी नही। लोक जगत मे देखते है कि मानव उद्यम कर खेतो मे अनाज उपजाता है, वृक्ष लगाता है तथा सुन्दर-सुन्दर सुस्वादु फलो को पैदा करता है। वैज्ञानिक महासागरो की छाती पर जलयान दौडाता है तथा कलपुर्जो द्वारा आधुनिक मशीनरी दे, मानव को सुखी बनाता है। जब अध्यात्म जगत मे घुसते है तो हम अपनी आखो से देखते है कि सन्त महात्मा पुरुषार्थ कर दुष्टकर्मो की सतति को नेस्त-नाबूत कर रहे है। सचमुच ही भाग्य भरोसे रहने वालो को मोक्ष-सुख नही है। अरे, मोक्ष क्या, ससार-शरीर गत सुख भी क्या कभी बिना पुरुषार्थ के मिलता है।

पुरुष को पुरुषार्थ करना नही भूलना चाहिए। उसे अपने कर्त्तव्य पथ पर सतत् उद्यमरत होना चाहिए। फिर भाग्य मे जो हो सो देखा जाए। क्योंकि पुरुषार्थ ही भाग्य निर्माता है। प्रसग चल रहा था अपरिग्रह का। पुरुषार्थी अर्जन करता है तो उसे विसर्जन की चेतना से भी जुडना चाहिए। गृहस्थ जीवन मे यही अपरिग्रह का प्रायोगिक रूप है। माना कि सभी अपरिग्रही नही बन सकते, पर अपरिग्रह-पथ के पथिक तो बन सकते है। अपरिग्रह की शरण लिए बिना सघर्ष नही मिट सकते। अपरिग्रह का सिद्धान्त भी वही फलित होता है जहाँ अधिकार की भावना समाप्त हो जाती है। समाज का भला तभी होगा जब अपरिग्रह या इच्छा परिमाण व्रत सबका दृष्टि केन्द्र बनेगा। सग्रह की भावना त्याग मे एव अर्थवाद, अपरिग्रह बाद मे बदलेगा।

■■

मानसिक प्रदूषण से बिगड़ता पर्यावरण

आज पर्यावरण की समस्या मानव अस्तित्व के लिए सबसे बडी चुनौती है। परमाणु बम से मानव को जितना खतरा है, उसकी अपेक्षा पर्यावरण विनाश से सैकडो गुना अधिक सकट है। इसलिये पर्यावरण के प्रति चिन्ता काफी बढी है। पर्यावरण का सबध हमारी सस्कृति, परम्परा, साहित्य, कला, अर्थनीति एव समाज से ही नही, बल्कि हमारे पूरे अस्तित्व से है। भोपाल गैस काण्ड तो प्रदूषण नियत्रण के अनुत्तरदायित्व की पराकाष्ठा है। पर्यावरण विनाश की घातक, सूक्ष्म एव अदृश्य प्रक्रियाएँ पूरी उपेक्षा करती हुई हमारी प्राकृतिक सपदा को लूटे जा रही है। प्रति वर्ष भारत मे दस लाख हैक्टयर जगल नष्ट हो रहे है। जीवन-दायिनी नदियो के उद्‌गम स्थल, पर्वत मालाओ को नष्ट-भ्रष्ट किया जा रहा है। आर्थिक उन्नति एव वैज्ञानिक प्रबध के नाम पर वन, चारागाह, नदी, तालाब आदि का सगठित रूप से दुरूपयोग किया जा रहा है। जब तक समाज प्राकृतिक सपदा के साथ अपने सबध फिर से परिभाषित नही करेगा और प्रकृति की साज-सभाल अपने हाथो मे नही लेगा, तब तक उसकी रक्षा असभव है। पर्यावरण सरक्षण के लिए एक विशेष सामाजिक- सस्कृति एव एक विशिष्ट जीवन पद्धति आवश्यक है।

पर्यावरण से आशय

पर्यावरण दो शब्दो से बना है- परि+आवरण। परि परित यानि चारो ओर से आवरण या वृत। पर्यावरण की सरल परिभाषा यह है कि पर्यावरण वह रक्षा कवच है, जो प्रकृति, पुरूष के लिए उत्तराधिकार मे दाय के रूप मे देती है। अन्य शब्दो मे पर्यावरण प्रकृति का वह बैंक है जिसमे प्रकृति पुरूष वर्ग के जमा-नामे वाले पूँजी खाते का विवरण लिखती है। जिसके आधार पर सभी जीवात्माओ का जीवन व्यापार चलता है। पर्यावरण की सीमा मे पृथ्वी, जल, प्रकाश, ध्वनि जैसे प्राकृतिक साधनो का समावेश है। पर्यावरण को अन्य सीमा रेखाएँ यथा व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय, आज तक विभाजित नही कर सकी है।

व्यापक अर्थ मे पर्यावरण से आशय जीव - सृष्टि एव वातावरण का पारस्परिक आकलन जिसमे सजीव प्राणी, आब - हवा, भूगर्भ और आस - पास की परिस्थिति विषयक विज्ञान का समावेश होता है। इसमे केवल मनुष्य, पशु - पक्षी, जीव - जन्तु, वनस्पति और अपार अनन्त सूक्ष्म जीवन सृष्टि का ही नही, अपितु समग्र ब्रह्माण्ड, तारकवृन्द, सूर्य - मडल तथा पृथ्वी के आस - पास के सूर्य, चन्द्र, ग्रह, गिरि - कन्दरा, सरिता, सागर, झरने, वन - उपवन, वृक्ष, वनस्पति, भूपृष्ठ एव जल पृष्ठ सहित पच महाभूत तत्वो का भी समावेश होता है।

सपूर्ण ब्रह्माण्ड मे पृथ्वी ही एक ऐसा नक्षत्र है जिसमे प्राण और वनम्पति दोनो उपलब्ध है। पृथ्वी पर प्राण और वनस्पति का सदैव एक सतुलन रहा है। यही प्रकृति का सहज गुण है - उसका स्वधर्म है।

मनुष्य प्रकृति का सखा

लेकिन भोगवादी सस्कृति ने मनुष्य की आवश्यकताओ को अतहीन बना डाला है। इसी भोगवादी सस्कृति ने प्रकृति को अपना शत्रु मान लिया है और मनुष्य उसका स्वामी बन बैठा है। जिस प्रौद्योगिकी के जाल मे हम घिरे हुए है उसमे प्रकृति का शोषण ही मुख्य लक्ष्य है, उसका सतुलन नही। यह पश्चिम की दृष्टि है। लेकिन भारत का सास्कृतिक आदर्श भोगवाद नही रहा है। हमारा आदर्श और परम्परा अध्यात्म मे निहित है। जो अनत है अथवा अनहीन है उसकी प्राप्ति केवल आध्यात्मिक क्षेत्र मे ही मिल सकती है। भारतीय दृष्टि प्रकृति के शोषण की न रह कर, उसके सरक्षण की, श्रद्धा की रही है। प्रकृति पर विजय पाने का अहकार पश्चिम का रहा है, जबकि उसके साथ सहकार की दृष्टि भारतीय रही है। भारतीय दृष्टिकोण मे मनुष्य प्रकृति का स्वामी नही सखा है।

प्रकृति और मनुष्य को गहराई से जानने और समझने का प्रयत्न ही पर्यावरण को सही ढग से सरक्षित करने का आधार है। वस्तुत सपूर्ण प्रकृति और मनुष्य कि उसके साथ सबधो मे मधुरता का नाम ही पर्यावरण सरक्षण है। पर्यावरण के विभिन्न आधार और साधन हो सकते हैं, किन्तु धर्म उनमे प्रमुख आधार है। समता, अहिसा, सतोष, अपरिग्रह वृत्ति शाकाहार का व्यवहार

आदि। जीवन मूल्यो के द्वारा ही स्थायी रूप से पर्यावरण को शुद्ध रखा जा सकता है। ये जीवन मूल्य जैन धर्म के आधार स्तभ है।

सबधो मे सतुलन आवश्यक

मनुष्य और प्रकृति का सबध मनुष्य के प्रारंभिक विकास के साथ जुडा हुआ है। प्रकृति को जाने बिना मनुष्य अपने कर्त्तव्य का निर्धारण नही कर सकता। इसीलिये कहा है कि वस्तु के स्वभाव को जानना ही धर्म है। प्रकृति के एक रूप को जान लेना ही सब वस्तुओ को जानने के समान है। वैदिक ऋषियो ने भी यही बात कही- "एक को जान लेने से सबको जाना जा सकता है।" - एकेन विज्ञातेव सर्वमिद विज्ञान भवति। जैन आगम भी यही कहते है- "जो एग जाणदि सो सव्व जाणदि।

विश्व मे जितने भी जड - चेतन तत्व हैं उनका अपना - अपना स्वभाव होता है, जिनके कारण उनका अस्तित्व बना हुआ है। जब तक वे अपने स्वभाव मे स्थित रहते है, तब तक प्रकृति की व्यवस्था मे सतुलन बना रहता है, किन्तु जैसे ही किसी एक तत्व या तत्व - समूह की क्रिया, प्रतिक्रिया मे व्यापक फेरबदल होता है, प्रकृति का सतुलन बिगड जाता है। जिसके फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषित एव अशुद्ध हो जाता है।

असमय जल वृष्टि, अति उष्णता, अतिशीतलता, असामयिक मौसम परिवर्तन आदि ऐसे भौतिक घटक हैं, जो पर्यावरण को विपरीत रूप से प्रभावित करते हुए प्राकृतिक असतुलन और प्राकृतिक प्रदूषण की विद्यमानता की पुष्टि करते है। प्रश्न यह है कि अतत पर्यावरण मे अशुद्धता या प्रदूषण क्यो और कैसे होता है?

प्रदूषण के प्रकार

प्रदूषण का अर्थ अत्यत व्यापक है, इसमे भौतिक एव अभौतिक दोनो प्रकार के प्रदूषण शामिल है। जहॉ तक विज्ञान एव तकनीकी विकास के साथ जुडे जल, वायु, ध्वनि आदि भौतिक प्रदूषणो का सबध है, ये मनुष्यकृत हैं और इन्हे वैज्ञानिक तकनीकी विकास द्वारा किसी सीमा तक रोका जा सकता है।

प्राकृतिक प्रदूषण का दूसरा महत्वपूर्ण अभौतिक पहलू है, जो मानव

जगत के मानसिक प्रदूषण से गहराई के साथ जुडा हुआ है। क्योंकि प्रदूषण केवल प्रकृति मे नही होता, मनुष्य के विचारो मे भी होता है। और इस वैचारिक, मानसिक प्रदूषण को यदि यथासमय सतुलित नही किया गया तो भौतिक प्रदूषण को नियंत्रित कर प्राकृतिक सतुलन की कल्पना "गगन कुसुम" जैसी होगी।

पर्यावरण को प्रदूषित करने मे मानसिक प्रदूषण के अतर्गत दो मूल कारण है - तृष्णा और हिसा। इनके विकसित रूप है - परिग्रह और क्रूरता। जैन धर्म प्रारभ से ही तृष्णा और हिसा पर सयम की बात कहता रहा है। हिसा का जीवन मे विस्तार न हो उस हेतु भ. महावीर ने वृक्ष, वनस्पति, वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि आदि सभी की चेतना पहचान कर उनके साथ मनुष्य की समानता की बात कही। हिसा को तिरोहित करने के लिये शाकाहार एव शुद्ध आहार पर जैन धर्म मे विशेष ध्यान दिया गया। बहुत से धान्यो, बीजो, फलो एव साग को भोजन मे न लेने की बात कही गई, ताकि अहिसा का पालन हो और प्रकृति की सुरक्षा बनी रहे। मासाहार का निषेध किया गया तथा अनेक हिसक व्यवसायो पर प्रतिबध लगाया गया जिनसे पर्यावरण सतुलन का खतरा था/है।

षट्लेश्या

जैन दर्शन की दृष्टि से जीवन की जो मूलभूत आवश्यकताएँ है - वे है प्राणवायु, जल, भोजन, वस्त्र और आवास आदि। इनकी पूर्ति प्रकृति के साधनो से करते हुए शेष जीवन मे जीव उद्धार के कार्यो मे लगना ही सच्ची प्रगति है, विकास है। विकास का यह मार्ग अपरिग्रह, एव सतोष के सिद्धात मे छिपा है। महावीर ने लोभ विजय, बुद्ध ने तृष्णा क्षय, कबीर ने सतोष धन आदि पर विशेष जोर देकर मनुष्य को **उपभोग से उपयोग की ओर लौटने** की बात कही है। इस सतोष धन की श्रेष्ठता 'षट्लेश्या' के माध्यम से कही गई है।

मनुष्य जैसा चितना करता है, वैसा ही वह कार्य करता है। एक ही प्रकार के कार्य को भिन्न - भिन्न वृत्ति वाले लोग अलग - अलग ढग से सपन्न करना चाहते है। दृष्टान्त दिया गया है कि छ लकडहारे जगल मे लकडी,

काटने गये। दोपहर मे जब उन्हे भूख लगी, तो वे किसी फल के पेड को खोजने लगे। उन्हे एक आम का पेड दिखा, जो पके फलो से लदा हुआ था। प्रथम लकडहारे ने अपनी कुल्हाडी से पूरे पेड को काटना चाहा, ताकि बाद मे आराम से बैठकर आम खाये जा सके। दूसरे ने एक मोटी, शाखा को काटना ही पर्याप्त समझा। तीसरे लकडहारे ने सोचा शाखा काटने से क्या फायदा? छोटी-छोटी टहनियाँ काट लेना ही पर्याप्त है। चौथे ने टहनियो को नुकसान पहुँचाना ठीक नही समझा उसने केवल आम के गुच्छो को काटना ही उचित माना। तब पाँचवे ने कहा कच्चे आम का हम क्या करेगे? केवल पके आमो को ही पेड से तोड लेते है। छठे लकडहारे ने सुझाव दिया कि तुम सब पेड के ऊपर ही क्यो देख रहे हो। जमीन पर इस पेड के पके हुए इतने आम पडे हैं, कि हम सभी की भूख मिट जायेगी। हम इन्ही को बीन लेते है। सौभाग्य से उसकी बात मान ली गई।

इन छ व्यक्तियो के विचारो को छ रग दिये गये हैं। प्रथम लकडहारे के विचारो सर्वनाश के द्योतक हैं। अत वह 'कृष्णलेश्या' वाला है। दूसरे से छठे तक के विचारो मे क्रमश सुधार हुआ है। सर्वकल्याण की भावना विकसित हुई है। अत दूसरे को नीललेश्या, तीसरे को कपोतलेश्या, चौथे को पीतलेश्या, पॉचवे को पद्मलेश्या एव छठे लकडहारे को शुक्ललेश्या वाला व्यक्ति माना गया है। काला, नीला, मटमैला, पीला, लाल और सफेद रग क्रमश विचारो की पवित्रता के द्योतक है। यदि आज का मानव जीवन मूल्यो के माध्यम से **पद्मलेश्या** तक भी पहुँच जाय तो भी **विश्व की प्राकृतिक सपदा सुरक्षित** हो जाएगी। लोगो की बुनियादी जरूरते पूरी हो जाएँगी। इससे विपरीत मानव का असयम प्रदूषण की समस्या ही पैदा करता रहेगा।

आत्मतुलवाद और पर्यावरण

पर्यावरण सरक्षण मे अहिसा और जीवदया भी सन्निहित है। भ. महावीर आत्मतुलवाद के प्ररूपक थे। उन्होने सयम, आचरण, करूणा, जीवदया पर विशेष बल दिया। सृष्टि सतुलन का जो सूत्र महावीर ने दिया, वह आज भी महत्वपूर्ण है। अपने अस्तित्व को हम इस तुला से तौले तो न केवल अहिसा

का सिद्धात फलिन होना है, अपितु पर्यावरण विज्ञान की समस्या को भी महत्वपूर्ण समाधान प्राप्त होता है। यह आवश्यक है कि हम अहिसा को केवल धार्मिक रूप मे प्रस्तुत न करे। यदि उसे वर्तमान समस्याओ के सदर्भ मे प्रस्तुत किया जाए तो मानव जाति को एक नया आलोक उपलब्ध हो सकता है।

'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'

जैन धर्म का एक विशिष्ट सूत्र है- ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' अर्थात सभी जीव परस्परावलबित है। छोटे या बडे सभी जीवनो के अवलबन को 'परस्परावलबन सिद्धात' कहा गया है। यह एक ऐसा अटूट बधन है जो सर्व जीवो की हार्दिक मैत्री के विकास को जन्म देता है। इसलिये कहा जाता है कि पर्यावरण का थोडा-सा भी गैर उपयोग या उस पर की गई हिसा मनुष्य के लिये आज नही तो कल भयप्रद हो सकती है। इस दृष्टि से देखा जाये तो परस्परावलबन का सिद्धात केवल आदेश ही नही है, बल्कि मनुष्य जाति के लिये एक चेतावनी है, एक सदेश है। यह सिद्धात 'जिओ और जीने दो' उतना ही नही सिखाता वरन'' **जीने दो जिससे कि हम भी जी सके**'' ऐसा बोध भी देता है।

सृष्टि की समूची व्यवस्था मे ऐक्य एव सवादिता है। परस्पर का अविभिन्न सबधा तथा एकसूत्रता है/स्वयपूर्णता है। चैतन्य की उत्क्राति और मानव समाज का सास्कृतिक विकास विश्व की सवादिता तथा साम्य भाव के साथ सुसकलित है। सभी जीवो के परस्परावलबन के अद्वितीय सिद्धात की स्वीकृति के लिये हमे सह-अस्तित्व की भावना को अवश्य सफल बनाना होगा।

मानसिक प्रदूषण का प्रभाव

इस प्रकार समग्र रूप से मनोभाव एव मानसिक प्रदूषण से वर्तमान मानव सभ्यता एव प्रकृति व्यापक एव गहन रूप से प्रभावित हुई है। मानव जीवन की सरलता, सज्जनता, निष्कपटता, निश्छलता परदु ख-कातरता, स्वावलबन, कर्त्तव्यनिष्ठा, श्रम-निष्ठा, परस्पर सहयोग, प्राणी मात्र के प्रति दया एव करूणा आदि ऐसे सहज मानवीय गुण है, जो मनुष्य को अन्य प्राणियो की तुलना मे श्रेष्ठता प्रदान करते है और जिसके सतुलन से प्रकृति-व्यवस्था सतुलित एव मर्यादित चलती रहती है। किन्तु जब इन मानवीय गुणो का ह्रास

होता है या इन गुणो को प्रतिपक्षी मनोभाव मानव जीवन को आक्रान्त करते है, तब उससे न केवल व्यक्ति, प्रत्युत समाज भी दु खी होता है। इससे प्राकृतिक सतुलन भी अस्त - व्यस्त हो जाता है जैसा कि वर्तमान मे मनोविकृत सामाजिक अव्यवस्था एव प्राकृतिक असतुलन के दुष्परिणामो को हम अनुभूत कर रहे है। वस्तुत इन सब विकृतियो के साथ - साथ खान - पान की विकृति, रहन - सहन की अमीरी और चरित्र की गरीबी के लिये मानव जगत का मानसिक प्रदूषण ही उत्तरदायी है। प्रदूषण का जहरीला विष जीवित व्यक्ति को मृत्यु का अनुभव करा देता है।

हमारे मन मे प्रियता - अप्रियता, राग - द्वेष, स्नेह - घृणा, निहकार - अहकार, समत्व - ममत्व, करूणा - क्रूरता, शाति - क्रोध, सरलता - मायाचार, सहिष्णुता - ईर्ष्या, कर्त्तव्यपरायणता - विमुखता, अनाग्रह - दुराग्रह सरलता - कृत्रिमता, शुचिता - लोभ आदि के प्रतिपक्षी मनोभाव जन्म से ही विद्यमान रहते है। हमे जब जैसा सयोग प्राप्त होता है, कोई न कोई मनोभाव हम पर हावी हो जाता है और हम बिना विचार किये उसके दास बनकर व्यवहार करने लगते है। जब हमारे मन मे दूसरो के प्रति सहयोग, परोपकार, करूणा, सहिष्णुता, सतोष आदि का शुभ भाव आता है, तो उससे समस्त जड - चेतन जगत मे प्रसन्नता एव सहजता व्याप्त हो जाती है, किन्तु जैसे ही हमारे मन मे परपीडा, क्रोध, लोभ, अहकार - ममकार, शोषण, पर - अधिकार - हनन, हिसा आदि अशुभ मनोभाव जागृत होते है वैसे ही व्यक्ति एव समाज की शाति - सतुलन भग हो जाता है और उससे प्रकृति भी विपरीत रूप मे निश्चित ही प्रभावित होती है। वह नीरस हो जाती है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

एक दिन एक सम्राट शिकार के उद्देश्य से प्रत्यूष बेला मे अपने प्रिय अश्व पर आरूढ हो वन की ओर गया। घोडे की टाप टप - टप की आवाज से गगन गुजाती आगे बढ रही थी। सम्राट बहुत खुश था, सोचता जा रहा है आज बहुत बढिया शिकार करूगॉ, लेकिन वन्य पशुओ का सौभाग्य देखिए दूर - दूराज तक उसे कही शिकार नजर नही आ रहा है। राजा अनवरत आगे बढता जा रहा है। तपती, चिलचिलाती, धूप भरी दुपहरी सिर से निकल गई।

शरीर शिथिल हो गया मन क्लान्ति का अनुभव कर रहा है। कण्ठ उष्णता के कारण तालू से चिपक रहा है और क्षुधा डायिन डकार रही है परन्तु कही भी क्षुधा-तुषा शान्ति के आसार नजर नही आ रहे है।

दैवात् कुछ दूरी पर एक झोपडी राजा को दिखलाई दी, उसकी आशा की डोर वहा जाकर बॅध गई। साध्य बेला मे राजा ने द्वार पर दस्तक दी। एक बुढिया ने द्वार खोला और प्रणाम मुद्रा मे अतिथि की ओर देखा। मॉ! मुझे जोरो से प्यास लग रही है, सुबह से निकला हूॅ, क्या मुझे थोडा सा जल पिलाओगी- लगभग गिडगिडाता सा सम्राट बोला। हॉ! हॉ क्यों नही? बेटे अन्दर आइए, यह तो मेरा परम सौभाग्य है जो कि अतिथि के आतिथ्य का अवसर मुझे मिला। यह तो भारतीय सस्कृति है अतिथि का सत्कार। आइए बेटा! अन्दर आइए, बुढिया मा ने विनय भरे स्वर मे कहा। बुढिया मा और सम्राट एक पल मे झोपडी के अन्दर थे। बुढिया ने तख्त की ओर सकेत कर आगन्तुक को बैठाया और स्वय पश्चिम भाग की ओर चली गई। सोचती है केवल कोरे जल से अतिथि का क्या स्वागत करूॅ और यह तो दिन भर का भूखा है। बगीचे से कुछ फल तोड रस निकालकर इसे पिलाती हूॅ। बुढिया ने झटपट दो अनार के फल तोडे और एक रस से भरा लौटा पाच मिनट मे अतिथि के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। राजा प्यासा तो था ही तिस पर इतना शीतल और सुमधुर रस, वह भी प्यार के रस से भरा हुआ। एक ही श्वास मे लोटा खाली कर दिया। सम्राट बोला मॉ क्या थोडा सा रस और पिलाओगी। मा बोली क्यो नही और दौडकर पुन रस भरा लोटा लेकर लौट आई। रस पान कर सम्राट ने महान तृप्ति का अनुभव किया। जाते जाते बोला मॉ! मै किन शब्दो से आपको धन्यवाद दूॅ। मै तुम्हारा कृतज्ञ हूॅ। तुम कभी भी मेरे राज-भवन मे पधारो, मै तुम्हारा स्वागत करूगॉ। हा मॉ! एक बात का वचन दो पुन कभी दोबारा भूला हुआ तुम्हारा बेटा इधर पधारे तो उसे ऐसा ही रस पिलाना। बुढिया ने अतिथि को अवश्य पिलाऊगी। बेटा! पुन पधारना इत्यादि शब्दो द्वारा बिदा दी।

सम्राट अर्ध निशा मे अपने अन्त पुर पहुचा। कोमल कलियो की शय्या पर लेटा, लेकिन आज वह सो न सका। वह बार-बार सोच रहा है

अहो! इतना स्वादिष्ट रस मैने सम्राट होकर आज तक नही पीया, जिसे यह नाचीज सी बुढिया रोज पीती होगी। प्रात नित्य क्रियाओ से निवृत्त हो सम्राट ने मत्री को बुलावा भेजा। कुछ पलों मे मत्री राजा के के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। सम्राट बोला - मत्रिवर कल मे सूर्य की प्रथम किरण के साथ शिकार पर निकला था किन्तु सूर्य की अन्तिम किरण तक मुझे एक भी शिकार नही मिला। मै श्रान्त - क्लात एक कुटिया पर पहुचा। वहाँ एक बुढिया माँ ने मुझे इतना स्वादिष्ट अनार का रस पिलाया जो मैने अपने पचास बसन्त पार करने के बाद भी नही पिया। मत्री ने कहा - स्वामिन् आप किस ओर गये थे। राजा बोला मै पश्चिम कीओर गया था। कुछ स्थूल सकेत भी राजा ने बतलाये। सकेतो के आधार पर अनुमान द्वारा सुनिश्चित कर मत्री ने कहा - "राजन्! वह सीमा क्षेत्र आपके राज्यान्र्तगत आता है। कहिए मै प्रतिदिन आपको रस उपस्थित करा दूँ। राजा आश्चर्य मे पड गया - बोला - हमारे राज्य मे इतने मधुर फल और मुझे आज तक ज्ञात नही। लगता है तुमने उस पर टैक्स भी नही लगाया होगा। जाओ उस सीमा क्षेत्र के बगीचो पर टेक्स लगा दो। राजन्! आपकी आज्ञा शिरोधार्य कहता हुआ मत्री चल गया। राजा की आज्ञा टेक्स के साथ पूरी हुई।

कुछ दिनो पश्चात् सम्राट शिकार के लिए उसी वन की ओर गया। प्यास लगने पर उसी बुढिया की झोपडी पर पहुचा। आवाज दी ओ माँ! तेरा बेटा पुन प्यासा खडा है उसे रस पिलाओ। बुढिया पोपले मुख पर किचित मुस्कान बिखेरते हुई बोली हा बेटा! बैठ मै अभी लाई रस से भरा लोटा। बुढिया लोटा लेकर बगीचे मे गई, कुछ फल तोडे रस निकालने लगी, 15 - 16 फलो के बाद भी रस का लोटा न भर सका। वह कुछ खाली लोटा लेकर लौटी। सम्राट ने बीच मे कई आवाजे दी मा जल्दी आओ मा कहती रही अभी आई बेटा! अभी आई। जब मा को कुछ कम भरा लोटा हाथ मे लिये देखा तो सम्राट अधीर हो उठा बोला - मा! लोटा पूरा भी नही भरा और देर भी बहुत कर दी। पहले तो दो मिनिट मे भरकर ले आयी थी। बुढिया बोली - क्या कहूँ बेटा! मेरे राज्य का राजा बडा दुष्ट है जब से उसकी कुदृष्टि हमारे बगीचो पर पडी उसकी नियति बिगड गई। उसने फलो पर टैक्स लगा दिया

तब से प्रकृति नीरस हो गई है, रुष्ट हो गई है। इसलिए फलो मे पहले जो रस था दो अनार जितना रस देते थे आज पन्द्रह अनार भी वह रस नही दे सके। राजा चौकन्ना हो गया उसके कान खरगोश की तरह खडे हो गए बोला- मा तुम क्या यह सच कह रही हो? क्या तुम्हारा सम्राट यहा आ जाये तो तुम यह वाक्य दोहरा सकती हो। बुढिया ने निर्भीकता से उत्तर दिया- क्यो नही, यदि वह आ जाये तो मै यह बात जरूर कहूँगी, सत्य कहने मे किसका भय। उसकी दूषित मानसिकता का यही परिणाम है कि प्रकृति रूष्ट हो गई है।

बस फिर क्या था, सम्राट बोला- मा! मै हूँ इस राज्य का दुष्ट शासक। सुनते ही मा के पैर लडखडा गये। राजा ने आश्वस्त किया मा! मत घबराओ। चलो मेरे राज्य मे, तुमने मेरी आखे खोल दी। मेरे दूषित मानसिक प्रदूषण ने प्रकृति को दूषित कर दिया। चलो मेरे साथ चलो। मै आपको और आपकी नीतियो को सिहासन पर बिठाकर राज्य करूगाँ।

उक्त परिप्रेक्ष्य मे यह आवश्यक है कि हम अपने स्वभाव को जाने-पहचाने और अपने अदर प्रसुप्त आतरिक शक्तियो को जानकर उन्हे प्रकट करे तथा मानव की मर्यादा के अनुकूल जीवन जिएँ। जिससे पर्यावरण के प्रदूषण एव प्राकृतिक आपत्तियो-विपत्तियो से व्यक्ति तथा समाज की रक्षा की जा सके। यही एक मात्र ऐसा राजमार्ग है जो ' सर्वहिताय-सर्वसुखाय के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। विश्वास है कि शिक्षा मनीषी वैज्ञानिक अध्यात्मवेत्ता एव राजसत्ता पर पदासीन राजपुरूष वैचारिक शुचिता की महत्ता की गभीरता को समझेगे तथा भौतिक तत्वो द्वारा प्राकृतिक प्रदूषण से अभिशप्त प्रकृति-पुरूष को बचाने हेतु मानसिक प्रदूषण को नियत्रित एव सयमित करने मे अपना योगदान देगे। प्रकृति के बीच रहकर प्रकृति को हानि पहुँचाना स्वय की हानि है। प्रकृति की अवहेलना कष्ट का निमत्रण देना है। प्रकृति कभी अपने और हमारे नियमो को नही तोडती किन्तु हम है कि उसके नियमो को तोडते चले जाते है। प्रकृति मे जो सहज-सौन्दर्य होता है वह विकृति मे नही है। प्रकृति सुन्दर ही नही प्रेरक भी हो। हम उससे प्रेरणा ले। उसे अपनी गदी मानसिकता से दूषित करने का दु साहस न करे। ■■

हाइपरटेन्सन

मोहमल्लममल्ल यो, व्यजेष्टानिष्ट कारिणम्।
करीन्द्र ना हरि सोऽय, मल्लि शल्य हरोऽस्तु न ।।

(मगलाचरण - 67)

आज हम जिस दौर से गुजर रहे है उससे मन - मस्तिष्क पर काफी दबाव पड रहा है। उस दबाव से बचने के लिए, सुख शान्ति का आस्वाद लेने के लिए मै कुछ चर्चा करना चाहता हूँ। इस सदी का अगर सबसे बडा कोई अभिशाप है तो वह है तनाव।

उच्चकोटि के सन कवि तुलसीदास जी ने कहा

'तुलसी तहा न बैठिये जहा कोई देय उठाय'। यह पक्ति जीवन की सारी विकृतियो को दूर करने मे सहायता प्रदान करती है। हम ऐसी कोई चेष्टा करने के लिए उद्यत न हो जिस चेष्टा से हमारे भीतर कलुषित विचार जन्म लेते हो। आज देखने मे आता है कि एक दुहमुँहा बालक भी तनाव - ग्रस्त है, वह भी दूध पीने के लिए तैयार नही है। कारण उसका मनचाहा नही हो पा रहा है। बेटे का तनाव मा को भी तनाव - ग्रस्त कर देता है, क्योंकि वह दूध नही पीयेगा तो मा के कार्य मे व्यवधान खडा कर देगा।

यह तीन अक्षरी छोटा सा शब्द 'तनाव' व्यक्तिगत, पारिवारिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, मानसिक एव राष्ट्रीय शान्ति को खा जाता है। तनाव सस्कृत की तन् धातु की सतान है। इस धातु से और भी कई शब्द निष्पन्न होते है। तान भी इसी का एक रूप है। इस पचभूत शरीर मे मासपेशियो, स्नायुओ, शिराओ का जाल मकडजाल की तरह बिछा है। जब किसी ज्ञाताज्ञात कारण वश इस जाल मे खिचाव या कसाव आ जाता है तब तन और मन दोनो ही व्यग्र हो उठते है। इसी व्यग्रता का नाम ही तो है Hypertension यह तनाव पैदा कहा से होता है? तह मे जाने पर ज्ञात होता है कि गलतफहमी इसकी माँ है एव असतोष इसका पिता।

आग्ल भाषा मे तनाव को टेन्शन कहते है। ten यानि दस son

पुत्र (जरा आई को नजर अन्दाज कर दे) फिर देखे। टेन्शन अर्थात् दस पुत्र। जैसे जिसके दस मुख होते है उसे दशानन कहते है वैसे ही जिसके दस पुत्र हो उसे टेन्शन नही तो और क्या कहेगे ? इस टेन्शन के क्षेत्र - वास्तु, हिरण्य - स्वर्ण, धन - धान्य, दासी - दास, कुप्य और भाण्ड ये दस पुत्र है। सत्य ही है जहा एक को धक्का लगता है वहा दूसरा परेशान हो उठता है। जैसे ही तीसरे को चोट पहुचती है चौथा पीडा से तिल - मिला उठता है। व्यवहारिक जीवन मे जमीन - जायदाद के विभाजन के तहत देखते है तो पाते हैं, एक - एक इच जमीन के लिए आदमी लड मरता है। दुर्योधन की राजनीति से जगत परिचित है, वह पाण्डवो के लिए सूई के नोक बराबर भूमि देने के लिए तैयार नही था। उसकी इस लिप्सा भरी नीति ने विदुर की विश्व प्रसिद्ध नीतियो की अवहेलना कर दी। भीष्म पितामह जैसे वृद्ध और दृढ प्रतिज्ञ व्यक्तित्व को जीवन भर तनाव ग्रस्त रख अन्त मे 'शरशय्या' पर सुला दिया। श्री कृष्ण जैसे विराट व्यक्तित्व का शांति प्रस्ताव ठुकरा दिया। इतना ही नही उसकी इस कूटनीति ने (कर्ण) भाई - भाई के रक्त को विषाक्त कर दिया। उसे पहिचानने नही दिया। सारा राज घराना, हस्तिनापुर नगर, पाण्डवो सहित द्रुपद नरेश आदि अनगिनत लोग तनाव ग्रस्त रहे। माता कुती, पत्नी द्रौपदी सहित पाण्डवो को जगलो की खाक छाननी पडी। विराट नरेश का दासत्व स्वीकार करना पडा। कितने दुखी रहे, परिणामत अन्त मे महाभारत जैसा इतिहास प्रसिद्ध महायुद्ध हुआ, जिसने लाखो के प्राण एव घर उजाड दिये।

महानुभाव! जिसके पास केवल क्षेत्र (जमीन) ही नही, इस जैसे धन - धान्यादि और भी नव पुत्र होगे तब वह टेन्शन ग्रस्त नही होगा तो और क्या होगा ? इस प्रश्न का उत्तर आप ही दीजिये। इतने ही पुत्र होते तो भी शायद बात कुछ बन भी जाती किन्तु यहा तो कमाल की बात है। जरा आगे बढ 'तनाव' के अन्त पुर मे झाक कर देखिये, वहा एक विचित्र प्रकार का परिवार घात लगाये बैठा है। उसकी अन्तरग परिषद मे द्वितीय श्रेणी के दस पुत्र और अधिक शौर्य प्रदान कर रहे है। वे है अहकार, आशका, बैचेनी, स्वार्थ, असफलता, महत्वाकाक्षा, अपेक्षा, भय, चिन्ता और कनकच्ची।

आशका के सबध मे मैं आप लोगो से क्या कहूँ नामानुसार ही इसका चरित्र है क्योकि यह तनाव की सर्वप्रिय सतान है। औरगजेब को तो आप जानते ही होगे। उसने अपनी दाढी कभी नही बनवाई, कारण वह किसी पर विश्वास नही करता था। उसे सदा यह आशका भय पैदा करती रहती थी, कही नाई के हाथ दाढी थमा दी और उसने छुरा मार दिया तो क्या होगा ? अपनी पत्नी, पुत्री को किसी से बात नही करने देता था। उसका मन सदा शकित रहता था, कही ये किसी पर आकृष्ट न हो जाये। आशका लाइलाज मर्ज है। दुनिया मे रोगो की दवा तो है पर आशका की कोई दवा नही है। सारे राज्य के, परिवार के लोग उससे त्रस्त थे। आखिर एक दिन औरगजेब की आशका ने लोगो को उसके तिरस्कार के लिए मजबूर कर दिया। उसी की आशका ने उसके परिन शत्रु खडे कर दिये। इतिहासकार का ते हैं औरगजेब की आशका ने ही उसके राज्य को नष्ट कर दिया।

झूठी नामवरी और यशोभिलाषा मे आदमी व्यर्थ तनाव-ग्रस्त हो अ नी मौलिकताओ के मार्ग अवरूद्ध कर देता है। औपचारिकाताए उस पर हावी हो जाती है शांति की सारी सभावनाएँ अस्त हो जाती है, और अशाति अपने पेर जमा लेनी है। चारो ओर निराशाएँ छा जाती है। स्वाभाविकताओ के ऊपर वैसा ही आवरण छा जाता हे जैसे बिना एक भी मृत्यु के घरो मे मातम छाया रहना है। आदमी की उम्र तो छोटी है किन्तु आकाक्षाएँ न जाने कितनी लम्बी-चौडी बैठी है उसके छोटे से जीवन मे।

एक छोटा सा साधारण सा आदमी भी सोचता है मेरी पहचान प्रधानमत्री, राष्ट्रपति, बडे-से-बडे उद्योगपति, पूजीपति से हो जाए। ये गगनचुम्बी महत्वाकाक्षाएँ इसान को भीतर-ही-भीतर मारती रहती है। दोहरे जीवन वाला व्यक्ति ही तनावग्रस्त रहता है। कारण उसमे बाहर की जिदगी कुछ अलग है और भीतर की जिदगी बिलकुल अलग। इस दोहरी जिदगी के प्रमुख दो तत्व है अहकार और स्वार्थ। क्रूर मुस्कुराहट लिए ये दोनो यमदूतो की तरह लम्बे-चौडे दोनो जवान सदा इन्सान के दाये-बाये खडे रहते है।

मै यहा एक ऐसा व्यक्तितत्व प्रस्तुत करना चाहता हूँ जो इन दोनो जवानो की छत्र-छाया मे पल रहा था। जिससे वह स्वय तो तनावग्रस्त था

ही, साथ ही सारे नगर की जनता इस भीषण बीमारी से अनछुई नही थी।

एक सम्राट था, उसके अहकार और स्वार्थ, अपने आगे उसे किसी के अस्तित्व का ही बोध नही होने देते थे। वह अपने आपको दुनिया का बेहतरीन सम्राट समझता था। नगर के लोग उसके पैर की जूती जैसे थे। किसी भी हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन और बौद्ध परिवार मे कोई भी धार्मिकानुष्ठान हो। कोई पारिवारिक मागलिक कार्य हो अथवा कोई सामाजिक उत्सव या शोक प्रसग हो, सम्राट को प्रजाजनो का निमत्रण मिलने पर वह अपने प्रतिनिधि के रूप मे अपनी जूतिया भेज देता था। इससे सारी प्रजा परेशान थी परन्तु विरोध भी नही कर सकती थी। सच भी है पिजरे मे बद शेर के गुर्राने - गरजने का मतलब ही क्या निकलता था। फिर भी प्रजा के हृदय क्षितिज पर उठी हुई अशाति की बदली ने फैलकर शीघ्र ही समूचे नगर को अपनी छाया से ढक लिया। सभी मिलकर उत्कंठित थे सम्राट को सबक सिखाने के लिए। वह भी वक्त आ गया।

आज सम्राट का आमत्रण था प्रजाजनो को राज पुत्र की शादी मे सम्मिलित होने का। सबने मिलकर विचार - विमर्श किया। अब हम अधिक बर्दाशत नही कर सकते, हमे स्वर्ण - अवसर मिला है तनाव मुक्त होने का, सम्राट के अहकार को चूर करने का, उसे सबक सिखलाने का, इसे हम चूकने नही देगे। Tit for tat उसे भी ज्ञात हो जाना चाहिए हमारी प्रजा कितनी हाईपर टेन्शन मे है। सारे नगरवासियो ने मिलकर अपनी - अपनी जूतिया राजा के यहा भेज दी। साथ ही कहलवा दिया राजन्। माफ करना, हमारे पास वक्त नही है ये जूतिया ही हमारा प्रतिनिधित्व करेगी। राजा की आखे खुल गई, अह हिम की तरह गल गया। प्रजा को सुख शाति का मार्ग खुल गया। अहकार अशाति का सबसे बडा जिम्मेदार साथी है। जब - जब तनाव की स्थिति निर्मित हुई है तब - तब अहकार, असतोष और स्वार्थ बीच मे आये है, क्योंकि ये ही तनाव के बीज डालकर अशांति की फसल उत्पन्न करते है। अशाति नही शाति, असतोष नही सतोष, अहकार नही मार्दव के मार्ग पर चलने से 'तनाव', टेन्शन के बधन खुल सकते है।

टेन्शन मुक्ति का एक और कारगर उपाय है कार्योत्सर्ग। कार्योत्सर्ग

के मायने काय और कषाय का उत्सर्ग। जब आप शरीर के प्रति निर्मम हो जायेगे, तब शरीराश्रित सारी अपेक्षाओ के पर्वत ढह जायेगे। फलत किसी से शिकायत का अवकाश आपको नही मिलेगा और जब कषायो का उत्सर्ग हो जायेगा तब Ego और क्रोध, माया और लोभ भी पतझड की वाटिका के समान श्री सौन्दर्य विहीन हो सिसकने लगेगे। तब वहा छा जायेगा शाति का साम्राज्य, वहाँ आयेगी उन्मुक्त हसी की फुहार। आज आदमी न ठीक से हस पा रहा है, न ही रो रहा है, उसकी खुशी उसकी मुस्कुराहट ऐसी लगती है मानो इसने किसी से उधार ले ली हो।

कार्योत्सर्ग की मुद्रा मे ऊपरी सबध खत्म हो जाते है सारा प्रवाह जल की भाँति नीचे की ओर मुड जाता है। रागद्वेष, मोह, मद, स्वार्थ, काम, क्रोध, लोभ, घृणा की जो हवा आपके भीतर घुमड रही है, जिसकी दुर्गन्ध कार्बन से आप घुट रहे है उसे कार्योत्सर्ग के पप से दूर निकाल फेको। भीतर शुद्ध आक्सीजन भर अमृत का निर्झर बहाओ। जीवन मे कभी तनाव उत्पन्न नही होगा। यह तनाव प्रतिपल शरीर, आयु, बुद्धि, मन और कार्यक्षमता को घुन की तरह खा रहा है, व्याधियो को आमत्रण भेज रहा है अत इससे बचने के लिए माताए अपने बच्चो, पोता-पोतियो एव परिवार सदस्यो को तनाव की स्थिति मे न दुग्धपान कराये, न ही भोजन कराये। कारण, तनाव के विषैले हारमोन्स भोजन के साथ पेट मे पहुच प्रदूषण पैदा करते है। रक्तकणो को हर प्रभावित कर व्यक्ति को चिडचिडा बना देते है।

यदि महिला, गृहिणी तनाव की स्थिति मे, जल्दबाजी मे, उतावलेपन मे भोजन निष्पन्न करेगी एव उस भोजन को स्वय खायेगी और परिवारिक सदस्यो को खिलायेगी तो तनाव के सारे सस्कार भोजन के साथ भीतर इतने Deep उतर जायेगे फिर शाति मिलना मुश्किल हो जायेगा। शाति के लिए तनाव मुक्त होना जरूरी है। सो वात्सल्य, स्नेह और प्यार के साथ भोजन बनाये, करे एव सबको कराये। साथ ही साथ तनाव के मूल कारण बहिरग क्षेत्र-वास्तु आदि दसो पुत्रो से अटेचमेन्ट कम करे। अन्त पुर मे हृदयासीन आशका, अहकार, बैचनी, स्वार्थ आदि दसो अपत्यो से मुक्त होने के लिए टेन्शन मुक्त महापुरूषो की शरण लीजियेगा। ओम् शान्ति। ■■

आओ! विचारें विचार पर

विश्व के समस्त परिवर्तनो के मूल कारण विचार 'ही है, प्रत्येक विचार उस नन्हे से बीज के समान है जिसमे एक महान वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति छुपी है। यदि उस बीज को उचित वातावरण मिले तो निश्चय ही वह हमे सामर्थ्यशाली बना सकता है। विश्व का उत्पादक मूल स्त्रोत या केन्द्र हमारे विचारो को ऊँचा खीचने का प्रयत्न करता रहता है। यदि हम अपने विचारो को उनकी स्वाभाविक गति के अनुसार चलने दे तो निश्चय ही हमारा जीवन परिवर्तित होकर कल्पनातीत उत्कृष्ट स्थिति मे आ जावेगा।

अध्यात्मशास्त्र का अटल एव अनुभव सिद्ध सिद्धात है कि मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, वैसा वह नित्यप्रति जीवन मे सोचता विचारता, ध्यान करता है, वैसा ही उसका भाग्य तथा फल निर्माण होता है। हमारा प्रत्येक विचार हमारे पथ मे काँटे या पुष्प बिखेरता है। हम जैसा चाहे, अपने विचारो की शक्ति द्वारा बन सकते हैं। कोई भी विस्फोटक पदार्थ मनुष्य के प्रचड विचारो से बढकर शक्ति नही रखता है। **विचार दिव्य शक्ति है।** विचारो द्वारा ही हम शक्ति का केन्द्र मन से निकालते हैं और अपने सबसे बडे मित्र बन सकते हैं। वह शक्ति विचार है जो सारे ससार को चला रही है। जहा विचारो की ऊचाई है वहा स्वर्ग है और जहा विचारो की मलिनता है वहा नरक है। विचारो मे उतर कर ही हिसा और अहिसा को सक्रिय होने का अवसर मिलता है।

विचार की रचना

विचार की रचना परमाणुमयी है। ये आकाश मे व्याप्त ईथर तत्व के सूक्ष्म कण समूह है जिनकी रचना मन के अदृश्य स्तर मे होती है। ईथर पदार्थ समग्र विश्व मे प्रचुरता से व्याप्त है। इसी माध्यम के अनुसार विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजे जा सकते हैं। दृढ इच्छा शक्ति एव मनोबल द्वारा अपने विचार दूसरे मस्तिष्को मे भेज सकते हैं। विचार भी यात्रा करते है। वे विचारक के मन से अपनी यात्रा प्रारभ करते है और एक - दूसरे

के मन को आन्दोलित करते हुए अपनी यात्रा सम्पन्न करते है। ईश्वर का अदृश्य माध्यम विचार सचालन क्रिया मे सबसे बडा सहायक सिद्ध हुआ है।

विचार हमारे मस्तिष्क की उपज है। अतएव व्यक्ति की उन्नति या सफलता का आधार उसके मस्तिष्क के विकास पर निर्भर है। यदि उचित प्रयास न किया तो मस्तिष्क अविकसित अवस्था मे रह जाता है तथा सदैव दूसरो का दास बना रहता है। जरा-जरा सी बातो पर दूसरो की राय के भिखारी बने रहना उचित नही है। इससे मस्तिष्क की दृढता तथा यदि महत्ता खत्म हो जाती है किन्तु जिज्ञासु वृत्ति को केन्द्र मे रखकर विचार उसकी परिधि की प्रदक्षिणा देते है तो मस्तिष्क पुष्ट हो जाता है।

हमारी मानसिक शक्तियाँ इच्छा शक्ति पर निर्भर है इसलिये प्रत्येक समय मस्तिष्क पर कडी दृष्टि रखना चाहिये। जब तक मन किसी विचार को पूरी तरह ग्रहण नही कर लेता, जब तक उसको अतर की अचेतन वृत्ति स्वीकार नही कर लेती, जब तक वह हमारे मस्तिष्क का एक अश नही बन जाता या जब तक वह हृदय पटल पर दृढता से अंकित नही हो जाता, तब तक वह विचार वास्तविक स्थूल स्वरूप धारण नही कर सकता। उस विचार को सत्यस्थ होकर हमारे मन की एक स्थाई वृत्ति बन जाना चाहिये। 'स्वेच्छित-आत्मसकेत' इसी रीति का नाम है। जो उत्तम विचार हम मन मे अंकित करते है उन्ही को आत्मसकेत कहते हैं। इच्छा शक्ति ही विचार उत्पन्न करने की शक्ति है और विचारो से ही इस शक्ति का निर्माण होता है। इसलिये इच्छा शक्ति कम होने पर ऐच्छिक विचार निर्माण करना कठिन हो जाता है, क्योंकि भय के विचार से हमारी भावोत्पादक शक्ति निर्बल हो जाती है। स्वार्थी, सकीर्ण और सकुचित विचार हमारी शान्ति, सुख और विजय के शत्रु है।

विचार दारिद्रय

यो तो ससार मे अनेक निद्य वस्तुऐं मनुष्य का पतन करती है, किन्तु शायद दुनिया की सबसे निकृष्ट वस्तु है- विचार दारिद्रय। विचार दारिद्रय ने आज अनेक व्यक्तियो को दारिद्रय की कठोर श्रृखलाओ मे जकड रखा है, उनमे कुत्सित सकीर्णता, सीमा बधन तथा सकुचितता की क्षुद्र वृत्तियाँ

उत्पन्न कर दी है, मानव जीवन मे एक विषम अधकार फैला दिया है। विचार दारिद्रय ने मानव समाज का बडा अपकार किया है। विचारो की दरिद्रता का परिवर्तन किए बिना जो भी परिवर्तन होगे वे मनुष्य की अशान्ति की दिशा मे ही ले जायेगे।

यह एक निश्चित अकाट्य, निर्विवाद सत्य है कि विचार की दरिद्रता के कारण मनुष्य दरिद्र बनता है। अपने अत करण मे न्यूनता, गरीबी, असमर्थता की वृद्धि करता है। दरिद्रता की दास वृत्ति बहुत कुछ मनुष्यो के विचारो के परिणाम स्वरूप है। हर्ष का विषय है कि धीरे-धीरे मनुष्यो को विचार की अदभुत शक्ति का ज्ञान होता जा रहा है और इस तथ्य पर पूर्ण विश्वास हो गया है कि व्यक्तियो को निकृष्ट बनाने वाले उनके विचार है।

सकीर्ण विचारो के कारण मनुष्य की शक्तियॉ पगु होती है। उसे निकट भविष्य मे अपनी दुर्गति होती हुई प्रतीत होती है। अत करण मे कभी शान न होने वाला अतर्द्वन्द्व प्रारभ हो जाता है। विचार दारिद्रय बढ जाने पर मनुष्य भिखारी बन जाता है। वह अपनी शक्तियो के प्रति शंकित हो उठता है। उसका आत्म विश्वास उठ जाता है और वह असमर्थ बन जाता है।

विचारो का स्वभाव

विचारो का स्वभाव है कि उनका अतिथि सत्कार करो तो वे पुष्ट होते है, बढते हैं, विकसित होकर नव जीवन निर्माण करते है। यदि उन्हे दुत्कार दो या उनको बेइज्जत कर दो और उनकी परवाह न करो, तो वे चले जाते हैं मृत्यु को प्राप्त होते है। ऐसे विचारो को अपना मित्र समझो, जिनसे अच्छी आदत बनती हो, उत्तम स्वभाव का निर्माण होता हो, उन्ही का बार-बार चितन करो। अतिथि सत्कार करो। इन भव्य विचारो का जीवन की प्रत्येक घटना पर बडा प्रभाव पडेगा। मनुष्य का जीवन घटनाओ का समूह है और ये घटनाएँ हमारे विचारो के परिणाम है।

जैसे सूर्य की किरणे आतिशी शीशे द्वारा एक ही केन्द्र पर डाली जाती है, तो अग्नि उत्पन्न हो उठती है, उसी प्रकार विचार एक केन्द्र पर एकाग्र होने से बलवान बनते हैं। हमारी विचार शक्ति की ताकत हमारे मन की एकाग्रता पर निर्भर है। बिना एकाग्रता के मन मे बल नही आ सकता जिस

व्यक्ति ने भी इस ससार मे महत्ता प्राप्त की है उनका मत्र विचारो की एकाग्रता ही रहा है। केवल परमार्थ क्षेत्र मे ही नही, ससार के व्यवहारिक कार्यो मे भी एकाग्रता की बडी आवश्यकता पडती है।

मनोवेत्ताओ का अनुभव है कि हमारा प्रत्येक विचार मस्तिष्क मे एक मार्ग बनाता है तथा उस निर्दिष्ट मार्ग पर वैसे ही अन्य विचार आकर उठते रहते है। पहले एक छोटी सी पगडडी बनती है, फिर वही बढकर वृहदाकार की हो जाती है। पहले जब कुविचार मन मे प्रवेश करता है तो एक मामूली सी लकीर बनाता है, फिर वैसे ही मिथ्याविचार, आलस्य निरूद्यमता आदि तमोगुणी भाव प्रकट कर मानसिक मार्ग को और भी बडा बनाते है। बार - बार वैसे ही विचार आने से वे स्वभाव बन जाते है। सुख तथा दु ख हमारे इन मानसिक मार्ग को और भी बडा बनाते है। बार - बार वैसे ही विचार आने से वे स्वभाव बन जाते है। सुख तथा दु ख हमारे इन मानसिक मार्गो की ही प्रतिक्रयाएँ है।

दुष्ट विचार सबसे बडा शत्रु है। प्राणी की हत्या करने वाला शायद उसी की हत्या करता है किन्तु विचारो की हत्या करने वाला न जाने कितने ही प्राणियो की हत्या का हेतु बन जाता है। जब तक विचारो के नए झरोखे नही खुलेगे जीवन मे सत्य का प्रकाश नही आ पायेगा। यदि आप दुष्ट विचारो से बचना चाहते है तो निद्रा से पूर्व आत्म निरीक्षण कीजिए। सोचिए कि आज आपने क्या बुराई की, कौन - कौन दुष्ट विचार आपके मन क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए ? आज आपसे कौन - सा पाप हुआ ? किस - किस की निदा की ? किससे ईर्ष्या की ? किसका जी दुखाया ? आदि ऐसे जो - जो पाप हुए हो उनके लिये हार्दिक पश्चाताप कीजिए तथा भविष्य मे न करने का सकल्प लीजिए।

क्रियात्मक विचार की न्यूनता

विचार ससार की सबसे बडी शक्ति है, किन्तु असगठित, अव्यवस्थित और काल्पनिक किताबी विचार केवल दिल बहलाव, मनोरजन की सामग्री है। जिस प्रकार हम कुछ देर के लिये कोई पुस्तक लेकर अपना मनोरजन कर लेते है, उसी प्रकार इन शुभ विचारो मे रमण कर कुछ देर के लिये

हम उनकी शक्तियो पर चमत्कृत हो लेते है।

हमारी सबसे बडी कमजोरी यह है कि हम उन विचारो को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान नही करते। पुस्तको मे वर्णित स्वर्ण सूत्रो को कार्य रूप मे परिवर्तित करने के लिये प्रयत्नशील नही होते। उनके अनुसार जीवन को नही मोडते। शिक्षाओ पर दत्त चित्त, एकाग्र दृढता पूर्वक अमल नही करते। अपने आचरण को उनके अनुसार नही बनाते। केवल पढ कर या जानकर ही सतुष्ट हो जाते हैं। आजकल अधिकाश जिज्ञासु तथा विचारक क्रियात्मक विचार की न्यूनता के कारण वाछनीय परिस्थिति उत्पन्न नही कर पाते।

विचार के दो रूप है एक काल्पनिक तथा दूसरा क्रियात्मक। काल्पनिक तथा क्रियात्मक स्वरूपो के उत्तम सामजस्य से ही समूचा विचार बनता है तथा उनमे पूर्ण उत्पादक शक्ति का सचार होता है, अभिलाषा, विचार, योजनाएँ तब तक उत्पादक नही बन सकती, जब तक वह मनुष्य की क्रिया के रूप मे पूर्ण रूप से न बदल ही जाय। अभिलाषा का क्रिया के साथ सम्मिलन होने पर उत्पादक शक्ति का प्रादुर्भाव होना है तथा शीघ्र ही फल की प्राप्ति हो जाती है। यह क्रियात्मक विचार प्रणाली कहलाती है। जिस विचार धारा मे जीवन विकास का क्रम, नये निर्माण का अदम्य पौरूष, एव आनन्दोपलब्धि की क्षमता न हो उस विचार या परम्परा को निभाने का आग्रह अनुचित है। वे ही विचार महत्वपूर्ण हो सकते है। जो जन - जन के जीवन की समस्याओ को सुलझाने मे समर्थ होने है। अनायास धनुष से छूटा तीर कभी - कभी सही लक्ष्य भेद कर देना है उसी प्रकार कभी - कभी सहज रूप से हृदय मे उभरा भाव / विचार व्यक्ति के जीवन को आमूल - चूल बदल देता है।

वास्तव मे मानव जैसा सोचता है, वैसा बन जाता है। उसकी वृत्तियो, नीतियो और व्यवहारो पर उसके विचारो का प्रभाव पडता है। इसलिए कहा है कि विचारो की शक्ति की थाह पाना बहुत मुश्किल है।

विचार प्रणाली को आत्मसात करके इच्छित लक्ष्यो की प्राप्ति की जा सकती है। आवश्यकता है दृढ इच्छा शक्ति की। आखिर इसके लिये प्रेरणा देने वाला मूल तत्व तो 'विचार' ही है ना? ■■

चिता और चिन्ता

आज विश्व मे मानव के पास सुख के सर्व साधन उपलब्ध है। रहने के लिए बडे-बडे बगले है, पहनने के लिए सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, खाने के लिए नाना तरह के स्वादिष्ट व्यजन-भोजन, सैर-सपाटे, मौज-मस्ती के लिए एक से एक गाडियाँ। आकाश तक उडने के लिए ऐरोप्लेन, विश्व भर को घर बैठे जानने के लिए ट्राजिस्टर, समाचार पत्र एव टेलीविजन है। हजारो-हजार किलोमीटर दूरी पर बैठे व्यक्तियो से वार्तालाप करने के लिए टेलीफोन, वायरलैस तथा उनसे साक्षात् बातचीत का आनद एव सम्पर्क लिए टेलीपैथी भी हमे वैज्ञानिको के खोजी मस्तिष्को ने दे दी है।

आपके सामने अब प्रश्न चिन्ह है? कि इन तमाम भौतिकताओ के अभाव मे पल रहे हमारे पूर्वजो का जीवन शान्त था, या इन भौतिकताओ के बीच मे बैठे आपका जीवन शान्त है? सोचना आपको ही होगा। यदि उनका जीवन शात था तो क्या वजह थी? कि अभावो मे भी वे शाति का अनुभव करते थे और क्या वजह है कि आप सद्भावो मे भी उस परम तत्त्व से रीते हैं। विज्ञान की प्रगति बुरी नही है, बशर्ते वह धर्म के साथ हाथ मिलाकर चलती हो। बुराई तो तब होती है, जब वह 'धर्म की लगाम' गलत हाथो मे पडकर उच्छृखल एव बेलगाम हो जाती है। वैज्ञानिक नये-नये आविष्कार तो कर सकते है, लेकिन उन आविष्कारो पर नियत्रण और उनका सम्यक् उपयोग, वैज्ञानिको के नही, आपके हाथो मे है।

आज विज्ञान विवेक-दृष्टि से अन्धा है और आपका अध्यात्म आचरण से लगडा गया है। यदि आज भी अधे विज्ञान को लगडे अध्यात्म पर बिठा कर चले तो मै समझता हूँ आपका कल्याण तो हो ही सकता है। और यदि इस प्रकार का सोच हर इन्सान का हो जाये तो विश्व कल्याण तो सुनिश्चित ही है। पर सोचे कौन और क्यो? आपका अध्यात्म तो केवल लगडा है, वह चल तो सकता है, चलना भी चाहता है परन्तु आपका मन तैयार नही होता, क्योंकि मन 'ज्वर पीडित' है। को वा ज्वर प्राणभृता हि? चिन्ता। शिष्य ने पूछा- भते! प्राणधारियो के लिए कौन सा-ज्वर सदा पीडित

करता है। भगवान् ने उत्तर दिया - चिन्ता। 'चिन्ता सम नास्ति शरीर शोषणम्' चिन्ता इन्सान का शोषण करती है। बुढापे का उम्र से कोई खास रिश्ता नही है। असमय मे अल्प उम्री को भी चिन्ता बुड्ढा बना देती है इसका स्वभाव ही ऐसा है - 'चिन्ता जरा मनुष्याणा।'

चिन्ता बध्यउ सयल जग, चिन्ता किणहि न बद्ध।
जे नर चिता बस करइ, ते मानस नहि सिद्ध।।

आश्चर्य और खेद है इस ढाई अक्षरी शब्द ने सारे विश्व को बाध रखा है लेकिन स्वय स्वतत्र है, किसी से भी बधा हुआ नही है। यदि किसी ने इसे बाधा है तो वह मनुष्य नही, वह मनुष्य तो सिद्ध है, सिद्ध जैसा है। किसी नीतिकार ने कहा है - हे चिता! तू ससार मे क्यो आई? जहॉ तेरा समागम होता है वह मनुष्य तेरे बाणो से घायल हो विह्वल सा किकर्त्तव्य - विमूढ हो जाता है। स्वगत ब्रह्माण्ड को हिला देने वाले प्रचण्ड - पौरूष को भूलकर तेरा दास बन दुष्प्रवृतियो का शिकार हो जाता है। शक्तिशाली श्रीमान, धीमान्, बलवान, कर्मठ कार्यकर्त्ता, शास्त्रज्ञ सभी की गति मे तू पर्वत की तरह अवरोधक है, ये सब तेरे सामने विवश है।

हे चिन्ता! तेरा चरित्र किसी को भी प्रिय नही। तेरा वचना पूर्ण व्यवहार किसी के लिए भी नो सुखद नही है कारण तू जिसके पास पहुचती है, जिस आसन पर तू आसीन होती है, उस आसन सहित, आसन के आधार को भी जला डालती है। अपनी आग मे निरन्तर धधकती रहती है और मजे की बात तो यह है कि जो शालीन घट (लोग) होते है उनसे तू अपना विषैला, कडुवा धुॅआ भी बाहर नही निकलने देती, वे वही घुटन मे घुटते रहते है। कुछ ऐसे आसन, घट होते है जिनकी दरारो से तेरी उपस्थिति के द्योतक - धूम - कण बाहर आ जाते है जो परिवार को ही नही, सारे नगर को विषाक्त कर देते है। अफ्रीका मे नरभक्षी वृक्ष पाए जाते है, जो उसके पास से निकलता है उसे वे अपनी शाखाओ को झुकाकर जकड लेते है। शरीर का सारा रक्त चूस लेने पर रस निकाले गए ईख के छिलके की तरह फेक देते है।

हे चिन्ता! तेरा चरित्र भी तो ऐसे ही नरभक्षी वृक्षो की तरह है। तू तो साक्षात् बिना मरे जीवित लोगो की चिता है। चिता फिर भी अच्छी है वह तो मृत को और वह भी एक बार जलाती है किन्तु तू जीवित को और ऊपर से प्रतिपल जलाती रहती है। तुझमे और उसमे कितना अन्तर है।

अन्तेवासी ने गुरू से पूछा - को भेदश्चिताचिन्तयो?

गुरू ने उत्तर दिया -

चिता चिता समायुक्ता, बिदु मात्र विशेषत ।

सजीवे दहते चिता, निर्जीवे दहते चिता।।

चिता और चिता दोनो मे एक 'बिन्दु' मात्र का अन्तर है लेकिन यह बिन्दु कितना शक्तिशाली है। चिता मे तो केवल निर्जीव को जलाने का सामर्थ्य है लेकिन चिता ने तो सजीव भी जला डाला। चिता विष है, जो शरीर को शुष्क करता है, मास रस को चूसता है, रक्त विषाक्त करता है एव शरीर पर दाहक प्रभाव डालता रहना है। व्यक्ति का रक्त चिना की भट्टी मे नपने रहने से इतना उष्ण हो जाता है, कि उसका मन - मस्तिष्क सदा उत्तेजिन रहना है। सारे स्नायु मडल, ज्ञान ततु रक्त वाहिनी धमनिया, क्रियाशील नाडियॉ सभी उतेजिन रहते है। न वह सो सकना है, न खा सकता है, न चैन से जी पाता हे और न ही चैन से मर पाता है। कारण चिना की बन्हिवेदी पर उसके सारे सुख स्वाहा हो जाते है। चिना कितनी खतरनाक हे कि अपने ही शरणप्रदाना को मरण की शरण भेज देती है। इसका दिल पर सबसे बुरा असर पडना है। दिल घबराने लगता हे और वह स्थिति भी आ जानी है जब इसान का Heart attack (हार्ट अटेक) हो जाना हे।

कितना बडा सत्य है। इसान स्वतन्त्र पैदा होना है, किन्तु ज्यो - ज्यो बडा होता है, त्यो - त्यो चिता के बधनो मे जकडता चला जाना है। आयुष्य पर्यत बधनग्रस्त हो जीवन वृत की इति श्री कर मृत्यु की गोद मे समा जाता है। चिता से एक ओर घातक बीमारी जन्म लेती है जिसे कहते है अनिद्रा या उन्निद्र। नीद लेने के लिए गोलिया लेना कितनी मूर्खतापूर्ण बात है। नीद की गोलिया अनिद्रा दोष, रोग को बढाती है। कारण अधिक या रोज उनका

सेवन करने से उनकी प्रभावक शक्ति कम हो जाती है। इस रोग को रोकने के लिए केवल दो उपाय है।

पहला चिता के कारणो का अन्वेषण किया जाए और दूसरा नीद लाने की व्यर्थ कोशिश न की जाये। आप जितना सोने का प्रयत्न करते है, चेष्टा करते है उतना ही आप मस्तिष्क मे रक्त को रोके रखते है। रक्त को उन्मुक्त हो बाहर नही जाने देते। जब मस्तिष्क रक्त से भरा हो तो आप लाख प्रयत्न करने पर भी नही सो सकेगे। आपने ध्यान दिया होगा, यदि शानिपूर्वक भोजन किया जाए तो भोजनोपरात निद्रा आने लगती है। क्या कारण है ? अन्न का प्रभाव ? अन्न का नशा ? नही। ये दोनो ही कारण नही, कारण है, रक्त का मस्तिष्क से बहकर पाचन - सस्थानो के अग प्लीहा, यकृत, आमाशय, वृहदात्र आदि मे विभाजित हो जाना। आप जब शयन कक्ष मे विश्राम हेतु पहुचते है, तब चिन्ताओ का बोझ, आफिसो की फाइले, गृहस्थी की गदी रिपोर्ट लेकर, तब आप ही कहिए निद्रा कहा से आयेगी ? उसके आने के मार्ग पर तो आपने चिन्ताओ की फाइले पटक दी है। शयनकक्ष (सोने का स्थान) Gold Place है चितालय नही। यहॉ पर चिता, भय, जलन ईर्ष्या, मन को घायल करने वाले आक्रामक और अप्रिय विचारो को स्थान नही है। इनकी मरम्मत यहा नही हो सकती है।

आप जानते है जहा गाडी के टायरो की मरम्मत होती है, क्या वहॉ वस्त्रो को रगा जा सकता है ? यदि नही तो जहॉ शारीरिक चिकित्सा होती है वहॉ चिता की खुली - बद फाइलो को कैसे देखा जा सकता है। **शयनकक्ष तो शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विश्राम के आलय है**। पुन ऊर्जा सचित करने, बेटरी चार्ज करने का एकमात्र स्थान है। मस्तिष्क की जो स्लेट दिनभर की थकान कुढन, ऊब चिडचिडाहट मे भरी है उसे साफ करने की लेबोरेटरी है। जो चिन्ता लेकर शयनकक्ष मे जाता है, उनकी चिन्ता नीरव वातावरण पा उसमे खुलकर खेलने लगती है क्योंकि उनका खुला नृत्य देखने वाले केवल आप ही होते है। उस समय उन पर किसी का हस्तक्षेप नही रहता। अस्तु रात्रि के अधेरे मे चिन्ताओ के दैत्य जुलूस बनाकर आपके सामने से गुजरने लगते है। आप घबरा जाते है तो झट गोली लेने की सोचते

है। अथवा लम्बी - लम्बी राते करवटे बदलकर निकाल देते है। अब जब आप त्रस्त मस्तिष्क लेकर उठेगे, निश्चित किसी से झगडेगे, आपकी शाति भग होगी और परिवार की भी। फिर आप तनाव से भरकर घर से निकल जायेगे, व्यापारियो से, सहकर्मियो से झगड उठेगे। आपकी सृजनशीलता एव शारीरिक व मानसिक उत्साह खडित हो जायेगा। असफलता की बारूद लेकर पुन चिडचिडे घर लौट आयेगे और सारा एकत्रित गुबार या तो गृहलक्ष्मी पर उतरेगा, या निरपराध शिशु या सर्वेन्टो पर। चिन्ता का दुष्चक्र बडा वक्र है, इसमे बारहसिघा की तरह इन्सान फसता जाता है, और अन्त मे कहता है महाराज! गृहस्थी बडी गदी है।

पश्चिम निमाड प्रान्त (म प्र) मे मेरे पास एक मेरा भक्त आता था। कहता था महाराज क्या करूँ रोज आने की सोचता हूँ लेकिन आ नही पाता। मैने पूछा क्यो? बोला गुरूदेव मेरे पास इतनी अधिक चिन्ताए है आप तो जगह - जगह भ्रमण करते हो बताओ कोई व्यक्ति ऐसा हो, जिसे चिता की जरूरत हो। उसे मै एक दो ट्रक भर चिन्ताए मुफ्त मे सप्लाय कर दूँ। उसके चेहरे को देखकर मेरा मन भी द्रवित हो उठा। मैंने कहा, भैया - तुमने चिन्ताओ को ओढा ही क्यो? सच बताओ चिता पहले तुम्हारे पास आई थी या आपने उसके साधनो को अपनाकर उसे निमत्रण भेजा था।

महानुभाव यह जिदगी छोटी सी है। उस पर भी वह अनिश्चित और चचल है। चुलुम्पा जैसी छोटी सी देह पर ऐरावत जैसी विशालकाय चिताओ के बोझ को क्यो लादते हो? क्या नही जानते, चुलुम्पा की क्या स्थिति होगी। वह समझ गया, शायद आप भी समझ गये होगे। महानुभाव! क्या - क्या कहूँ? और कैसे कहूँ? किसलिए आप अल्प जीवन के लिए चिन्ताओ के दुष्चक्र मे फसते हो? चिन्ता को छोडो, यह हमारी अपनी भूल - भ्राति है। हमने अपनी अज्ञानता से इसे बनाया है, इसका त्याग भी आप स्वतत्रता से कर सकते है। चिता के त्याग के लिए कोई तपस्या की आवश्यकता नही है। कुछ उछल कूद भी नही करनी। सोच लो जो प्राणी इस पृथ्वी पर आता है गर्भ से ही अपना भाग्य, आयु, धन, कर्म और विद्या साथ लेकर आता है, फिर मै व्यर्थ उसकी चिता क्यो करू। चिता पाप है, अधर्म है, आत्मघाती है, इसके विष का वमन करो फिर देखो गदी गृहस्थी भी 'नन्दन वन' बन जायेगी। ■■

गर्भपात ! गर्भपात !! गर्भपात !!!
इतिहास तुझे कभी माफ नही करेगा।

इन दिनो शाकाहार एक बहुचर्चित विषय है। देश मे सर्वत्र - शाकाहार की महत्ता और उपयोगिता पर व्यापक विचार - विमर्श चल रहे है, जिससे पता लग रहा है, कि मासाहार से पर्यावरण को कितनी क्षति पहुच रही है। सबसे पीडादायी तो यह है कि आदमी उन तथ्यो, जानकारियो को रखने हुए भी बे - खबर है, जिनका उसके वैयक्तिक और सामाजिक जीवन पर बेशुमार प्रभाव पड रहा है, परिवार पाशविक वृत्ति के शिकार होते जा रहे है। घर कत्लखाने बनते जा रहे है, पूरा का पूरा देश हिसक वातावरण मे नहा रहा है।

स्थिति बडी गभीर है, मासाहार की रणनीति, विज्ञापन - प्रचार का बडा शोर है, और धर्म की सारी कथाएँ बे - असर होती जा रही है। मानव सवेदना शून्य होता नजर आ रहा है कारण कि दूर - दर्शन ने अच्छी तरह से झोपडी से भवन तक, गली से मोहल्ले तक, गाव से शहर तक न जाने कहाँ - कहाँ तक अपनी पहुच बना ली है। सरकार विदेशी मुद्रा की मृग तृष्णा मे एक स्थान पर बैठे - बैठे मास का द्रुत गति से प्रचार कर उसके अस्तित्व को अन्तर राष्ट्रीय स्तर पर फैला रही है। पूर्ण रग - बिरगे चित्रो एव गीतो द्वारा सुकुमार मतियो के चित्त मासाहार की ओर आकर्षित कर रही है।

सिगापुर स्थित एशियन मास कम्युनिकेशन रिसर्च इन्फर्मेशन सेटर के दूर - दर्शन कार्यक्रम, सर्वेक्षण के अनुसार भारत मे हिसा की 74 प्रतिशत व्यापकता वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।

दुर्भाग्य है 20 वी सदी के लोगो का जो आ रहे गर्भपात के दर्दनाक ऑकडो पर किचित् भी चिन्तित नही है। बावजूद भारत सरकार इस घिनौने महापातक को वैध करार देकर अपनी प्रगति का फरमान जारी कर रही है। अह की घूट पीकर अपने आप को विकासशील देशो मे परिगणित कर रही है। क्या यही है देश का विकास ? क्या इसी का नाम है प्रजातन्त्र ? क्या इसी को माने हम बुद्धि का विकास ? या कि सर्वनाश ? क्या माने ? आज

सैक्स परीक्षण मे मादा भ्रूण का पता चलने पर गर्भ मे ही हत्या कर देने का चलन बढता जा रहा हैं। अकेले जयपुर मे इस तरह हर साल नष्ट होने वाले 3500 मादा भ्रूण इसका सबूत है।

यहॉ यह बताना होगा कि डॉक्टरो ने व्यक्तिगत मुनाफे के लिए इस प्रथा को बढावा दिया है। सन् १९७१ मे पारित मेडिकल टर्निमेशन ऑफ प्रेगनेसी एक्ट का दुरूपयोग किया है तथा आज भी कर रहे है। क्या वे इस बात को नही जानते कि सैक्स का पता लगाने वाली आधुनिक नूतन विधि यो से गर्भवती महिला और कोरव मे पल रहे शिशु के स्वास्थ्य पर कितना गम्भीर असर पड रहा है। गर्भपात से होने वाली मौतो की सख्या धरती पर नर्क का दृश्य उपस्थित कर चिन्ताजनक ढग से बढ रही है।

महानुभाव! सवाई मानसिह मेडिकल कॉलेज मे शरीर सरचना विभाग के प्रोफेसर डॉ. एस. जी. काबरा ने अपनी पुस्तक 'मिसकैरीयेज ऑफ मेडिसन' मे स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि पहले बाकायदा भ्रूण की स्थिति के बारे मे पता लगाया जाता है उसके बाद मादा भ्रूण को मार दिया जाता है।

बी बी सी द्वारा निर्मित फिल्म 'लेट हर डाई' (उसे मरने दो) मे भी जैसलमेर (राजस्थान) के एक गाव का जिक्र है, जहा बच्ची के जन्मने ही उसे मार दिया जाता है। इसे सुनते ही रोम-रोम खडा हो जाता है, हृदय वेदना से भर उठता है, और मन इस भयकर पीडा को बर्दाश्त नही कर पाता।

कितनी बेहूदी बात है कि विदेशो मे गर्भपात के खिलाफ जग छिडा हुआ है और हमारे देश मे इसे उत्साहित करने के लिए स्टेशनो पर अखबारो मे इश्तहार तथा विज्ञापन छपते है। क्या हम इन आधुनिक नर कत्लघरो के बारे मे कभी चिन्तित हो पायेगे?

देखिए! बी. बी सी की एमिली बुचानन साप्ताहिक 'एसाइनमेट' कार्यक्रम मे सुश्री बुचानन तीसरी दुनिया के ज्वलत मुद्दे उठाती रही है। अल्जीरिया मे मुस्लिम उग्रवाद का भडकना हो या जिम्बाब्वे का अकाल या फिर लातिनी अमेरिका का पश्चिम द्वारा शोषण, एलिनी के कार्यक्रम तूफान उठाते रहे है। ऐसा ही बडा तूफान उठाया उनकी डाक्यूमेटरी 'लेट हर डाइ' ने। इस वृत्तचित्र मे राजस्थान और तमिलनाडु को विशेष रूप से कवर' किया

गया और दिखाया गया कि किस तरह मादा भ्रूण नृशसता पूर्वक गर्भ मे मार दिये जाते है।

राजस्थान के जैसलमेर जिले के एक भाटी गाव मे बुचानन की कैमरा टीम ने 'लडाका कौम' की उस मनोवृति को समझाने का प्रयास किया है। वहा आज भी महिला को अनावश्यक बोझ की तरह लिया जाता है। यह फिल्म बी बी सी पर 2 अक्टूबर 93 महात्मा गाधी के जन्म दिन पर दिखायी गई। इस फिल्म की गूज भारत मे चाहे न हुई हो पर योरप खासकर स्वीडन मे व्यापक चर्चा का विषय बनी। फलत वैचारिक तूफान उठा। फिल्म मे महिलाओ ने साफ कहा कि वह मादा बच्चे को मार देने को ज्यादा तरजीह देगी बनस्पत उसे पाल-पोस कर बडा कर दहेज के जाल मे फसने के। एक पुरूष बता रहा था कि अगर उसका अगला बच्चा मादा हुआ तो गर्भपात से नही हिचकेगा।

फिल्म के बाद स्वीडन की प्रभावशाली ससदीय विदेश मामलो की समिति की सदस्य तथा सासद सुश्री माग्राथा विकलुड ने दर्द प्रकट किया कि भारत मे स्थिति बेहद नाजुक है। इस स्थिति मे स्वीडन को कुछ करना चाहिए। तब सुश्री विकलुड ने चेतावनी दी, कि अगर भारत मे मादा भ्रूण की रोक विषयक कानून नही बने तो स्वीडन आर्थिक मदद देना बद कर देगा। मानवाधिकार मत्री सुश्री अलिफसेसन ने भी इसमे अपनी सहमति प्रकट की, और उन्होने तो यहा तक कहा था कि सयुक्त राष्ट्र और मानवाधिकार सबधी एजेंसियो को भी आगे आना चाहिए और भारत को आर्थिक मदद बन्द कर देनी चाहिए। ज्ञात रहे। स्वीडन से भारत को विकासात्मक परियोजनाओ के लिए सबसे ज्यादा मदद मिलती है और राजस्थान को भी स्वीडन की 'सीडा' (स्वीडिश इटरनेशनल डेबलपमेट एजेसी) ने शिक्षा से लेकर वृक्षारोपण तक के लिए कोई दस अरब रूपये दिये है। इसमे छह सौ करोड रूपये की लोक जुम्बिश और शिक्षा कर्मी जैसी महत्वपूर्ण परियोजना भी शामिल है।

प्रभावक तो यह है कि स्वीडन की जनता मे इस फिल्म का प्रभाव इस कदर पडा कि हाल ही मे राजस्थान के दौरे पर आये सीड के अधिकारियो मे से एक अधिकारी राज्य (राजस्थान) के एक बडे प्रशासनिक अधिकारी

से भ्रूण परीक्षण पर पूछ बैठा। तो उसने सत्य का पर्दाफाश कर बताया, जिसका सीडी की टीम ने मादा भ्रूण हत्याओ को गम्भीरता पूर्वक लिया और सवाल भी उठाया कि जब नारी के साथ इतना अन्याय हो रहा है तो इसे रोका क्यो नही जा रहा? हमारा सामाजिक, आर्थिक उत्थान के लिए पैसा लगाने से क्या फायदा?

अरे मात्र पशु-वध पर चिन्ता व्यक्त करने वाले लोगो! जरा इस दर्द को भी झाककर देखो। ये सज्ञी पचेन्द्रिय (महिला) मनुष्य मारे जा रहे है, उन्हे तुम नजर अदाज किये जा रहे हो। उठो! जागो! उन अधम डॉक्टरो और सरकार को भारत माता की धरती पर रहने की क्षणभर की इजाजत मत दो। अन्यथा इस पाप के भागीदार, मूक समर्थन से आप भी माने जाओगे।

आप क्या सोचते है? क्या इन जघन्य कृत्यो ने समाज के सदाचार को नही उजाड दिया? क्या आगे चलकर भावी पीढी पर उसके अच्छे नतीजे होगे? इन तमाम हालातो के देखते हुए, वे लोग भी सम्हल जाये, जो छुपे रूसतम शादी से पूर्व ऐसे अक्षम्य, अमानवीय आचारो मे अपनी अहम भूमिका अदा कर रहे है। वे लोग भी ध्यान रखे जो सन्तान की परवरिश करने से कतराते है और काम पुरूषार्थ के लिए हरदम तत्पर रह गर्भ मे आये शिशुओ पर कहर बरपाते है और अन्धी दौड मे स्वय का जीवन दाव पर लगाये जाते है। जरा सोच ले, समझ ले, कि वे कौन-से नर्क का टिकिट लेना चाहते है? क्या आपने जीते-जी धरती को ही नर्क बना देने की ठान ली है? कृपया निर्णय कर शीघ्र ही बताएँ! नही तो फिर ऐसे लोगो को इतिहास कभी भी माफ नही करेगा।

वर्तमान युग यो तो सभ्यता के विकास का चरम युग माना जा रहा है किन्तु इस मानवीय कलक की कालिमा की क्रिया-कलापो का दृश्यावलोकन या श्रवण कर सहज ही मनुष्य को नर-राक्षस कहना उचित होगा। मातृत्व का इससे घोर अपमान और क्या होगा? वह नन्ही कली जो धरती पर जन्म लेने से पूर्व तोड-मरोड कर फेक दी जाती है? माँ के जीवन का इससे अधिक पीडादायी या क्रूरता पूर्ण क्षण और कौन सा होगा? जहाँ वह स्वय

ही अपनी ममता का गला घोट रही हो, या पुरूष समाज द्वारा घोटा जा रहा हो।

शैक्षणिक क्रान्ति के भौतिक युग मे माता - पिता स्वय अपने भ्रूण की कोख मे ही हत्या करवाने आमदा हो रहे है। बढती हुई जनसख्या के नियत्रण का यह कौन सा समाधान है कि 'लिग परीक्षण' के मध्य "मादापन" को अवाछित करारने के लिए भ्रूण की ही हत्या कर दी जाये ? मा की पवित्र कूख को बूचडखाना बना दिया जाये। कितने खेद की बात है, कहा तो इस महापुरूषो की पावन धरा से ब्रह्मचर्य, वासना - नियत्रण का पाठ विश्व ने सीखा और कहाँ आज अपनी कामुकता की अधभक्ति करता यही का भारतीय नागरिक, मनुष्य का और वह भी अपनी ही सन्तान का हत्यारा बन बैठा है। अपनी अहिसक परम पावन वसुन्धरा का धवल अचल कलकित कर रहा है। मानसिक पतन और चारित्रिक क्षरण के साथ सवेदन शून्यता की यह पराकाष्ठा है जो अपने दाम्पत्य जीवन के प्रेम की परिणति स्वरूप अपने ही अगज, सृष्टि के एक अग को निर्ममता से काट - काट कर टुकडे - टुकडे कर गर्भाशय से बाहर फिकवा रहा है। जब स्व - सन्तान के प्रति उसका हृदय उद्वेलित नही होता तब वह क्या किसी के गला घोटने मे हिचक सकता है ?

भ्रूण परीक्षण पद्धति का प्रारम्भ से उद्देश्य था कि स्वस्थ्य शिशु का जन्म हो और माता के जीवन की सुरक्षा की जा सके। परन्तु आज की इस पश्चिमी शैक्षणिक पद्धनि ने, बढते लिग परीक्षण केन्द्रो के उद्देश्य की ही हत्या कर दी। सर्वेक्षण आकडे लिग परीक्षण केन्द्रो की कलई खोल रहे है। अकेले बम्बई नगर मे सिर्फ एक वर्ष जेसी छोटी सी अवधि मे 30 हजार से 50 हजार लडकियो को जन्मने से पूर्व मृत्यु की महा शय्या पर सुला दिया जाता है। आप कुछ भी समझो। देश, समाज, राष्ट्र कुछ भी समझे, परन्तु मैं तो यही कहूगा कि मादा भ्रूण हत्या या गर्भपात सदियो से नारी समाज को शोषित एव दमन चक्र से कुचलते रहने का एक और आधुनिकतम वैज्ञानिक तरीका है। आज भी देश की जनसख्या की ताजा गणना मे 1000 पुरूषो की तुलना मे महिलाओ की सख्या 921 है।

जरा गौर से देखे, मानवता के इतिहास मे क्या कभी ऐसा अपनी सतान के प्रति नृशस हत्याकाण्ड देखा है।

(1) रेक्यूट पद्धति – नुकीले औजारो द्वारा शिशु के शरीर को छेद – छेद कर बाहर निकालना

(2) सीजेरियन पद्धति - 5 – 6 माह के भ्रूण को माँ का पेट काटकर बाहर निकाल कर फेक देना।

(3) चूसन पद्धति – ऐसा यत्र जो पहले भ्रूण का समस्त रक्त चूसता है और जब उसका शरीर मास का लोथडा मात्र शेष रह जाता है तो उसे नुकीले औजार से काटकर फेक दिया जाता है।

(4) क्षारीय पद्धति – एक क्षार पदार्थ को घोलकर नली द्वारा गर्भाशय मे प्रविष्ट कराया जाता है। शिशु के सारे अग क्षार – क्षार हो जाते हैं।

(5) प्रोस्टाग्लानडीन पद्धति – एक टैबलेट (गोली) मा को दी जाती है जो बच्चे की सास रोक देती है। बच्चे के शरीर मे जहर फैल जाता है और वह तडप तडप कर मर जाता है।

यह लोम हर्षक, दर्दान्त, दु खान्त कृत्य चाहे नारी करे या नर इस हिसक प्रवृत्ति की बढती प्रचण्ड ज्वाला सर्व मानवीय गुणो को निगल लेगी। पना नही यह सृष्टि फिर जीने – समझने योग्य बचेगी या नही। जिस मानव देह को स्वर्गीय देव तरसते है उसे आप लोगो ने इतना घृणित बना दिया है कि जानवर भी थू – थू करने लगे। अपनी भावभूमि को, धमनियो को घृणित विष से मत सीचो। उसमे अमृत घोलो, मानवीयता की पुन प्रतिष्ठा करो। यह पचम काल है, इससे आगे और भी बद्तर दु खमा – दु खमा काल कालवत मुह फाडे खडा है। उसकी जबाड मे जाने से पहले स्वय को सभाल लो। माना कि बढती जनसख्या एक नई समस्या है, उसके नये समाधान खोजो, जो व्यावहारिक हो, समुचित हो। आचार्यो, भगवतो, सतो ने ब्रह्मचर्य एव इच्छा निरोध, सयम जैसे महा शस्त्र हमे सौंपे है, उनका समुचित प्रयोग करो। अपने जीते जी धरती को नरक बनाने की मत ठानो। अन्यथा तुम्हे इतिहास कभी माफ नही करेगा। ■■

सदाचार : जीवन शुद्धि का बीज

यदि हम यह कहे कि उज्जवल चरित्र जहा से गुजरता है, वहॉ असख्य पुष्प खिल जाते हैं। वायु स्वच्छ हो जाती है, और वहॉ का यश चन्द्रवत्विनिर्मल और दिग्‌- दिगन्त व्यापी हो जाता है तो कोई अत्युक्ति न होगी, क्योंकि चारित्रवान् के विमल चारित्र मे ऐसी ही अपूर्व शक्ति होती है। उसके पास सद्‌चरित्र प्रेमी वैसे ही आकृष्ट हो खिचे चले आते है जैसे महा सरोवर के पास गजयूथ, अथवा गुलाब वनो के पास मकरन्द प्रेमी मधुकर टोलियाँ। क्योंकि यहा ही उनकी तृषा- क्षुधा शात हो वर्णनातीत सुख प्राप्त करती है यही सब कुछ सद् चरित्रवान् के निकट प्राप्त होता है। पुष्पो के पास जाओगे तो प्राण-सुरभित वायु से अनुप्राणित होगे। ईख के पास मधुरता के अतिरिक्त और क्या मिलेगा। केशर वनो मे जितनी बार जाओगे उतनी ही बार वह अपनी सुगंधि तुम्हे लुटायेगा। सद्‌चारित्रवान् के पास जब- जब जाओगे वह भी सदाचार का पराग लुटायेगा, उसके पास इसके अतिरिक्त और है क्या? सदाचार अनेको गुणो की उत्पत्ति का साधन है। उज्जवल यशवर्धक, सुख एव शाति के बीजो का प्रदाता है और है माता के समान हितानुशास्ता।

एक देव स्वर्ग पुरी से च्युत हो मर्त्यलोक पर आ रहा था। देव परिषद लगी है, सारे देव ब्रह्मा की अध्यक्षता मे उसे विदाई दे रहे थे। हे मित्र! तुम बहुत भाग्यशाली हो जो भारत भूमि पर जा रहे हो। वहा दुनिया की सबसे बडी दौलत है, सदाचार।

गायन्ति देवा किल गीतकानि, धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते, भवन्ति भूय पुरूषा सुरत्वात् ।।

देव गीत गाते हैं, कि वे पुरूष धन्य है, जो स्वर्ग- अपवर्ग के हेतु भूत भारत वर्ष मे जन्म लेते है। वे लोग हम देवो से भी श्रेष्ठ है। 'गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिग न च वय ' गुणीजनो मे पूजा का आश्रय गुण हैं, न कि लिग अर्थात् वेष और ना ही उम्र।

ब्रह्मा जी ने उक्त देव को दो थैलियाँ दी, बोले भाई! एक थैली सामने की ओर गले से टाग हृदय-प्रदेश पर लटका लेना, इसमे सदाचार, सयम एव सत्य के बीज भरे है। जहाँ-जहाँ, जिस-जिस, नगर-डगर से गुजरना वहा ये बीज फेकते जाना। अर्थात् लोगो को अच्छाईयाँ बाँटते जाना और दूसरी यह थैली है इसमे कुछ बुराइया पडी है इसी थैली मे जो असतुष्ट और रूग्ण बुराईया मिले डालते जाना। जब तुम पुन ऊपर आओ तो सामने वाली थैली खाली एव पीछे वाली थैली भरकर ले जाना। मित्रो ने कहा बधुवर आप जब जा ही रहे हो तो जो ब्रह्मा जी ने जो कुछ कहा उसे याद रखना। मर्त्यलोक पर रोशनी फैलाना, उनका नाम रोशन करना, कलकित करके नही लौटना।

महानुभाव! आपको क्या बताऊँ उस देव ने मर्त्यलोक मे जैसे ही पैर रखा, उसका मस्तिष्क यहाँ के लोगो की हवा के स्पर्श से आलस्य से भर गया। स्वर्गो मे तो नीद होती नही। उसने सोचा सुरभित-शीतल बयार का लाभ उठा लू और एक वृक्ष की सघन छाया मे लेट गया। नीद मे जैसे ही उसने करवट बदली, थैलिया भी बदल गई। आगे की पीछे, पीछे की आगे पलट गई। उठकर जब वह चला तब उसने रूग्ण सडी-गली बुराईया बाटना शुरू कर दी एव सदाचार, सयम, सत्य को पीछे फेकने लगा अर्थात् इस थैली मे बुराईयाँ भरने लगा।

आज इन्सान यही तो कर रहा है, पवित्र मन और सदाचार से सदा शुचि कहलाने वाले, मन मे, आत्मा मे बुराईयो को सग्रहीत कर रहा है और अच्छाईयो को फेकता जा रहा है।

आज इन्सान के नेत्र सदाचार के अभाव मे अच्छाईयो को देखने के लिए ज्योनि विहीन होते जा रहे है और बुराईयाँ देखने के लिए चर्म चक्षुओ मे भी ज्योति आती जा रही है। नयन पर उपनयन चढने लगे है। हर इन्सान एक दूसरे को देखने मे लगा हुआ है। अपने भीतर झाकना नही चाहता, जबकि सदाचार ही एक ऐसा शाश्वत ज्योति पुज है जो हर भटकते राह पर प्राणी मात्र को सत्पथ प्रदर्शक है, यश विस्तारक है।

मनुष्य अपने ही श्रेष्ठ सदाचार, शील एव सद्चरित्र आदि गुणो से

उत्तम एव पूज्यो की परिगणना मे परिकीर्तित होता है। ऊँचे आसन पर बैठने से नही। क्या कभी किसी विशाल भवन पर उपविष्ट होने से काक, राजहस पक्षी या गरूड की कोटि मे गिना गया है? देखिए

'गुणा' सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवशो निरर्थक ,
वासुदेव नमस्यन्ति वसुदेव न ते जना ।

सद्गुण सर्वत्र पूज्य हैं। पूज्यता मे पितृवश निरर्थक है। लोक वासुदेव श्रीकृष्ण को नमस्कार करता है उनके पिता वसुदेव को नही। इसलिए तो नीति और धर्मकार कहते है-

आचार परमो धर्म -

इस सदाचार रूप सद्धर्म की पर्युपासना करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नही होता। कारण विनय अकीर्ति को, पराक्रम अनर्थो को, क्षमा क्रोध को तथा सदाचार कुलक्षणो को नष्ट करता है। गुणवान् सदाचारी सर्वपूज्य है। मक्खन को कितनी ही ऊँचाई पर टाग दो पिपीलिकाएँ राम्ता खोज कर नवनीत तक पहुच ही जायेगी। आप किसी की कितनी ही निंदा-बुराई कीजिये, उसे नीचा दिखाने की कोशिश कीजिए। जहा-जहा वह जाकर कुछ अच्छे कार्य करे और तुम उसे बर्दास्त न कर सको, उसके उन्कर्ष को न सहन कर पाओ और उसके पीछे-पीछे, उन-उन स्थानो पर जाकर लोगो को भडकाओ-बहकाओ, लेकिन उससे कुछ नही होगा। वक्त आकर आपको ही बुरा कहेगा, लोग तो उसे खोजते-खोजते जयकार करते हुये पहुच ही जायेगे, क्योंकि सद्गुणो की खुशबु उसमे सुरक्षित है।

चरित्र और कुछ नही, सद्गुणो का समन्वय एव अभिव्यक्तिकरण चरित्र है। मनुष्य के भीतर-बाहर जो है वही चरित्र है। वह जैसा सोचता है और जैसा दूसरो के साथ व्यवहार करता है, उसी के आधार पर उसका मूल्याकन किया जाता है। सदाचार मे जब अच्छा आचरण सम्मिलित किया गया है तो हमे अपनी बुराईयो को देख-सुन कर उनकी ओर से आखे नही मूद लेनी चाहिए, वरन् उनका निदान खोजना, निकालना चाहिए। जिस प्रकार रोग का सम्यक् निदान न होने पर वह बढते-बढते इतना भयानक रूप धारण कर लेता है कि रोगी मृत्यु का अतिथि बन जाता है। एक छोटी सी चिनगारी सुलगते-सुलगते विशाल रूप धारण कर विशाल भवन को अपनी

प्रचण्ड लपटो से आलिंगित कर राख कर देती है। इसी भांति चरित्र की लघु-सी बुराई भी मनुष्य को उच्चता के आसन पर आसीन नही होने देती। जैसे ओजोन- पर्त पर एक छोटा-सा छिद्र कष्टकर हो जाता है, उसी प्रकार सद्-विचार और सदाचार भी एक ओजोन पर्त की तरह है। इनमे छोटा-सा छिद्र हो जाये तो वह लघु छिद्र रूप दुर्गुण जीवन की सारी साधनाओ को निष्फल कर देता, साधना पर पानी फेर देता है।

कुछ लोग कहते है कि बुराई तो हर इन्सान मे होती है- जैसे धूप के साथ छाया, फूल के साथ काटा। यद्यपि उनका तर्क ठीक है, तथापि वह तर्क, तर्क सगत एव पूर्ण-सत्य नही है। कारण, धूप के साथ छाया और फूलो के साथ शूलो का नैसर्गिक सबध है, यह उनकी प्रकृति है, और है उनका अपना प्राकृतिक सौन्दर्य। किन्तु बुराई जीव की विभाव परिणति है। वैभाविक परिणति से स्वाभाविक गुणो का कोई तालमेल या शोभा नही हुआ करती। वह तो केवल कष्टकर ही है। पर्वत से गिरा हुआ व्यक्ति उठ सकता है, सिर उठाकर चल सकता है, किन्तु चारित्र शिखर से पतित प्राणी कभी भी न उठ सकता है न सम्मान और आदर का पात्र बन सकता है। वह जहा से भी गुजरेगा, लोगो की आखे और अगुलियाँ उस पर नियमत टिकेगी, उठेगी। पद-पद पर वह लज्जित होता है, भीतर से बिखरने लगता है।

पडित प्रवर आशाधर जी सागर 'धर्मामृत मे कहते है- '*प्राणान्तस्तत्क्षणे दु ख व्रत भगो भवे भवे*' अर्थात प्राण निकलने पर प्राणी को उसी समय दु ख होता है किन्तु व्रत भग होने पर भव-भवान्तर दु ख उठाना पडता है।

वृत्त और वित्त दो शब्द है। वृत्त अर्थात् चारित्र, आचरण। वित्त अर्थात् धन-दौलत। धन जड है, आता-जाता रहता है, लेकिन वृत्त, आचरण दुनिया की तमाम दौलतो मे सर्वोत्तम दौलत है। इसकी सुरक्षा सर्व यत्नेन करनी चाहिए। धन क्षीण होने पर मनुष्य क्षीण नही होता, किन्तु वृत्त भ्रष्ट होते ही मनुष्य नष्ट होने लगता है। **सदाचार ही जीवन का जीवन्त धरातल है।**

महात्मा गाधी ने भी सदाचरण के सदर्भ मे यही आशय प्रकट किया है। 'यदि चारित्र का निर्माण नही हुआ तो जीवन के सारे रचनात्मक कार्य

कलाप व्यर्थ है। सदाचार मे ही वह पौरूष है जिससे सीता की अग्नि परीक्षा के समय अग्नि कुण्ड की जाज्वल्यमान दीप्त प्रचण्ड ज्वालाए सिहासन बन गई। अग्नि कुण्ड निर्मल कमल विकसित सरोवर बन गया। द्रौपदी के बढते चीर ने दु शासन जैसे योद्धा को उलझन मे डाल दिया। चीर खीचते - खीचते वह थक कर चूर हो गया। उसका हिमानी अभिमान गल गया।

सदाचारी ऑक्सीजन कम होने पर भी जी सकता है। कारण, आयु क्षय करने वाले अन्याय, अनीति, अपमान, अपकीर्ति, दुराचार जैसे प्रदूषित तत्व उसमे मौजूद नही है, इसी प्रबल हेतु से न तो उनकी अपमृत्यु होती है न ही हार्ट अटैक। यह बात चाहे तो डायरी मे नोट कर लीजिये। हार्ट अटैक कदाचारी को ही होता है। कारण उसे नफरत ही नफरत मिलती है। किसी का प्यार नही मिलता जिससे वह जीवन शक्ति पा सके।

कदाचारी, दुराचारी अधिक नही चल सकता क्योंकि वह खोटा सिक्का है, अस्तु प्राणान्त होने तक सदाचार की प्रतिष्ठा बनाये रखने का प्रयास कीजिए। सदाचार को जीवित रखने के लिए 'सगति सर्वदार्यै ' आर्य पुरूषो की सगति कीजिए। जिस प्रकार सुगंधित गुलाब पुष्प अपने समीपवर्ती गोबर को भी सुगधमय बना देता है, केशर पार्श्ववर्ती मिट्टी को सुगधी से भर देती है उसी प्रकार सज्जन पुरूषो का सत्समागम सदाचार की प्रतिपल प्राण प्रतिष्ठा करता है। क्योंकि सदाचार और सत्समागम एक दूसरे के सम्पोषक तत्व है। सदाचार की पुन स्थापना इस बात पर निर्भर है कि दुराचार के कीटाणु विनष्ट हो, जो अनेक रूपो मे जन मानस पर छाए हुए है। यदि जीवन मे सदाचार नही है तो भौतिक बाह्य सामग्रियॉ अक बिना शून्य जैसी है। सदाचार शून्य जीवन और मृत्यु मे कोई अन्तर नही है। सदाचार एक ऐसा तत्व है, जो किसी कानून द्वारा नही, शिक्षा या हृदय परिवर्तन द्वारा पनप सकता है। सदाचार जीवन शुद्धि का बीज है। बीज मे हजारो - लाखो फलो को पैदा करने की क्षमता होती है किन्तु यदि उसे जला दिया जाये तो एक पत्ता भी नही निकल सकता। सदाचार का एक बीच कितने सदाचारी फल पैदा करता है यह भविष्य बतलाता है। अस्तु अनैतिकता, कुठा और घुटन की विभीषिका से त्रस्त मानव समाज सदाचार की सजीवनी से ही आरोग्य पा सकता है। ■■

सदाचार : एक व्यवहारिक सत्य

सदाचारो-बन्धु गुणगणनिधि मातु-सम वा,
सदाचारो धर्मो विगत इव दोषोऽद्भुतगति
र्सदाचारो लोके जनयति शशिसन्निभयशम्,
सदाचारो वंदे भवविभव हान्यै सुमनसा।।

-मगलाचरण से

सदाचार बन्धु है, गुण समूह का उत्पत्ति स्थान है। माता के समान हितानुशास्ता है। सदाचार धर्म है, निर्दोष है, उसकी गति अद्भुत है। सदाचार विश्व मे चन्द्रसम विर्निमल यश को उत्पन्न करता है। अत मै श्रेष्ठ मन से भव-विभव की हानि के लिए सदाचार को नमस्कार करता हूँ।

सत् (अव्यय) और आचार के योग से सदाचार शब्द निष्पन्न होता है। 'आचार' शब्द का अर्थ है - व्यवहार, चरित्र। आचार व्यक्ति की कसौटी है, उसकी पहचान है। आचार का स्रोत है - विचार, कितु विचार प्रति समय लक्ष्य मे नही आते। इसलिये किसी का आचरण या आचार ही स्पष्ट कर देता है कि वह कैसा व्यक्ति है। आचार ही किसी को असुर बनाता है तो किसी को देव, किसी को अधम, तो किसी को उत्तम।

सदाचार सभी गुणो का समावेश

सदाचार एक ऐसा विशिष्ट गुण है, जिसमे दैवी सम्पत्ति, अभय, सत्व, सबुद्धि, ज्ञान, योग, व्यवस्थिति, इत्यादि सभी गुणो का समावेश है। लोक मगल की कामना, 'जीओ और जीने दो' की भावना और सह-अस्तित्व की साधना, शील का स्वरूप है। इन्ही श्रेष्ठ भावनाओ का सम्पोषक होने से समष्टि रूप मे सदाचार ही भगवान महावीर के पचशील नाम से प्रसिद्ध है।

ससार मे मनुष्यो की कमी नही, सुरसा के मुख की भॉति जनसख्या प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है, परन्तु मानवता की कसौटी पर खरे उतरने वाले मानव कम है। यहॉ सदाचार के प्रमुख आधार-स्तभ भूत गुणो की चर्चा करना कुछ अप्रासंगिक न होगा।

जीवन मे यदि सत्य को जान लिया तो सब कुछ जान लिया, यदि उसे नही जाना तो बडी हानि है। सत्य का विवेचन सूक्ष्म और गहन है। वस्तुत सत्य का स्वरूप गुह्य है। मनसा - वाचा - कर्मणा प्राणिमात्र का हित भावना से यथार्थ और श्रेयस्कर आख्यान ही सत्य है। मनुष्य जीवन मे शाब्दिक सत्य ही सब कुछ नही, उसमे व्यवहार सत्य भी अपेक्षित है। शाब्दिक सत्य मे व्यवहारिकता की एकरूपता होना आवश्यक है।

अहिसा सत्य का व्यवहारिक रूप

सत्य एक सिद्धात है तो अहिसा उसका व्यवहारिक रूप है, जो मानव जीवन मे सर्वथा साध्य है। सदाचारी अहिसा को मनसा - वाचा - कर्मणा अपनाता है। शस्त्र से किसी को मारना ही हिसा नही है, अपितु किसी के अत करण को ठेस पहुँचाना, कटु वाणी द्वारा मर्मान्तक पीडा पहुँचाना, असहाय के स्वत्व का अपहरण और सभाविन व्यक्ति के प्रति 'तू' शब्द का प्रयोग भी हिसा है। मनुष्य जब किसी मृत मे प्राण नही डाल सकता तो उसे किसी निरीह प्राणी के प्राण - अपहरण का क्या अधिकार है ? हिसक मनुष्य के लिये यह किनने कलक की बात है कि वह अपने एक जीवन के लिये किनने जीवो की हत्या करना है। यह कैसी आत्म - विडम्बना है आज के मामाहारी मनुष्य नामधारी 'जन्नु' की।

जिम साधक ने अहिसा के स्वरूप को आत्मसात किया, उसी ने विश्व - बन्धुत्व की भावना को सुरक्षित एव जीविन रखा है। अहिमा मे महान् चमत्कार हे। जहॉ मत्य का पुजारी रहता है वहॉ नो उसके प्रभाव मे खूँखार हिमक पशु भी अपनी हिसक वृत्ति छोड देने है। पारम्परिक वैर - भाव को छोडकर प्रेम - भाव से रहने है। सदाचारी की आत्मीयता मैत्री, व्यापक और मार्वभौम हुआ करती हे।

सदाचार मे इतना गुरुत्व हे, वह स्वयमेव इतना बहुमूल्य है कि सदाचारी के सग की कामना सब करते है और सदा करते है,जबकि दुराचारी या अत्याचारी को कुछ लोग सिर्फ कुत्सित स्वार्थ की सिद्धि के लिये यदा-कदा ही चाहते है।

सदाचार का अवलबन आवश्यक

जब सदाचार प्रकाश की ओर अग्रसर कराता है, तब वह अमरत्व की

ओर ले चलता है, और जब देवत्व के पथ की ओर आगे बढता है तब अभ्युदय और नि श्रेयस् प्रदान करता है, सुख-शांति-सम्पन्नता देता है, मोक्ष का कारण होता है। फिर मनुष्य सदाचार से विमुख क्यो होता है? दुराचार की ओर क्यो पग बढाता है?

इस प्रश्न का उत्तर भी शाश्वत सत्य है। सदाचार चित्त की विशुद्धता के बिना सभव नही है। चित्त स्वभावत काम-क्रोध, सकीर्ण स्वार्थ और लोभ से दूषित रहता है। ये ही मनुष्य के परम शत्रु है। ये चित्त की निर्मलता को नष्ट कर देते है, ज्ञान पर काफी मोटा पर्दा डाल देते है, जिससे दृष्टि विकृत हो जाती है अथवा आपेक्षित सत्य व तथ्य को देख नही पाती। अत इन को नियंत्रित करने के लिए सदाचार का अवलम्बन नितान्त आवश्यक है।

समाज की शक्ति · सदाचार

सदाचार से सिर्फ सदाचारी व्यक्ति का ही कल्याण नही होता है, अपितु उसके परिवार का, प्रतिवेश का, गॉव का, समाज का, राष्ट्र का और मानव मात्र का कल्याण होता है। किसी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके अणुबमो या साघातिक अस्त्र-शस्त्रो मे नही, सैन्य बल मे नही, बल्कि उसके सदाचारी नागरिको मे सन्निहित है। शिक्षा का असली महत्व व्यक्ति को साक्षर बनाने मे नही, उसे सदाचारी बनाने मे है क्योंकि सदाचार-विहीन साक्षरता मनुष्य को राक्षसता प्रदान करती है। देव और असुर मे यही असली अन्तर है कि सदाचार मानव को देव बनाता है और कदाचार अथवा दुराचार मानव को दानव बनाता है।

अतएव सदाचार की महत्ता से प्रभावित होकर कोई भी दृढ सकल्प के बल पर सदाचारी बन सकता है। सदाचारी होने के लिये धनवान, रूपवान या बलवान होना जरूरी नही है। जरूरत है - सिर्फ निर्मल चित्त, विमल बुद्धि की, दैवी सपदा को अपनाने की और त्यागमय अनासक्त जीवन दृष्टि की।

अत आइये! हम सब प्रतिदिन शुद्ध शात चित्त से सदाचरण का, सदाचार का सकल्प करे और निर्मल चित्त, विमल बुद्धि अथवा दैवी सपदा की प्राप्ति के लिये हृदय से प्रयत्न करे। ■■

अहिंसा प्रचेता का अर्थशास्त्र

कोई व्यक्ति यह सोचे कि वह किसी बाहरी शक्ति अथवा अर्थ शक्ति के बल पर अपने मन का अंधकार दूर कर लेगा, जीवन-पथ मे बिछे काटे बुहार लेगा, अपने दु:ख को सुख में बदल लेगा तो यह उसकी बहुत बड़ी भ्रान्ति है। कारण परिग्रह के गर्भ में दु:ख और पश्चाताप ही सन्निहित है। परिग्रह में वक्रता है इसलिए वह ग्रन्थि है। शोषण और संग्रह उसकी पर्यायें हैं। परिग्रह और हिंसा एक ही समस्या के दो छोर हैं। एक छोर जब तक नहीं छूटता तब तक दूसरे छोर से छूटने का प्रयास बालू पीडन, जल मन्थन जैसा है।

अद्‌भुत उपहार

एक ब्राह्मण पण्डित ने राजा से मिलने के लिए प्रस्थान किया। वह बहुत दरिद्र था। राजा को भेट करने के लिए कपडे मे गन्ने के कुछ खण्ड (टुकडे) बाधकर राजमन्दिर की ओर चल पडा। कुछ विश्राम करने के लिए वह जगल मे सो गया। उधर से आ रहे एक व्यक्ति ने उसे देखा। उसने सोचा - राजा के पास यह उपहार के लिए इक्षु - खण्ड लेकर जा रहा है। उसने कपडे से इक्षु - खण्ड निकाल लिए और उसकी जगह लकडिया बाध दी। पण्डित सोकर उठा। वह कपडे मे बधी लकडियो को लेकर राजा के महल की ओर चल पडा। दरबार मे पहुचकर भेट करने की इच्छा से जब कपडे को खोला तो उसमे लकडियो देखकर स्तब्ध रह गया। वह बहुत चिंतित हो गया। महाकवि कालिदास समझ गए - इस व्यक्ति के साथ किसी ने छलना की है। उन्होने तुरन्त स्थिति को सभालते हुए कहा - 'महाराज ! आज जैसा उपहार आया है, वैसा कभी किसी ने भेट नही किया। बडा अद्‌भुत उपहार है। राजा ने पूछा - कैसे ? कालिदास ने कहा -

दग्ध खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यद्रुमैर्भूषित,
दग्ध वायुसुतेन हेमनगरी लका पुन स्वर्णभू ।
दग्धे लोकसुखो हरेण मदन कि तेन युक्त कृत,
दारिद्रय तापकारकमिद केनापि दग्ध न हि ।।

हे राजन! खाण्डव वन को अर्जुन ने जला दिया, सोने की लका को हनुमान ने जला दिया और कामदेव को शकर ने जला दिया, लेकिन इस दरिद्रता को, जो सबको जलाती है कोई जला नही सका। यह विप्र इस दरिद्रता को जलाने के लिए ईधन भेट कर रहा है। इसे जलाने मे आप ही समर्थ है। राजा ने प्रसन्न हो उसकी दरिद्रता को दूर कर दिया।

दारिद्रय कभी प्रिय नही रहा, गरीबी कभी वाछनीय नही रही, न प्राचीन काल मे, न अर्वाचीन काल मे। सब चाहते है कि गरीब कोई न रहे, समाज किसी को न सताए। किन्तु यह बडा कठिन काम है। 'निर्धन निर्बल' इसका सभी ने तिरस्कार किया है, किन्तु इसका समाधन कभी नही होगा व्यक्तिगत स्वार्थो का चक्रावर्त सभी को अपनी लपेट मे लिये हुये है। मनुष्य के स्वार्थ और उससे मनोवेग को उजागर करते हुए अर्वाचीन और प्राचीन अर्थशास्त्री इसी निर्णय पर पहुचे है कि व्यक्तिगत प्रेरणा और व्यक्गित स्वार्थ मनुष्य से जितना और जो कार्य करवाता है उतना और कोई वह कार्य नही करवाता। **स्वार्थ मनुष्य की एक बहुत बडी प्रेरणा है और बहुत प्रिय एव आकर्षक भी है।** इसको हवा देने वाला एक ही प्रभावक तत्व है, वह है बढती हुई इच्छाओ का उद्वेग। मनुष्य की मनोवृत्ति ही ऐसी है कि वह प्राप्त से असतुष्ट,अतृप्त है और अप्राप्त की ओर भाग रहा है। जो न प्रिय है न ही हितकर।

महावीर ने इन दो शब्दो की 3 बिन्दुओ द्वारा बडी सुन्दर मार्मिक मीमासा की है।

प्रथम बिन्दु - एक बात प्रिय लगती है, किन्तु हितकर नही है जैसे स्वार्थवृत्तिराग। **द्वितीय बिन्दु** -एक बात हितकर तो है किन्तु प्रिय नही है -जैसे कटु औषधि कटु सत्य। **तृतीय बिन्दु** - जो प्रिय भी है और हितकर भी। जैसे धर्म, मानवीय कर्तव्य। यदि इन तीनो बिन्दुओ के धरातल पर इच्छाओ, स्वार्थो के क्षितिज से उतर कर चला जाये तो न तो कोई भूखा दिखाई देगा, न ही वस्त्र हीन। न कोई आवास विहीन मिलेगा, न ही आजीविका शून्य। सभी की प्राथमिक आवश्यकताएँ नियमत पूर्ण होगी।

सवाल यह है कि इस राह पर चले कौन? इच्छा निरोध का व्रत

ले स्वार्थशून्यता का घटा कौन बजाये ? सभी की हठ केकडे की पकड की तरह है। बहुत सुन्दर सूक्ति है *'सर्वारभा तन्दुलप्रस्थमूला'* मनुष्य की सारी प्रवृतिया एक सेर चावल के लिए थी, और है। यदि सेर भर चावल की आवश्यकता न होती नो फिर उसे प्रवृत्ति की कोई अपेक्षा न थी, न होगी, किन्तु वर्तमान युगी मनुष्य ने इस तथ्य को झुठला दिया है, भुला दिया है। औद्योगिक विकास और अर्थ का नशा उस पर इतना हावी हो रहा है कि वह अपना होश खो जोश के साथ अर्थ विकास मे जुट प्राण खो रहा है।

अर्थ का नशा मूर्खता की हद -

एक सत्य घटना है- एक कृषक बहुत दरिद्र था। उसकी पत्नी ने उसे आजीविका के लिए प्रेरित कर दूसरे गाव भेजा। वहा उसने एक जमीदार से थोडी सी जमीन की याचना की, नाकि वहा खेनी कर अपनी आवश्यकता की पूर्नि कर सके। जमीदार ने कहा- नदी पार चलो। तुम्हे जितनी चाहिए हो ले लेना। दोनो ब्राह्म मुर्हुन मे नदी के उस पार चल पडे। अधकार के सघन चीर को चीरकर प्रभात का अभिवादन करने वाली सूरज की प्रथम किरण के साथ दोनो सरिता के उत्तर नटीय प्रदेश पर पहुँच गये। जमीदार ने कहा, बन्धु यहा चतुर्दिशाओ मे सैकडो मील फैला भूखण्ड है तुम किनना चाहो ले लो लेकिन एक शर्न है। सुबह से शाम नक नुम अपने पैरो से पैदल चलकर जितने भू खण्ड को नाप लोगे, उतना ही नुम्हारा होगा। सध्या वन्दन कर जानी हुई सूर्य किरण के साथ तुम्हारा कार्य समाप्न हो जाना चाहिए। कृषक ने सहर्ष शर्न स्वीकार कर ली। बिना कुछ नर्क-विनर्क किए वह समय नही गवाना चाहना था, सो जल्दी चिन्ह स्वरूप ध्वज गाडकर चल पडा। लम्बे-लम्बे कदम बढाने हुए प्रति घटा आठ किलोमीटर की रफ्तार से।

सर्वप्रथम सरिना के दक्षिण तट से पूर्व की ओर बढा। तीन घटो मे उसने 24 किलोमीटर जमीन नाप ली, वहा उसने एक बडी सी शिला खण्ड को प्रनीक बनाया और उत्तर की ओर भागने लगा। प्यास से कठ सूख रहा था किन्तु तेजी से लोभी भी दौड रहा था। सोचने लगा यदि पानी खोजूँगा, पिऊँगा नो 15-20 मिनट खत्म हो जायेगे। तृषा का निरस्कार कर वह भागने लगा। भागने-भागते जब वह 24 कि मी की यात्रा नय कर चुका

तब उसने पाया सूर्य नारायण सिर पर खडे है। पैर जवाब देने लगे, कठ तालु से चिपक गया। श्वास लेने के लिए जैसे ही खडा हुआ। उसके मस्तिष्क मे एक विचार कौध, अरे पगले ! आधा दिन तो निकल गया, आधा ही तो हाथ मे है, यह भी निकल गया है तो वापिस नही लौटेगा। क्योंकि समय और सिधु की लहरो ने कब किसका इतजार किया है। आज की ही तो बात है, कल मै कितना बडा आदमी बन जाऊगा, कितने मौज होगे मेरे। यह सुखद प्रिय विचार उसे गुदगुदाने लगा, किन्तु उस अभागे के लिए इन विचारो के लिए अवकाश ही कहॉ था, वहॉ पर भी एक विशाल वटवृक्ष को निशाना बना पहले से भी अधिक तेज गति से भागने लगा। लगता था मानो आगामी सुखो के गुदगुदे स्वप्न - विचारो ने उसकी कण्ठ की प्यास बुझा दी थी और पैरो मे भी बल आ गया था सचमुच की धन सबसे बडा बल है।

पलक झपकते ही उसकी यात्रा का क्रम उत्तर से पश्चिम की ओर मुड गया। चलते - चलते पुन तीन घटे समाप्त हो गए, दोपहर शाम की ओर ढुलकने लगी। सूर्य की यात्रा का केवल एक ही भाग शेष था, उसने सोचा - सूर्य की यात्रा के साथ अब मुझे भी अपना क्रम भी पूरा कर लेना चाहिए। जो पश्चिम से दक्षिण की ओर अभी शेष है। मैने तीनो दिशाओ मे कितनी जमीन पैरो से नाप ली अभी क्या हिसाब लगाऊॅ। कही बाहर तो जानी नही है। फिर चिन्ता किस बात की। समय क्यो खोऊॅ, तीन घन्टे बाद मजे से बैठकर हिसाब लगाऊॅगा, अभी तो चिन्ह गाढ जाता हूॅ। तीनो ओर दृष्टिपात किया कही विजय चिन्ह दिखाई नही दिये। उसका 'मानस सरोवर' प्रसन्नता से उछलने लगा। सामने पर्वतीय चोटी पर उसका यात्रा क्रम का ध्वज दण्ड गौरव से लहराता दिखलाई पड रहा था। उसे देख उसकी ऑखे खुशी से चौडी हो गई। सी वेग से उसने उसी ओर कदम बढाये। किन्तु इस बार वह असफल होने लगा। उसकी देह जवाब देने लगी। आखिर बिना पेट्रोल की गाडी को कब तक खीचता। भागते - भागते वह उस स्थल पर पहुॅचने ही वाला था, कि उसने दूर से जमीदार को इशारा किया, देखो मै आ रहा हूॅ, सूर्य अभी अस्त नही हुआ। सूर्य नारायण की कृपा दृष्टि है। देखो! देखो!! वे अभी मेरी विजय श्री पर मुस्कुरा रहे है। नादान अभी ये नही समझ पाया कि वे

क्यो मुस्कुरा रहे है। शायद यह वह नही जानता था कि प्रभु सकेत दे रहे है। पगले! तेरी अविराम यात्रा मेरे साथ विराम लेने वाली है वह पुन वेग से भागा। श्वास फूलने लगी, गन्तव्य पर पहुँच कर जमीदार के पैरो पर गिर पड़ा। अपनी सफलता पर मुस्कुराता हुआ 'मैने इतना विशाल भू खण्ड हासिल कर लिया'। किन्तु उसी पल उसकी जीवन यात्रा भी सूर्य के साथ सदा-सदा के लिए अस्त हो गई।

क्या पाया उसने सब कुछ खोकर? किसने कहा था उसे इतनी जमीन हथियाने के लिए, क्या उसकी पत्नी ने इसलिए उसे भेजा था? नही! उसकी अतृप्त लालसा ने उसके जीवन का लहू चूस लिया। उसकी परिग्रह वादी लालसा उसे प्रिय तो थी लेकिन हितकर सिद्ध नही हुई। महावीर ने यही तो कहा था जो प्रिय हो वह आवश्यक नही हितकर भी हो। तब ऊपर से मधुर परिणाम मे किपाक की तरह कटुक, दुष्परिणामी से क्या प्रयोजन। वस्तु स्वरूप को समझने वाला व्यक्ति अपरिग्रह वाद के पाठ को नही पढ सकता अथवा 'इच्छा परिमाण' व्रत अगीकार नही कर सकता। यही सतोष तो दरिद्रता एव परिग्रह वाद रूपी रोग की रामवाणौषधि है।

महावीर का अर्थशास्त्र यह ध्वनित करता है कि सतोष धन के समक्ष सारे धन धूल है। कुछ लोग कहते है कि धर्म अर्थ विकास मे बाधक है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो का भी यही मन्तव्य है, कि धर्म अकुश लगाता है, हमारी प्रगति को रोकता है, यह मत करो, वह मत खाओ आदि। इससे आर्थिक विकास क्रम मे रूकावट आती है। उनका यह विचार एकागी है। महान दार्शनिक उद्भट विद्वान समन्तभद्राचार्य कहते है-

उच्चै र्गोत्र प्रणते भोगो दानादुपासनात्पूजा
भक्ते सुन्दर रूप स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु।।

तप ही जिसका धन है ऐसे तपोनिधियो को प्रणाम करने से उच्च गोत्र, दान देने से 'भोग सामग्री' उपासना से प्रतिष्ठा भक्ति से सुन्दर रूप, स्तवन से कीर्ति की प्राप्ति होती है।

धार्मिकानुष्ठानो से न केवल भोग सम्पदा प्राप्त होती है अपितु वे कुलीन घरो की उच्चता, प्रतिष्ठा, शरीरगत सौन्दर्य और लोकख्याति भी प्रदान

करते है। धर्म से धन का विकास होता है। धन तो मात्र साधन है। वह चाहे तो अपने सदुपयोग कर्ता को धर्म की ओर प्रेरित कर सकता है चाहे अपने दुरूपयोग से धरातल की गहराइयो मे भी ढकेल सकता है। धर्म का तो केवल सदुपयोग ही होता है। दुरूपयोग को तो स्थान ही नही है। जहा धर्म का दुरूपयोग दिखता है वहा छल है, कपट है, ढकोसला है और धर्म का ढकोसले से क्या सम्बन्ध। धर्म अपने विकास के साथ-साथ 'सूर्य और सुमन' की तरह निरन्तर आश्रयी का विकास करता है। उसमे करूणा का विकास करता है, सवेदन शीलता को तो गहराता ही है, वात्सल्य का पराग भरता है। किन्तु धन अपने विकास के साथ-साथ धनार्थी, धन स्वामी मे क्रूरता पैदा करता है, करूणा, दया के स्त्रोत को सुखा देता है। धन हडप की लिप्सा अपने आर्थिक विकास के साथ हजारो लाखो प्राणियो को ह्रास का गढ्ढा खोद देती है। **धर्म और धन मे यही अन्तर है एक निर्भय बनाता है दूसरा भय पैदा करता है।** जहा धर्म है वहा आनन्द है और जहा धन है वहा कलह है।

मै यह नही कहना चाहता कि, धन का विकास मत करो। करो, पर ध्यान रखो तुम्हारा धधा अधा न हो और न ही अधा धुध। उसकी ऑखे हो, किन्तु ध्यान रखना, चर्मचक्षुओ की नही 'विवेकचक्षु' की हो। आपकी अर्थ विकास की प्रक्रिया किसी के खून से सनी न हो, उसकी नीव शोषण की ईटो से न रखी गई हो। यदि ऐसा ही ख्याल है तो निश्चित ही आप धर्मात्मा है, अहिसक है। ऐसी स्थिति मे गरीबी की रेखा तले जीने वालो की सख्या निश्चित कम हो जायेगी। उसे पूरा तो कम नही किया जा सकता। क्योंकि प्राणी का अपना शुभाशुभ कृत्य का परिणाम वाला सिद्धात भी अपनी जगह अडिग है।

पुण्यैर्बिना नहि भवन्ति समीहितार्थ

महान इच्छा वाला आजीविका के लिए महानारभ बढाता है और स्वय चण्ड, रूद्र, क्षुद्र, वक्र, दु शील हिसानद, मृषानद परिग्रह, सचयानद बन बैठता है। माया छल कपट, प्रपच सभी हथकण्डे अपनाता है। नकली खाने, रिश्वत, धमकी, हत्या, अपहरण सभी कुछ करता हुआ परिग्रह सागर

मे डूबता चला जाता है। इस धन प्रधान युग मे धर्म की जगह धन ने ले ली है एव लोगो को रुपया ही भगवान नजर आ रहा है। उसका हर घण्टा रुपयो की साकल से बधा हुआ है।

उनकी मान्यता है -

अच्छे अच्छो की कब्र खुदवा देता है पैसा
धरती से स्वर्ग पर पहुचा देता है पैसा।
युगो से साक्षी है इतिहास इस बात का मनुज
प्यार जता कर गला कटवा देता है पैसा।।

चतुर्थ पंक्ति बडी मार्मिक है। लक्ष्मी ने बुद्धिमानो, शूरवीरो, कृतज्ञो, कोमल और कठोर हृदय वाले सभी को मलिन कर दिया है। जिस प्रकार धूल रत्नो की कांति मलिन कर देती है, उसी प्रकार लक्ष्मी मनुष्यो के हृदय प्रदेश मलिन कर देती है।

अन्यायोपार्जित धन दस वर्ष तक तो ठहरता है किन्तु ग्यारहवा वर्ष लगते ही मूल के साथ नष्ट हो जाता है। जैसे मछली को फसाने वाले काटे मे लगा आमिष अपने साथ मछली को भी ले मरता है।

अन्यायोपार्जित वित्त दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूल च विनश्यति।।

परमार्थ से धन कमाने का नाम ही न्याय है और यही महावीर का अर्थशास्त्र है। क्योकि जिस प्रकार मेढक जलाशय मे और मछलिया भरे तालाब मे आकर बसती है वैसे ही समस्त सम्पदाए विवश होकर शुभ कर्म से प्रेरित हो उन्ही का अनुसरण करती है।

भगवान महावीर ने अपने अर्थशास्त्रियो को यही उद्घोष किया है धर्म का तिरस्कार करके धन नही कमाया जा सकता। चारो पुरुषार्थो का क्रम भी यही है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म पुरुषार्थ के अभाव मे अर्थ पुरुषार्थ अन्याय है, काम पुरुषार्थ व्यभिचार है और मोक्ष तो कल्पना शून्य है अस्तु तीनो की सिद्धि, प्रसिद्धि के लिए धर्म पुरुषार्थ, श्रेष्ठ और ज्येष्ठ है।

■■

शुद्धाचरण वाली शिक्षा ही श्रेयस्कर है

मानव जीवन का सम्पूर्ण विकास, सर्वोपरि उन्नति, उस की सुसुप्त शक्तियो का जागरण और समाज के लिये उपयोगी बनाने वाली यदि कोई शक्ति है तो वह है शिक्षा।

शिक्षा के अभिप्राय और उद्देश्य को विभिन्न विद्वानो ने पृथक-पृथक ढग से उल्लेखित किया है। पाश्चात्य विद्वान हर्बर्ट के शब्दो मे -"चरित्र निर्माण ही शिक्षा का उद्देश्य है। इसका एकमात्र अभि ाय है, नैतिकता की बुनियाद द्वारा जीवन की विसगतियो को दूर करना।"

एक अन्य विद्वान हर्बर्ट स्पेसर ने कहा है-"शिक्षा का उद्देश यह होना चाहिये कि आत्म शक्ति का पूरी तरह उद्बोध और विकास हो। ि स शिक्षा के पश्चात भी जीवन मे बेकारी जुडी रहती है वह शिक्षा जीवन के लिए भार है। विद्यार्थियो को अवसर देना चाहिये कि वे अपनी बुद्धि से काम लेकर खोज करे और उससे परिणाम निकाले। जहाँ तक हो नई बाते उन्हे कम बतलाई जाएँ। विद्यार्थियो के मस्तिष्क को जानकारियो मात्र से न भर कर उनमे अनुभव की क्षमता भी बढाई जाए। विद्यार्थियो को प्रेरित किया जाए कि वे स्वय खोज करे और नई बाते निकाले। मानव-समाज का उत्थान इसी प्रकार हुआ है और ससार के विकास का इतिहास भी इसी बात का साक्षी है।"

शिक्षा का विस्तार सर्वोपरि

शिक्षा है ज्ञान नेत्र। चर्मचक्षुओ से आगे बढकर ज्ञान नेत्रो को आलोकित करने पर ही मनुष्य को विज्ञ बनने का अवसर मिलता है। भाषा और लिपि के सहारे ही दूरवर्ती लोगो से सपर्क साधकर, उनके द्वारा अर्जित की गई ज्ञान सपदा से लाभ उठाना सभव होता है, चूकि साहित्य मे चिर अतीत का उल्लेख उपलब्ध है।

शिक्षा से वंचित रहना एक प्रकार से दुर्भाग्य ग्रस्त रहना है। यह एक ऐसा दुर्भाग्य है कि यदि चाहा जाये तो उससे आसानी से छुटकारा मिल सकता है। शिक्षितो को खुले ज्ञाननेत्र वाले कहा जाता है। इस माध्यम से उन्हे अपनी सपदा मे अभिवृद्धि करते हुए अनेक कठिनाइयो से पार पाना, प्रगति के अनेक आधारो से अवगत होना सुगम एव सभव हो सका है। शिक्षा जीव का अविच्छिन्न एव बुनियादी आवश्यक तत्त्व है किन्तु जब वह प्रदूषित हो जाता है तब वह साधक को 'साक्षर से राक्षस' बना देता है। यदि शिक्षा वरदान है तो नैतिक विकास के अभाव मे ही अभिशाप बन जाती है। शिक्षा का सबध केवल साक्षरता से नही जीवन-मूल्यो से होना चाहिए। जब वह केवल साक्षरता से जुडती है, तब विद्यार्थी का बौद्धिक विकास तो हो जाता है किन्तु उसकी रचनात्मक ऊर्जा कुण्ठित हो जाती है।

सर्वविदित है कि ज्ञान के स्तर पर ही सपदा के अनेक पक्ष विकसित होते हैं। प्रगतिशीलता हस्तगत होती है, दूसरो की सेवा, सहायता एव उज्जवल भविष्य का निर्माण कर सकना सभव होता है। इसलिये शिक्षा का विस्तार ससार की प्रगतिशीलता एव सुविधा सवर्धन भी है। इन लाभो को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि ससार की सर्वोपरि प्राथमिकता मिलने योग्य यदि तत्त्व है तो वह है शिक्षा।

लेकिन यह दुर्भाग्य ही है कि विश्व मे आधे पेट भूखे सोने वालो की तुलना मे अशिक्षितो की सख्या अधिक है। अपने देश मे ही एक चौथाई व्यक्ति शिक्षित शेष तीन चौथाई अशिक्षित है, जो सुदूर देहातो मे है। जहॉ न शिक्षा का महत्व समझा जाता है और न उसके लिये आवश्यक सुविधा साधन ही उपलब्ध हैं।

देश के आर्थिक अभावो की भी एक बडी कठिनाई है। इस दिशा मे सरकारी और व्यक्तिगत रूप से कुछ प्रयत्न हो भी रहे है क्योंकि सफलता की दिशा मे कुछ कदम तो बढ रहे है पर धीमी गति से, क्योंकि ये प्रयास उतने नही हो रहे हैं, जितने कि अब तक हो जाने चाहिये थे।

दो सहोदर बहिने गरीबी और अशिक्षा

दोनो की प्रकृति, कुछ ऐसी है कि ये दोनो साथ-साथ ही रहती है एव दोनो साथ-साथ ही बिदा होती है। अपने देश मे सव्याप्त निर्धनता इसलिये अधिक अखरती है कि उसके कारण जो कष्ट सहने पडते हैं वे प्रत्यक्ष होते हैं। जबकि अशिक्षा अदृश्य है, मानसिक है, इसलिये उसके बिना शरीर को कितना घाटे मे रहना पडता है। यह तथ्य समझ मे नही आता और अशिक्षा के निराकरण के लिये समुचित उत्साह प्रदर्शित क्यो नही किया जाता? अतएव व्यक्तिगत प्रयत्न जगाने के लिये शिक्षा की आवश्यकता एव उसकी महत्ता को समझाना पडेगा।

आतरिक जीवन बहिष्कृत

यद्यपि वर्तमान मे शिक्षा और शिक्षा सस्थानो की सख्या मे वृद्धि हुई है। साक्षरता का अनुपात सभी देशो मे बढा है और बढ रहा है। आज शिक्षा की अनगिनत शाखाएँ है। उन सबकी उपयोगिता भी प्रमाणित हो चुकी है। समाज की समृद्धि बढी है, साधन बढे हैं, सुविधाएँ बढी है। चिकित्सा एव अन्य क्षेत्रो मे कीर्तिमान स्थापित हुए है, तथापि एक प्रश्न मन को कचोटता रहता है कि क्या मानसिक शान्ति बढी है? क्या मन का तनाव कम हुआ है? इसका उत्तर नकारात्मक ही मिलता है। ऐसा क्यो? बाहर मे प्रचुर सपन्नता और भीतर मे इतनी रिक्तता? सुखानुभूति के साधनो का विकास होने पर भी मन की शान्ति की समस्या क्यो है? वह इसलिये क्योंकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली व उससे सबद्ध शिक्षा सस्थानो मे आतरिक जीवन के लिये कोई स्थान नही है। वहॉ वह सर्वथा बहिष्कृत है।

आज के शिक्षण केन्द्र अक्षर ज्ञान तो देते है पर सस्कार देने मे असमर्थ है, पगु है। शिक्षित बेकार है, अनुशासन हीन है, सयम हीन है, दुर्व्यसनो के शिकार है और उनमे वह सब कुछ है जो नही होना चाहिए। विद्यार्थी आगजनी करते है, हडताले, चक्का जाम, तोड-फोड द्वारा सामाजिक एव राष्ट्रीय सम्पदा को नष्ट कर रहे हैं, इन सबको देखकर क्या यह नही कहा जा सकता कि यह शिक्षा नही, शिक्षा का मजाक है?

अपनी विफलता, असमर्थता, अकर्मण्यता को छिपाने के लिऐ किसी प्रवचना का सहारा लेना शिक्षा के मूल उद्देश्यो पर कुठाराघात नही तो और क्या है? शिक्षा तो अपने आपको पहिचानने के लिए निर्मल दर्पण है। शिक्षा का सर्वोपरि लक्ष्य जीवन निर्वाह के स्तर को ऊँचा उठाने की अपेक्षा जीवन निर्माण का स्तर ऊँचा उठाना है।

बढते मानसिक तनाव और विक्षिप्तो की निरतर बढती सख्या से भयभीत होकर वैज्ञानिको ने ज्ञान के विषय मे नई खोजे शुरू की है। अध्यात्म फिर गुह्य-विद्या की सीमारेखा को तोडकर सामान्य श्रेणी मे आ रहा है, परन्तु ध्यान रखना अध्यात्म निरपेक्ष विद्या जागतिक सृजन को समृद्ध तो कर देगी, भौतिक विज्ञान को उन्नत बना देगी किन्तु ऐसी शिक्षा जीवन वृत्तियो, मधुर सम्बन्धो के उदात्तीकरण के समक्ष प्रश्न चिन्ह खडा कर देगी।

चरित्र निर्माण

शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि वह मनुष्य को बदले, उसके चरित्र का निर्माण करे। लोगो की शिकायत है कि वर्तमान शिक्षा से यह अपेक्षा पूरी नही हो रही है। यद्यपि शिक्षा के सभी क्षेत्रो मे दक्षता बढ रही है। वह 'शिक्षित' करने का अपना कार्य पूरा कर रही है। तथापि चरित्र निर्माण एव नैतिक जीवन से उसका कोई सरोकार नही है। शिक्षा तो ठीक है, केवल शिक्षण पद्धति को पक्षाघात हो गया है, वह दूषित हो गई है। वृक्ष का कार्य है फल देना। फूल, पत्ते टहनियॉ तो नैसर्गिक प्रकृति है वे आयेगे ही, जब वृक्ष का अस्तित्व है तब। उसी प्रकार शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य है, जीवन को सवारना, आजीविका के साधन रूप फूल, पत्र तो आयेगे ही क्योंकि वह तो उसकी प्रकृति है- जिसे रोका ही नही जा सकता। जब शिक्षण पद्धति ही मूल्य विहीन हो जाए तो मूल्यो की सस्कृति किस पर फलेगी? जिसका बीज ही नही बोया जाता, उसके पौधे की आशा करना क्या समझदारी होगी? चरित्र विकास के लिये जिस शिक्षा की अपेक्षा है, वह शिक्षा ही प्रचलित नही है।

चरित्र का निर्माण शिक्षा से, सामाजिक परिस्थिति और पारिवारिक

वातावरण से होता है, ऐसा माना जाता है। इस दृष्टि से बच्चो के चरित्र निर्माण का दायित्व अभिभावको और अध्यापको पर होता है, क्योंकि बच्चे उनके सम्पर्क मे अति निकट से आते हैं। उनका आचरण ही बच्चो पर प्रतिबिंबित होता है?

चरित्र निर्माण का जो सबसे अधिक प्रभावी साधन है, उसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित नही है- वह है अपना आतरिक परिचय। आतरिक सम्पन्नता के लिये आनरिक परिचय बहुत जरूरी है। न ही शिक्षा हमारे आतरिक व्यक्तित्व से हमे परिचित कराती है और न ही धर्म ही इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। कोई ऐसा सर्वमान्य धर्म नही है, जिसे निर्विवाद रूप से विद्यालयो मे पढाया जा सके। इसलिये शिक्षा विद्यार्थी को धर्म का बोध कराने मे सक्षम नही है।

चरित्र का सबध जीवन से है और वह एक जीवन-विज्ञान है। जीवन-विज्ञान की एक विद्या शारवा का विकास किया जाए तो आतरिक व्यक्नित्व से परिचित होने और उसे समझने-सवारने का अधिक व्यापक अवसर मिल सकता है।

शिक्षा सुलगते सवाल

वर्तमान शिक्षा पद्धति कितने सवालो से घिर गई है और उसमे एक-एक सवाल समाधान मागता है।

1 यदि आम आदमी की दृष्टि मे शिक्षा का क्रम ठीक नही है तो उसे सुधारने का प्रयत्न क्यो नही हो रहा है?

2 शिक्षा नीति के बारे मे एक लम्बी और देश व्यापी बहस का नतीजा क्या आया? क्या कोई समाधान सूझता है अथवा नही?

3 यदि शिक्षा के साथ जुडी हुई विसगतियो को निकालना है तो उसे-'सर्वांगीण' बनाना होगा।

4 क्या अपूर्ण शिक्षा के द्वारा सपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण सभव है? सपूर्ण व्यक्तित्व का अर्थ है-व्यक्ति की बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का जागरण।

5 क्या कभी केवल बौद्धिक विकास की बुनियाद पर सर्वांगीण चेतना का

निर्माण हो सकता है?

6 क्या शिक्षा कथनी और करनी की भेद रेखा को नही तोडेगी?

7 क्या अक्षरो के माध्यम से जो कुछ कहा जाता है यदि वह जीवन मे नही उतरता तो ऐसी शिक्षा की सार्थकता के आगे प्रश्न चिन्ह नही लग जायेगा?

8 क्या अनन्त ज्ञान सीखने के लिए मनुष्य जीवन पर्यन्त विद्यार्थी नही रह सकता?

9 विद्यार्थी के उदण्ड, अनुशासनहीन, अविवेकी और बेरोजगार होने मे किसी हद तक शिक्षक जिम्मेदार है या नही?

आदि - आदि ऐसे ज्वलन्त प्रश्न है - जिनका समाधान हर मानव चाहता है।

शिक्षा से जागृति - जहॉ तक शिक्षा के महत्व पर विचार करने का प्रश्न है वह उसके उद्देश्य की प्रसिद्धि मे ही निहित है। उपयुक्त शिक्षा ही अच्छे समाज के जीवन की कुजी है जिससे समाज की रूह मे कैद सडी, गली, भ्रान्त रूढियो को निकालकर बाहर फेका जा सकता है। शिक्षा से मानव की अतर्निहित प्रतिभा स्फुरणा पाकर उसके उच्च व्यक्ति के स्वरूप मे व्यक्त होती है, जो उसे सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाती है। वह मानव को जीवन सग्राम के लिये तैयार करती है। ऐसी शिक्षा ही असत् व अधकार से सत् व प्रकाश की ओर ले जाने मे समर्थ होती है। क्योंकि वस्तुपरक शिक्षा ही जीवन परिवर्तन मे बहुत उपयोगी होती है।

बिना शिक्षा के अधिकार एव कर्त्तव्यो का ज्ञान, जनमत का निर्माण व राजनैतिक जागृति जन - सामान्य मे नही आ सकती। जनतत्र मे अशिक्षा के कारण कुछ समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। इस सबध मे आर्चबिशप ऑफ यार्क' द्वारा दी गई चेतावनी - "अशिक्षित जनतत्र सब राज्य शासन प्रणालियो मे खतरनाक है," अक्षरश सत्य है। जनता अपने अधिकारो और कर्त्तव्यो के ज्ञान से बहुधा अनभिज्ञ ही रहती है। वह तो 'कोउ नृप होउ हमे का हानि' मे विश्वास कर लेती है। भारत मे अशिक्षा के फलस्वरूप ही देश की प्रगति की चाल धीमी है। भ्रष्टाचार और अनैतिकता की

महामारियाँ अशिक्षा के आश्रम मे ही पनपती है।

अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली

भारत मे आधुनिक शिक्षा प्रणाली लार्ड मेकाले की योजनानुसार ब्रिटिश सरकार की देन है। इस शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य केवल ब्रिटिश सरकार के लिये क्लर्क, लेखापाल आदि तैयार करना ही था। वही शिक्षा आज तक चली आ रही है और शिक्षा भी उसी उद्देश्य को पूर्ण कर रही है। यह शिक्षा व्यवहारिक जीवन के लिये उपयोगी नही है। आज का कृषि स्नातक अपनी शिक्षा का उपयोग कृषि के रूप मे नही कर, नौकरी के रूप मे करना चाहता है।

वर्तमान अनुपयुक्त, दोषयुक्त शिक्षा-परीक्षा प्रणाली, विद्यार्थियो के स्वास्थ्य का ह्रास, शिक्षा की अव्यवहारिकता, नैतिक बल का उत्तरोत्तर आदि-आदि दोषो से प्रेरित हैं।

शिक्षक दोषी नही

उपर्युक्त दोषो के लिये शिक्षक दोषी नही है, क्योंकि वह तत्राधीन है, तत्र के द्वारा शासित है। वह अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सके, पुरूषार्थ के द्वारा दूसरो को निर्मित कर सके, यह उसके हाथ मे नही है, क्योंकि वह ऐसी जजीर से जकडा हुआ है जो दूसरो के द्वारा प्रशासित है। इसी कारण वह अपना विकास नही कर पाता, स्वतत्रता से सोच नही सकता। उसके सामने अनेक समस्याएँ हैं, जिनके कारण वह विद्यार्थी को पाठ्यक्रम भी पूरी स्वतत्रता से नही पढा सकता।

स्वतत्र विचार के विकास का अभाव होने से यह स्थिति निर्मित हुई है। आज जहॉ शिक्षक को भी स्वतत्र विचार प्राप्त नही है, वहॉ वह दूसरो को क्या स्वतत्र विचार दे सकता है। हॉ किसी हद तक शिक्षक लापरवाह अवश्य है। आज प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि हमारी जो शिक्षा प्रणाली है, वह गलत है। भारत के भू0पू0 राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद तथा डॉ0 राधाकृष्णन भी आज की शिक्षा पद्धति को गलत बताते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली मे कुछ

खास परिवर्तन करने मे ही देश का कल्याण है, क्योकि वर्तमान शिक्षा स्वतत्र भारतीय परिस्थितियो के प्रतिकूल है। आजकल विद्यालय एव महाविद्यालय रूपी टकसाल सस्ते सिक्के रूपी स्नातक तैयार करते हैं, जिनका जीवन रूपी बाजार मे कोई मूल्य नही रहता। शिक्षा प्रणाली मे क्रान्ति की आवश्यकता है। शिक्षा प्रणाली यदि नैतिक और आध्यात्मिक होगी तो ही गुरूकुल प्रणाली द्वारा प्राचीन सभ्यता एव सस्कृति के अनुरूप एक नए समाज एव देश की रचना होगी जिससे, शान्ति का अद्भुत साम्राज्य।

शिक्षा मे केवल पुस्तकीय ज्ञान को महत्त्व न देकर, व्यवहारिक पक्ष का स्थान और महत्त्व होना जरूरी है। जीवन के उच्च आदर्शों से परिपूर्ण और भारतीय सस्कृति के अनुकूल शिक्षा की योजना होनी चाहिये। शुद्धाचरण आत्मगौरव, स्वावलबी, कर्त्तव्यपरायण का विवेक जागृत करने वाली शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है और इसी पर भारत का उज्जवल भविष्य एव निर्मल राष्ट्रीयता का उदय निर्भर है। सच तो यह है कि जब तक मनुष्य को पुस्तकीय शिक्षा के साथ मनुष्यता की शिक्षा नही दी जाती है तब तक अच्छे आदमी आयेगे कहॉ से? वह शिक्षा किस काम की जो मनुष्य को अपने स्वार्थ के घेरे से ही बाहर न निकलने दे। तत्त्व ज्ञान से वन्चित रख अन्धो की सख्या बढाती रहे। यह माना कि शिक्षा जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है परन्तु वह शिक्षा जो मनुष्य को केवल मनुष्याकार न रखकर उसे आकार से ऊपर मनुष्यता तक ले जाए।

शिक्षण केन्द्र ज्ञान मन्दिर है वहॉ ज्ञान देवता सरस्वती की उपासना की जाती है। गुरु देवता तक जोडने वाली अद्भुत श्रृखला हैं। हजारो पुस्तके पढ लेने के बाद भी उतना ज्ञान नही होता, एक शिक्षक के व्यावहारिक जीवन से हो जाता है।

अतएव शिक्षा और शिक्षा की देवी सरस्वती की उपासना मे विनय आवश्यक तत्त्व है, जिससे जीवन मे नैतिकता के साथ आध्यात्मिक जीवन शुरू होता है जिसके लिए आज देश के प्रत्येक नागरिक उत्कण्ठा से प्रतीक्षित है। ■■

निर्वाण की परिकल्पना : भारतीय संदर्भ में

भारतीय दार्शनिक जगत मे अधिकतर मतो ने 'निर्वाण' को किसी स्थिति या दशा से सबंधित माना है। निर्वाण शब्द का अर्थ है- निर्वात स्थिति, जहा विकारो की वायु नही चलती अथवा शुद्ध चैतन्य स्वरूप मे प्रतिष्ठित होना यानी मोक्ष, इस प्रकार जो भी कहा जाता है वह किसी न किसी दशा का द्योतन करता है, किन्तु परमार्थ से निर्वाण कोई दशा या स्थिति नही है और हो भी नही सकती क्योकि स्थिति या दशा सापेक्ष होती है, लेकिन निर्वाण निरपेक्ष है।

निर्वाण सभी इन्द्रियो और बुद्धियो से परे शब्दातीत, अनिवर्चनीय, अव्यक्त निष्फल चेतनामात्र है। जहा न ज्ञाता है, न ज्ञेय है और न प्रमेय के विषय है, किन्तु केवलज्ञान मात्र है- वही तो निर्वाण परमसुख है, अक्षय, अबाध अव्यय आनद है। लौकिक जीव अपनी भाषा मे अपनी स्थितियो को लेकर ही उनके आश्रय से समझता-बूझता है, यही कठिनाई है, किन्तु निर्वाण कोई स्थिति या दशा नही है। वह तो स्थितिहीन स्थिति है। जहा तक शब्द जाते है, जहा तक अर्थ पहुचते है और जहा तक मन-बुद्धि की दौड है, उन सबसे परे है- निर्वाण।

निर्वाण शब्द मूलत श्रमण परपरा का है। निर्वाण की परिकल्पना नितात भारतीय है। इसलिए इस पर भारतीय ढग से विचार करना उचित होगा। भारतीय विचारधारा के सबध मे जो बात ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि जैन, वैदिक व बौद्ध विचारो की त्रिवेणी प्रवाहित है। किसी एक धारा को भारतीय विचार का प्रतिनिधि मानना त्रुटिपूर्ण होगा, क्योंकि प्रत्येक धारा स्वतत्र होते हुए भी एक देशीय होने के कारण इनमे परस्पर कुछ सगतिया है- इसी क्रम मे सर्वप्रथम बौद्ध विचार- जैसा कि विदित है कि बौद्धो मे हीनयान और महायान दो भेद है। इनके अपने- अपने सप्रदाय है और सभी का निर्वाण के सबध मे पृथक-पृथक दृष्टिकोण है। निर्वाण भावरूप, अभावरूप या भावाभाव मिश्र रूप है। दोनो भेद निर्वाण को मानते तो है, किन्तु उनकी मान्यता या परिकल्पना कही साम्य तो कही भिन्न है।

दोनो के समस्त विचार इस प्रकार है- निर्वाण अव्यक्त है, जिसे शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता। यह एक ऐसी सभावना है जिसकी न उत्पत्ति है न विनाश और न जिसमे परिवर्तन है। यह स्वय अनुभूत है। यह तीनो कालो मे एक सा ही है और निर्वाण मे व्यक्ति का लोप हो जाता है। हीनयानियो की मान्यताएँ है कि निर्वाण दु खो से अभावरूप है। निर्वाण एक कल्पनीय लोकोत्तर दशा है। निर्वाण की दो दशाएँ है- सोपाधिशेष और निरुपाधिशेष। निर्वाण और ससार की स्थिति एक सी नही है। क्लेशावरण हटते ही निर्वाण हो जाता है, जबकि महायानियो की मान्यता है कि निर्वाण सत्य, नित्य अनिवर्चनीय है। दु खानुरूप न होकर सुखरूप भी है। निर्वाण प्राप्तव्य नही एक सभावना है। यह प्राप्त नही किया जाता, हो जाता है। भिक्षु और निर्वाण समान है। निर्वाण मे सर्वज्ञता प्राप्त होती है और इसकी लोकोत्तर से ऊची लोकोत्तम दशा होती है। सोपाधिशेष और निरुपाधिशेष के अतिरिक्त प्रकृति शुद्ध और प्रतिष्ठित भेद और होते है। निर्वाण ही तत्व है और जगत परिवर्तनशील है। क्लेशावरण और ज्ञेयावरण दोनो निर्वाण मे बाधक है। इनसे छूटना मुक्ति है।

इस प्रकार दोनो सप्रदायो मे समताएँ और विषमताएँ है। नागार्जुन के मत से निर्वाण न तो छोडा जा सकता है, न प्राप्त किया जा सकता है, यह न शाश्वत है, न उच्छिक होने वाला, न विरुद्ध है, न उत्पन्न है (माध्यमिक कारिक 25)

वैदिक विचारधारा - के अनर्गत वेदप्रसूत विचारो मे साख्य, न्याय, मीमासक वैशेषिक आदि कई धाराए है। निर्वाण के सबध मे सभी के विचार अलग - अलग है जिनका सक्षेप मे दिग्दर्शन किया जा रहा है-

1 न्याय - गौतम जी के अनुसार दु ख से अत्यत विमोक्ष (छूटना) अपवर्ग को मोक्ष है।

2 वैशेषिक - ये भी दु खो के आत्यन्तिक अभाव को मोक्ष मानते है।

3 मीमासा - यह मूलत कर्ममूलक है। वर्तमान मे औपनिषदिक विचार अपनाकर उस पर आधारित मोक्ष पर चितन प्रस्तुत करता है।

4 वेदात - ब्रह्म ही एक - मात्र परमार्थ है, उसकी प्राप्ति मोक्ष है। मोक्ष का कारण ज्ञान है। मृत्यु, दु ख और अज्ञान से परे वह सत् चित् और आनद स्वरूप है।

5 सारव्य - जीवात्मा का प्रकृति से अलग होकर अपने स्वरूप मे अवस्थित हो जाना मोक्ष है। मोक्ष मे केवल चेतना रह जाती है। सारी अनुभूतिया, ज्ञान तक छूट जाता है। सारव्य मूल - रूप मे निर्वाण की कोई परिकल्पना नही देता।

6 वैष्णव - ये चार प्रकार की मुक्ति मानते है। सालोक्य, (वैकुठ लोक की प्राप्ति) सायुज्य, सान्निध्य और सारुप्य। वैष्णव सप्रदाय मे सेवा भक्ति की प्रधानता होने से इसका अद्वैत वेदातियो की तरह द्वैत का लोप मान्य नही है।

7 शैव - शिवगीता के अनुसार - अज्ञान की गाठ जो हृदय मे पडी है, उसका खुलना ही मोक्ष है।

8 एतरेयोपनिषद् - आत्म - ज्ञान के द्वारा इस ससार से ऊपर उठकर आनदमय लोक मे अपने अभीष्ट अमृततत्व ब्रह्मपद (मोक्ष) की प्राप्ति।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वेदप्रसूत विभिन्न सप्रदायो मे निर्वाण की अलग - अलग कल्पनाए की गई है। इनमे विचार भेद होने से कुछ विद्वान इन्हे श्रमण विचार प्रसूत या प्रभावित मानते है।

जैनो की निर्वाण सबधी परिकल्पना के सदर्भ मे यह जान लेना उपयुक्त है कि जैनो मे दिगम्बर एव श्वेताम्बर दो सप्रदाय है। इन सप्रदायो के अपने - अपने आचार्य और उपासना के अपने - अपने तरीके है, परतु निर्वाण को सब अतिम लक्ष्य और प्राप्तव्य मानते है। उसकी परिकल्पना सभी की समान है।

जैन मान्यतानुसार - कर्मवर्गणाए ससार और दु ख का कारण है और इनसे मुक्त हो जाना ही मोक्ष या निर्वाण है। कर्मो के अनेक भेद है, किन्तु मुरव्य आठ श्रेणियो मे विभक्त किये जा सकते है यथा - ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अतराय, आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय। इनमे प्रथम चार घातिया कहे जाते है, क्योकि इनके कारण आत्मा के गुणो का घात होता है ये

जीव के ससार भ्रमण का कारण होते है। शेष चार अघातिया कहे जाते है, यद्यपि इनसे आत्म - गुणो को नुकसान नही होता, तथापि अपनी स्थिति पर्यंत ये जीव को ससार मे बाध रखते है। उसे सुख - दु ख की अनुभूति कराते है, मुक्त नही होने देते। इन आठो से छूटकर जीव जन्मातर के दु ख - द्वद्वो से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप मे आ जाता है और अशरीर, चिन्मय, ज्ञानमय, निर्विकार, शुद्ध, निस्पद, सिद्ध मुक्त होकर शाश्वत सुख मे लीन हो जाता है।

जैनो की मान्यता है कि जीवन मे ही मुक्ति की तैयारी पूरी कर लेनी पडती है। जो जीवन मे मुक्त नही हो जाता, मरने के बाद वह क्या मुक्त होगा ? जीवन मे साधना की इतनी मंजिल तय कर लेना आवश्यक है जहा से निर्वाण केवल एक छलाग भर दूर हो और मृत्यु उस लक्ष्य - भेद की वह छलाग बन जाये।

निर्वाण के सबध मे वैदिक और श्रमण (जैन और बौद्ध) मान्यताओ मे थोडा अतर है। उसकी प्राप्ति के लिए कर्म, साधना, तपस्या, ज्ञान तितिक्षा, योग आदि के अलावा वैदिक व अतरिक्ष शक्ति की सहायता और अनुग्रह की अपेक्षा रखने हैं। जबकि श्रमण, स्वकर्म को ही पर्याप्त मानते हैं। निर्वाण प्राप्नि के लिए गीता की गुह्यतर विज्ञप्ति 18 - वे अध्याय के 62 वे श्लोक मे वर्णित है, जिसके अनुसार - "हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियो के हृदय मे रह कर अपनी माया से उन्हे यत्रारूढ की नरह घुमाता है। इसलिए तू सर्वनोभावेन उसी की शरण जा, उसके अनुग्रह से तुझे परम शांनि और नित्य स्थान (निर्वाण) की प्राप्ति होगी। " एक और गुह्यनम विज्ञप्ति 18 वे अध्याय के ही 66वे श्लोक मे उल्लेखिन है जिसके अनुसार "सब धर्मो को छोडकर तू केवल मेरी शरण मे आ जा। मै तुझे सब पापो से मुक्त कर दूगा, चिता न कर" जबकि श्रमण सस्कृति को आत्मोत्कर्ष के लिए किसी की सहायता नो अपेक्षित है ही नही, अनुपादेय भी है।

विभिन्न वैदिक, जैन और बौद्ध सस्कृतियो मे निर्वाण के स्वरूप के सबध मे कई विसदृश्यताए है। गीता, महाभारत, बृहदारण्यक, उपनिषद आदि वैदिक साहित्य और जैन मान्यता मे मोक्ष के अनुकूल समय और मार्ग के

विषय मे भी विसगतिया है। आचार्य विनोबा भावे के अनुसार (सदर्भ- गीता प्रवचन- शुक्ल कृष्ण गति) मृत्यु,मोक्ष के सबध मे गीता का यह कथन काल सूचक नही हैं, बल्कि साधना सूचक है, तिलक जी के अनुसार उपलब्धि (ज्ञान - विज्ञान) सूचक है। वेदात सूत्र वादरायणाचार्य आदि के मत से मार्ग सूचक है और बृहदारण्यक के अनुसार काल और मार्ग सूचक है। (गीता) के कथानुसार यह विशेषत काल सूचक है।

ज्ञातव्य है कि भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण दक्षिणायन, कृष्ण पक्ष चतुर्दशी और रात्रि के अंतिम प्रहर मे कार्तिक कृष्ण अमावस्या को प्रत्यूष काल मे हुआ था। अन्य तीर्थंकरो मे प्राय पाँच तीर्थंकर रात्रि की बेला मे, दस कृष्ण पक्ष मे और आठ दक्षिणायन के समय निर्वाण को प्राप्त हुए थे। इससे यह धारणा बलवती होती है कि मोक्ष प्राप्ति के लिये अनुकूल साधना अपेक्षित है, काल नही।

जैन और बौद्ध एक ही श्रमण सस्कृति के होते हुए भी उनके विचारो, मान्यताओ और साधनाओ मे अतर है। जैन आत्मा की स्थिति तीनो कालो मे मानते है, उनकी मान्यता है कि सिद्ध, मुक्त और निवृत्त आत्मा का भी अस्तित्व रहता है। इसके विपरीत बौद्ध, आत्मा की शाश्वतता नही मानते उनके अनुसार निर्वाण मे आत्मा का भी अभाव हो जाता है।

अत मे, जैन तीर्थंकर और बुद्ध के निर्वाण के सबध मे व्याप्त मत - मतान्तरो को जानने के बाद यही कहा जा सकता है कि भारतीय विचारो की त्रिवेणी मे मुक्ति के स्वर्ण (निर्वाण) की प्राप्ति के लिये साधना करना परम पुरुषार्थ माना गया है और इस दृष्टिकोण से तीनो विचार धाराओ मे मतैक्य रहा है जो सतुलन को प्रकट करता है। ■■

- जन्म के आगे तो मनुष्य के पूरे जीवन का भविष्य रहता है परन्तु निर्वाण के सामने भविष्य की आशंका, आकाक्षा भी नही रहती।
- कर्मो की आत्यन्तिक निवृत्ति एव सत्य की सम्पूर्ण उपलब्धि ही निर्वाण है।
- निर्वाण के लिए निर्माण का महती अपेक्षा है।

अतीत का विसर्जन, अनागत का स्वागत

अध्यात्म का अणु जब अपना शक्ति विस्तार करता है तब वह निस्सीम हो जाता है और समग्र जीवन मे आमूलचूल परिवर्तन लाने में, पुरातन कर्मों को धो डालने में प्रबल निमित्त भी बन जाता है। यही कुछ हुआ एक बालक के साथ .. । शुभ मनोभावना के फलित होने मे कई बार निमित्त की प्राप्ति भी अतिशीघ्र हो जाती है। यही कुछ हुआ एक कुमार के साथ .।

घटना चक्र जब नया मोड लेता है तब अप्रत्याशित कुछ भी नहीं रहता। अवरोह आरोह मे बदलते वक्त नही लगता। ऐसा ही कुछ प्रसग बना एक पथिक के साथ ।

अतीत एक मधुर सपना है

अनागत एक मधुर कल्पना है

परन्तु परन्तु

सम्प्रति अपना है

केवल अपना है अपना

प्रकृति की इस खुली किताब ने इधर एक ओर बालक के अन्त करण मे अज्ञान मेघों को तिरोहित कर वैराग्यादित्य उदित कर दिया तो दूसरी ओर उम्र ने अपना प्रभाव देह पर डालने का दायित्व सभाल लिया। जहा एक ओर वैराग्य के लिए मन मचल रहा था, तो वहीं दूसरी और यौवन अगडाइयॉ भर रहा था। दोनों विषम प्रतिद्वद्वियो के द्वद दर्शक कोमल हृदय पर वैराग्य ने ही विजयश्री वरण की एव उसका वैराग्याभिषेक करने सयोग से एक युवा मनीषी पावन धरा कुण्डलगिरि में मानो अवतार लेकर ही आ पहुचे। उस मणि–काचन–सयोग ने अन्त करण मे एक उद्वेलन उत्पन्न कर दिया। उसके चितन को बल मिला और दो द्वद्वियो के बीच भावना की परत मे छुपाकर/सजोकर रखे हुए अध्यात्माकुर ने गौरव से अपना शिर बाहर निकाल लिया।

विषम मन मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। वह सिहरन के साथ अपने में ही कुनमुनाया। सहसा उसके मुख से ससार दु ख से भय मिश्रित ध्वनि निकली प्रभो! आप मेरे मार्ग दृष्टा हैं जीवन सृष्टा हैं। आप मुझे ब्रह्मचर्य की दीक्षा दीजिए। युवाचार्य की अन्वेषी आखों ने दीक्षातुर सजल आखो मे पलभर झाका। बालक के रोम–२ मे करुणा आकार ले रही थी। चेहरे पर सहज सौम्यता थी वाणी मे मधुरता थी और सजल नेत्रों से टपक रहा था समता रस। कुमार के दिल पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को पढ रहा था एक विराट व्यक्तित्व जो प्रथम बार उन आखों का नयन पथगामी बना था। उनकी उदारता का द्योतक अमृत–तुल्य वरदहस्त पा वह कुमार मायावी रिश्तों को उतार, वैराग्य की खूटी पर टाग चल पडा एकाकी अनतपथ की यात्रा के लिए अपने लोकोत्तर पथ नायक के साथ। उन 'अद्‌भुत यात्रा के टोली नायक' ने अपनी टोली में एक सहयात्री और सम्मिलित कर लिया। वे यात्रा नायक अन्य कोई नहीं स्वनाम धन्य आचार्य प्रवर श्री विद्यासागर जी थे। नवीन सहयात्री कोई दूसरा नहीं

बल्कि कुमार 'नवीन' ही था जो 'नया भी था और 'कुमार' भी। योग की वैचित्रता ही कहिए। यात्रा का प्रथम चरण कहीं ओर से नहीं वरन् कुमार की जन्मभूमि के निकट का अतिशय क्षेत्र पटेरियाजी ही था।

बुन्देलखण्ड की माटी से गढा एक और एकलव्य, दिगम्बरी परिधान को धारण करने की उत्कट लालसा से लट्ठे की धोती–दुपट्टे/श्वेत वसन पहिन सहज, सरल लचकदार एव वात्सल्य रस मे सनी हुई बुन्देली मिठास से पगी हुई, समर्पण पूर्ण वाणी बोलता अपनी बेदाग निश्चल सशक्त गुरु भक्ति की पतवार बना अपनी मजिल पा गया। प्राणों में श्रद्धा नयनों में करुण कण लहराते गुरु भक्ति मे इतना तल्लीन और आचार्यश्री की दैनिक चर्याओ (आहार–चर्या, स्वाध्याय, शौच क्रिया आदि) के प्रति अनुक्षण इतने जागरुक कि बरबस गुरु–मुख से वचन फूट पडे, ब्रह्मचारी नवीन क्यों मेरे सचित्त परिग्रह बनते हो? (हसी) अपने गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान ध्यान और साधना की त्रिकुटी ने माता–पिता द्वारा दिए गए बदन पर पडे धोती–दुपट्टे को भी बोझिल बना दिया क्योंकि अध्यात्म यात्रा में वे वस्त्र भी भार स्वरुप प्रतीत होने लगे किंतु कर्म किसी को नहीं छोडते।

अट्ठारह वर्षीय कुमार पर निर्दय/क्रूर ज्वर ने अपना प्रकोप उतार दिया। नवीनजी उसका आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध हो गए। जब आपसे कोई श्रावक सघस्थ साधु पूछता ब्रह्मचारी जी कैसे हो? हसते हुए यही उत्तर देते हैं अतिथि की सेवा स्वीकार कर रहा हू।' अतिथि की सेवा? आश्चर्य में पड कोई आपके शब्दों को दोहरा देता है, तो प्रत्युत्तर स्वरुप यही पाता–'हा, बुखार/ज्वर अतिथि ही तो है। जो कभी–कभार आये विना सूचना के आये, आकर चला जाये वह अतिथि ही तो कहलाता है। ऐसे अदम्य साहस का परिचय कडकती शीत ऋतु मे आपने उपस्थित जन सैलाब को दिया। शरीर एव दतावलियों को कपकपा/बजा देने वाली शीत ऋतु के भीषण ज्वर प्रकोप को पच्चीस दिन तक एक धोती–दुपट्टे पर झेलने वाले साधक को उनकी अल्पकालीन साधना का फल १० जनवरी, १९८० को ऐलक दीक्षा के रुप में आचार्यश्री ने इन शब्दो को उच्चारित करते हुए दिया– ब्रह्मचारीजी आपने बुखार को भी बुखार ला दिया। मुझे तुम्हारी साधना से बहुत प्रसन्नता है। अब तुम ब्र नवीन नहीं, ऐलक गुप्तिसागर हो गए। बस क्या था नैनागिर का सारा नभमडल जयजयकारों एव तालियों की गडगडाहट से गूज उठा।

लेकिन इस पथिक को अभी अधूरी यात्रा में विश्राम कहा? साधना के पथ पर आचार्यश्री के साथ पग बढाते–बढाते सागर नगर पहुचे। प्रथम बार षट्खण्डागम की वाचना का अमृतपान गुरु सानिध्य मे किया। वाचना के उपरात साढे तीन कोटि मुनिश्वरों ने जहा से मुक्ति पाई ऐसी पवित्र निर्माण स्थली मुक्तागिरि में चातुर्मास कर पुनश्च आचार्यश्री कुमार शिष्यो सहित नैनागिरि पधारे। इस यात्रा में ऐलकश्री को यह भलीभाति अनुभव हो चुका था कि आतम साधना मे आत्मानुभव में यह कोपीन' भी बाधक है। रह–रहकर तरुणाई जैनेश्वरी दीक्षा के लिए लालायित हो उठी। मिनट घटा दिवस

निशा, पक्ष, मास वर्ष का हाथ पकडकर दौडने वाला वह समय भी आकर ठिठक कर खडा हो गया जिस पुण्य बेला मे वर्तमान श्रमणचर्या के पुर्नोद्धारक स्वात्म चेतना के सजग प्रहरी आचार्यप्रवर शातिसागरजी ने अपनी नश्वर काया का परित्याग किया था। मानो इस महान क्षतिपूर्ति हेतु गुरु–शिष्य के बीच अभिनिष्क्रमण समारोह का समायोजन इसी पुण्य तिथि भादव शुक्ला दोज/२० अगस्त १९८२ मे हुआ। आचार्यश्री ने ऐलक गुप्तिसागर को वरदत्तादि पच ऋषिराजो की निर्वाण भूमि नैनागिरि में दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की एव मुनि गुप्तिसागर जी ने पच महाव्रतो को धारण कर भारत के पद विहार योग्य क्षेत्रो को अपनी नग्न काया नग्न पैरो से नापकर जन जन मे नूतन चेतना एव सुसस्कारो का सिहनाद फूकने का दृढ शुभ सकल्प लिया।

पारस पुरुष मुनिश्री की वाणी का अद्‌भुत स्पर्श लौह, तामसिक चित्तवृत्ति को भी काति और दीप्ति से झिलमिला देता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे भौतिकता के घुप्प अधेरे मे आपकी वाणी रोशनी का कार्य कर रही है। फलत मालवा निमाड मे जन–जन के हृदय सम्राट बन गए हैं। जिसका कारण आपकी हित–मित प्रिय सत्य आकर्षक शब्दावली एव सुरीली सुसस्कृत भाषा तो है ही किंतु प्रत्येक व्यक्ति की सर्जनात्मक प्रतिभा को मुक्त भाव से भापना आपका विशिष्टतम गुण जनाकर्षण का केन्द्र है। आप एक ऐसा स्नेह और विश्वास भरा वातावरण प्रत्येक सम्पर्क मे आने वाले व्यक्ति को देते हैं जिसमे उसे अपनी कल्पनाओ विचारधाराओ को पूर्ण विकास का अवसर मिले। आदेशजन्य अनुशासन से कहीं अधिक स्नेहजन्य अनुशासन प्रभावशील होता है यह इनके चरण सान्निध्य मे आने वाले प्राणी मात्र का अनुभव है। आप किसी व्यक्ति समाज सम्प्रदाय एव धर्म से बधे हुए नहीं हैं। आगमोक्त साधना के बधनो मे बधकर निर्विकार निर्द्वन्द, निर्मल, सलिल की तरह सतत बह रहे हैं और जहा कही सत्य पाते हैं उसे बेहिचक स्वीकार कर लेते है। यहीं है आपके हृदय की विराटता–विशालता का सम्यक् परिचय। इन्हीं सब कारणो से आम आदमी (जैन–जैनेतर) अनायास ही चरणो मे झुककर खिचा चला आता है।

सम्प्रति में गुप्तिसागरजी प्रेम की ईटों एव करुणा के जल से मृतप्राय एव अजन्मे सस्कारों को पुनजीर्वित एव प्रादुर्भूत करने के लिए सस्कार–मदिरो का निर्माण कर रहे हैं। उनकी स्थिति, वृद्धि और फलोदयार्थ काफी श्रम ओर समय मानव समाज को अर्पित कर रहे हैं।

अन्त मे पिछले दो दशको मे पूज्य आचार्य विद्यासागर जी द्वारा निखारे गये सयम रत्न की माला के इस चमकते दैदीप्यमान पचम सयम रत्न रुप तपोधन गुप्तिसागर के पद पकजों मे शत–शत नमन!

सपादक ❑